हिज़ हाइनेस

ऋषभचरण जैन

४ ३३
जै

हिज़ हाइनेस

हिज़ हाइनेस

ऋषभचरण जैन

ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति

© 1960, नई दिल्ली
दिग्दर्शन चरण जैन

प्रकाशक	दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति 4697/5-21 ए दरियागंज नई दिल्ली-110032
मूल्य	चालीस रुपये
तृतीय संस्करण	1989
मुद्रक	साहित्य कम्पोजिंग एजेंसी नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

His Highness, A Novel by Shri Rishabh Charan Jain
Published by Rishabh Charan Jain Evam Santati, New Delhi-2
Price : Rs. 40/-

प्रवचन

मुझे इस पुस्तक का प्रवचन लिखने में कुछ कठिनाई महसूस हुई। सच पूछिए तो यह समस्त पुस्तक लिखने में ही मुझे अनेक प्रकार की कठोर मानसिक वेदनाएँ हुई हैं, लेकिन मैंने जो कुछ किया, कर्तव्य-वश ही किया है।

समय की गति और भाग्य के विश्वासघात के कारण मुझे पिछले सुदीर्घकाल से भारत के देशी-नरेशों और उनके अमलों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। मैंने 'देशी-नरेश' नामक पदार्थ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया और मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि देशी नरेश संसार का एक ऐसा आश्चर्य्य है, जो जितना नया है, उतना ही पुराना है। नया इसलिए कि देशी नरेश की मनोवृत्ति नये आदमी के लिए एक अनोखी चीज़ है और पुराना इसलिए कि पिछले एक हजार वर्ष के पूँजीवाद के युग में इसी रूप-रेखा और मनोवृत्ति के लोगों का संसार के हरेक देशों के इतिहास में उल्लेख मिलता रहा है और आज भी दुनिया का क़रीब-क़रीब हरेक मुल्क मानवता के इन नमूनों से भरा हुआ है। अधिकार, पूंजी, आराम और अशिक्षा के सम्मिश्रण से जो चीज़ पैदा होती है, और जिसका उल्लेख सोलहवीं सदी के फ्रान्स, उन्नीसवीं सदी के इंग्लैण्ड और बीसवीं सदी के अमेरिका के इतिहास में मिलता है, हमारे देशी नरेश उन्हीं के मिलते-जुलते रूप हैं। इन लोगों में उक्त चारों महादोषों के अतिरिक्त एक और महादोष मिला हुआ है—ग़ुलामी।

मुझे अपने देश के नरेशों के इस अध:पतन पर कठोर यन्त्रणा हुई और उसी के फल-स्वरूप यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा मुझे मिली।

इस उपन्यास के कथानक की रचना करते हुए न तो कला के नियमों का ध्यान रक्खा गया है और न-ही किसी सुधार-भावना का ख़याल रखकर इसका निर्माण हुआ है। यह एक सीधा-सादा चित्र है, जिसमें भावनाओं को लापरवाही से जहाँ-तहाँ बखेर दिया गया है और अगर इस पुस्तक के कथानक में कोई पाठक कला पा लें या उससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर लें तो लेखक उनकी कृपा का कृतज्ञ होगा।

दिल्ली
दरबार गृह
23 दरियागंज
दिल्ली-2

ऋषभचरण जैन

इस पुस्तक में आलमनगर राज्य की काल्पनिक घटनाओं का वर्णन किया गया है। कुल छः मुख्य पात्र-पात्री हैं और छहों अपनी-अपनी कहानी कहते हैं। मुख्य पात्र हिज़-हाइनेस हैं और हैं रानी त्रिपुरी, माँ-महारानी, भास्करदेव, दीवानबहादुर अमरदास और माणिक-सरदार

हिज़-हाइनेस

हिज़ हाइनेस की आत्म-कहानी

गोरा बदन मुझे बहुत अच्छा लगता है। बशर्ते कि यह गोरापन सुनहरापन लिये हुए हो, क़द लम्बे और दर्मियाने के बीच का हो, चेहरा मूरत की तरह गढ़-गढ़कर बनाया गया हो, नाक-नक्श-ओंठ-कपोल-कुच — सभी-कुछ इस अन्दाज़ से फ़िट किये गए हों कि कोई हिस्सा किसी तरह नजरों में गुभे नहीं।

जिस औरत का ऐसा बदन और ऐसा तराश हो, उसके आगे न मुझे स्वर्ग की परी की ज़रूरत है और न स्वर्ग की बादशाहत ··हाँ, मैं बादशाह हूँ, नहीं राजा···राजराजेश्वर हूँ। पैदा मैं हिन्दुस्तान में हुआ हूँ, लेकिन मेरी ख्वाहिश है कि दुनियाँ के पर्दे पर जितने देश हैं और उनमें जितने तरह के सुख हैं और उन्हें जितने तरह से भोगा जा सकता है—उन सबका अनुभव मुझे हो जाय। औरत ही मेरी राय में एक ऐसी चीज़ है, जो इन्सान की खुशी, उसकी ज़िन्दगी, उसकी महानता, उसकी दरियादिली, उसकी जवानी और उसकी उमंगों को कायम रख सकती है। औरत ही आदमी की दिली हसरतों की तस्वीर है और औरत के बाज़ू में बैठकर ही आदमी आगे बढ़ने, लड़ने और मर जाने की महान् भावनाओं को जागरूक रख सकता है।

मेरे बड़े-बड़ राजमहल हैं, मेरे खजाने में करोड़ों रुपये के जेवरात, अशर्फ़ियों के ढेर, सोने-चाँदी के अम्बार, बेशीक़मत हीरे-पन्नों के हार, बेतादाद जवाहरात के ढेर ढँके-दबे पड़े हैं। मैं इस सारे ऐश्वर्य को देखता हूँ

और खुश होता हूँ।

मेरे सामने मेरे लाखों प्रजाजन, मेरे हज़ारों फ़ौजी सिपाही और जंगी सरदार, मेरे सैकड़ों नौकर-चाकर झुक-झुक जाते और बल-बल खाते हैं। मैं चाहूँ तो क्षणभर में उनका क़त्ले-आम करा डालूँ, उनके घरों में आग लगा दूँ, उनकी बहू-बेटियों-बहनों पर कुत्ते छुड़वा दूँ, उनके बच्चों को जीता जमीन में गड़वा दूँ। कोई चूँ नहीं कर सकता। किसी को मेरे इस काम में बाधा देने का हक़ नहीं है। लेकिन मैं राजा हूँ और बड़ा रहमदिल हूँ, बड़ा ग़रीब-निवाज़, बड़ा प्रजा-पालक ! मैं उनसे कहता हूँ, तुम जियो, खेलो, ख़ुश रहो और मैं जो-कुछ, जिस तरह करूँ मुझे वही, उसी तरह करने दो। मेरे रास्ते में बाधा मत दो। मेरे कार्य-कलाप की टीका-टिप्पणी मत करो। मैं बड़ा बुद्धिमान् हूँ—साक्षात् ईश्वर हूँ, उसका अवतार हूँ। मैं जो कुछ करता हूँ, ईश्वर की प्रेरणा से करता हूँ—महज़ लीलायें रचता हूँ। मुझे यह सब-कुछ करने का अधिकार है। तुम अपने काम-से-काम रखो, मेरी इन हरकतों की तरफ़ देखो नहीं, देख भी लो तो नाक-भौं न चढ़ाओ, नाक-भौं भी चढ़ाओ तो ज़बान मत खोलो, ज़बान भी खोलो तो मेरी तारीफ़ करो, मेरी प्रशंसा के गीत गाओ, मेरी जय-जयकार करो। मैं राजा हूँ।

मेरे बहुत-से मन्त्री हैं। बड़े क़ाबिल लेकिन बड़े नालायक़। दुनिया उनकी क़ाबलियत पर हज़ार जान से फ़िदा है, अखबार उनकी तारीफ़ में पन्ने-के-पन्ने रँगते हैं, बाहर के लोग आते हैं और सीधे उनके पास जाते हैं, उनकी ख़ुशामदें करते हैं। लेकिन मुझसे पूछिये उन नमकहरामों की क़ाब-लियत का कच्चा चिट्ठा। मैं उनका मालिक हूँ, उन्हें मोटी-मोटी तनख्वाहें देता हूँ, मेरी जूतियों के तुफ़ैल पर वे लोग पल रहे हैं, जी रहे हैं, पुज रहे हैं। मैं चाहूँ तो उन्हें कान पकड़कर कुत्तों की तरह शहर-बदर कर सकता हूँ, उनका काला मुँह करके, गधे पर चढ़ाकर राज्य-भर में घुमा सकता हूँ, उन्हें दाने-दाने को मोहताज बना सकता हूँ। मेरी दी हुई रक़म और मेरे राज्य की प्रजा से खाई हुई रिश्वत की मदद से उन्होंने बड़े-बड़े महल बना लिए हैं, बैंकों में खज़ाने जमा कर लिए हैं और उनकी ज़िन्दगी बादशाहों की ज़िन्दगी की तरह बीतती है। लेकिन यह नमकहराम इसके लिए मेरे ज़रा भी कृतज्ञ नहीं होते। क्या हुआ—अगर मेरे सामने आकर वे झुक-

झुककर सलामें करते हैं, मेरे चरण स्पर्श करते हैं, मेरी महानता के गीत गाते हैं, लेकिन मेरी अदम-मौजूदगी में तो मेरी निन्दा करते हैं, मेरी जड़ काटते हैं, मुझें बदनाम करते हैं, मुझे नेस्त-नाबूद करने का षड्यन्त्र रचते हैं, मेरे दुश्मनों से दोस्ती गाँठते हैं, मेरी निजी और छिपी हुई लीलाओं का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग पर ग़ैरज़िम्मेदार लोगों के सामने करते हैं। ऐसे मन्त्रियों से क्या लाभ ? मेरा जी चाहता है कि मैं उनकी खाल खिचवाकर और उनमें भुस भरवाकर शहर के चौराहे पर लटकवा दूँ, ताकि और किसी राज्य में, और कोई मन्त्री ऐसी नमकहरामी करने की कोशिश न करे।

मेरी एक माँ है। निहायत नेकचलन, लेकिन निहायत बददिमाग़ और निहायत ही वेवकूफ़। यों तो मेरी कई माँ थीं—इस रिश्ते से कि वे सब मेरे पिता की स्त्रियाँ थीं, लेकिन असली माँ मेरी एक ही है, जिसकी कोख से मैं पैदा हुआ, जिसने नौ महीने कई दिन मुझे अपने पेट में रक्खा और जो महज़ इसी तुच्छ अनुग्रह के बल पर मुझे तमाम ज़िन्दगी का ग़ुलाम मानने की ग़लती करती है। लेकिन मैं ऐसा नहीं मानता। मेरी राय में वह मेरी माँ ज़रूर थी तब तक—जब तक मैं बच्चा था। अब मैं राजा हूँ और अब वह मेरी प्रजा है। मुझे कोई इन्कार नहीं उसकी इज्ज़त करने में, लेकिन यह इज्ज़त इसलिए हर्गिज नहीं हो सकती कि वह मेरी माँ है, बल्कि महज़ इसलिए कि वह औरत है और मेरे पिता मरते वक्त उसकी ज़िम्मेदारी मेरे सर पर छोड़ गए थे; अगर्चे वह बदबख्त बिल्कुल इसका उल्टा समझती है और यही कहती भी है। मैं तैयार हूँ। उसे सब तरह सुखी रखने के लिए, उसके लिए अलग महल देने के लिए, उसके हुक्म पर दर्जनों नौकर-चाकर दौड़ाने के लिए, उसके आराम के लिए मोटरों और गाड़ियों का प्रबन्ध करने के लिए। लेकिन वह क्यों उम्मीद करती है कि मैं उसी तरह बच्चा बनकर उसकी कड़ी निगाहों की क़ैद में अपने-आपको पाबन्द कर दूं, जिसकी आदत उसे पड़ गई है ? उसे क्या हक़ है कि मेरे पुराने-पुराने मन्त्रियों को वक्तन्-फ़वक्तन् बुलाये और मेरे ऐमालों के रंड़रोवने उनके सामने रोये ? और, मैं राजा हूँ, मैं जो चाहे जो करूँ, उसे क्या अधिकार है कि ज़बरदस्ती मेरे महल में घुस आवे और मेरी जवानी, मेरी सेहत या मेरे शरीर की पुष्टता

को देख-देखकर जले और नौकर-चाकरों तक के आगे मुझे कोसे या डाँटे-फटकारे ? क्या वह नहीं जानती कि मैं उसे ज़िन्दगी-भर के जेलखाने में डलवा सकता हूँ, उसे ज़हर दिलवा सकता हूँ, उसे मोटरों की भिड़ंत में खत्म करा सकता हूँ ? लेकिन मैं ऐसा नहीं करता। सिर्फ़ इसलिए नहीं कि उसने मुझे जन्म दिया है और लोग-बाग जन्म-दात्री का बड़ा माहात्म्य मानते हैं, वल्कि इसलिए कि मेरी रहमदिली और बादशाहत का तक़ाज़ा है कि मैं अपनी प्रजा के प्रत्येक प्राणी के साथ न्याय करूँ, उसके जान-माल की रक्षा करूँ—और व्यक्तिगत नाराज़गी के बावजूद भी उसके साथ अन्याय न होने दूं !

मेरी एक रानी है। सिहासनारूढ़ होने से पहले ही उसके साथ मेरा पाणिग्रहण हो चुका था, वह देखने में बुरी नहीं और एक बहुत बड़े—मुझसे बड़े नहीं—महाराजा की सुपुत्री है। उसके औरस से एक चार बरस की कन्या भी है। जब व्याह हुआ था तो वह मुझे बड़ी अच्छी लगती थी, लेकिन अब ?—वह बदनसीब मुझे भाती नहीं—वल्कि कहूँ कि मेरी आँखों में कभी-कभी खटकती भी है। खटकती सिर्फ़ तब है, जब कि वह मेरी माँ के पास जाती है, या मेरी रंगरेलियों की दवी ज़बान से टीका करने की कोशिश करती है। वैसे वेचारी विल्कुल गऊ है। मैंने उसे समझा दिया है और समझाता रहा हूँ कि वह जिस हालत में है, उसे उसी हालत में खुश रहना चाहिए। इसी में उसका कल्याण है। वह कोशिश करती है कि अपने आपको ठीक कर ले और उसे उसकी इस कोशिश में कामयावी भी मिल रही है।

मेरा परिचय अधूरा रह जायगा अगर मैं अपने 'पर्सनल स्टॉफ़' के बारे में कुछ न कहूँ। यों तो इस विभाग में सैकड़ों हाली-मवाली भरे हुए हैं और मेरे राज्य के और बाहर के भी लाखों आदमी ऐसे होंगे, जो इस विभाग में अपनी भरती सिर्फ़ रोटी-कपड़े तक पर कराने के लिए तैयार होंगे, लेकिन सिर्फ़ एक आदमी ऐसा है, जिस पर मेरा पूरा विश्वास है। उसका नाम भास्करदेव है। वह एक तालीमयाफ़्ता नौजवान है और कुत्ते की तरह स्वामि-भक्त। तनख्वाह तो मैं उसे सिर्फ़ डेढ़ सौ रुपया देता हूँ, लेकिन वह अपने-आपको इसी में कृत-कृत्य मानता है और मेरी सल्तनत का बच्चा-

वच्चा उसके सौभाग्य पर ईर्ष्या करता है। आख़िर मैं बेवकूफ़ नहीं हूँ कि एक ही आदमी को मर्यादा भी प्रदान करूँ और वड़ी तनख्वाह भी ! मैं वड़ा चालाक हूँ। लोग मुझे भले ही वेवकूफ़ समझ लें, लेकिन मैं खूब जानता हूँ कि पैसा किस तरह जमा किया जाता है। मैंने शान जमाने के लिए नौकर-चाकरों और सामन्त-सरदारों और अहलकारों की तो एक फ़ौज रख छोड़ी है, लेकिन उन पर ख़र्च जो-कुछ करता हूँ, उसकी दास्तान आप सुनें तो दाँतों ऊँगली काट लें और मेरी पीठ ठोंकते-ठोंकते आपका दम फूल जाय। लीजिए, मैं आपको वताये देता हूँ, बशर्ते कि आप किसी से कहें नहीं। मेरे 'पर्सनल स्टॉफ़' की तादाद सौ के क़रीव है, लेकिन भास्करदेव के अलावा मैं किसी को एक अधेला तनख्वाह नहीं देता। सिर्फ़ सुबह से शाम तक महल ही में उन सबको रोटियाँ खिला देता हूँ, शराव पिला देता हूँ, कभी-कभी उन्हें जीवन का व्रह्मानन्द भी मेरे तुफ़ैल से नसीव हो जाता है और मेरी मोटरों में वैठाकर उन्हें उनके घर भेज दिया जाता है। सिर्फ़ इसी सुख-सौभाग्य के लालच पर मेरे पर्सनल-स्टाफ़ के लोग अपना जीवन मेरे ऊपर न्योछावर किये रहते हैं। आप यह न समझें कि यह लोग कोई ऐसे-वैसे आदमी हैं। जी नहीं, मैं ऐसा बेवकूफ़ नहीं। इनमें से अधिकांश तो मेरे सामन्त-सरदारों के लाड़ले हैं, कुछ मेरे राज्य में इधर-उधर बसे हुए सेठ-साहूकारों के वंशज और वाक़ी सब बाहर से आकर वसे हुए, ऐसे पढ़े-लिखे नौजवान हैं, जिन्होंने परीक्षा की कड़ी आग में तपकर यह सिद्ध कर दिया है कि सिर्फ़ रोटी-कपड़े की व्यवस्था, शानदार ज़िन्दगी और मेरे चरणों की रज उन्हें जीवन-भर सन्तुष्ट रखने के लिए काफ़ी है। आप ताज्जुब कर सकते हैं कि आख़िर सामन्त-सरदार क्या बेवकूफ़ हैं कि अपने नौनिहालों को वे-पैसे-कौड़ी मेरी ग़ुलामी के लिए भेज देते हैं? जी नहीं, इसमें भी उनका मतलब है और इस मतलब को मैं अच्छी तरह समझता हूँ। उनका ख़याल है कि अगर उनके वलीअहद मेरे कृपा-पात्र बने रहें तो तव-जव वे खुद लुढ़क जाएँगे तो उनके परिवार का राजकीय सम्मान अनायास ही अक्षुण रह सकेगा। यह सम्मान का मोह ही तो उन लोगों को मजबूर किये रहता है। बेचारे खुद सारी ज़िन्दगी बिना कौड़ी-पैसा लिए मेरी नौकरी करते रहते हैं और साथ ही अपने वंश-भर के कमरपट्टे पर ग़ुलामी का

का दस्तावेज़ लिखवा देते हैं। यही तो भेद है मेरी कूटनीति का और इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि मैं राजा हूँ, मुझे राजा होने का अधिकार है; क्योंकि मैं राजनीति का पण्डित, अर्थ-शास्त्र का आचार्य, शासन-कार्य का उद्भट नायक और बड़ा तिकड़मी जीव हूँ। लोग समझते हैं कि मैं दूसरे राजाओं की तरह बेवकूफ़, रुपया बरबाद करने वाला और नासमझ हूँ। लेकिन मैं क्या हूँ—यह तो मैं ही जानता हूँ !

भास्करदेव की आत्म-कहानी

लोग खाँ-म-खाँ मुझसे जलते हैं। मैंने किसी का क्या बिगाड़ा क्या है? अगर हिज़ हाइनेस ने पसन्द कर लिया, मेरी स्वामि-भक्ति से प्रसन्न होकर मुझे अपने विश्वास में ले लिया, मेरी तनख्वाह रजिस्टरों में चार सौ रुपया दिखला दी, मेरे रहने के लिए शानदार बँगला दे दिया, मुझे एक मोटर इनाम में दे डाली और पिछली कलकत्ता-यात्रा में मेरे लिए दो हज़ार के कपड़े खरीद दिए तो आखिर इसमें मेरा क्या दोष है? विश्वास में तो उन्होंने इसलिए लिया कि मैं अन्धों में काना सरदार हूँ। तनख्वाह रजिस्टर में चाहे जितनी दिखलाएँ मिलते तो डेढ़ सौ ही हैं! मोटर उनके यहाँ बेकार खड़ी थी, वह भी न जाने किस दिन नौकरी के साथ ही साथ छिन जाय! बँगला बँगलेवालों का—यानी खुद हिज़ हाइनेस का! ख़ाली पड़ा हुआ था। हमारे राज्य के मन्त्री पहले उसमें रहते थे, जब उन्हें उनकी बेवकूफ़ी ने धक्के देकर राज्य से बाहर निकाल दिया, तो बँगला मेरे गले पड़ा। कलकत्ते में कपड़े इसलिए बनवा दिए कि वहाँ महाराजा साहब मुझसे जो काम लेना चाहते थे, उसके लिए उन कपड़ों की सख्त ज़रूरत थी। उन्हें पहने बग़ैर वह काम न हो सकता था और वह काम न होता तो हिज़ हाइनेस की बड़ी भारी हानि होती! अब आप ही बताइये कि इन भीतर की बातों को कौन जानता है? लेकिन यह सब मेरी-आपकी बातें हैं—किसी को कानों-कान मालूम न हों!

लोग ताज्जुब करते हैं कि हिज़ हाइनेस मुझसे न जाने क्यों खुश हैं।

अरे भाई, खुदा ने बीबी दी है तो काली, बहनें हैं तो सब-की-सब बेडौल और बदसूरत। आख़िर मेरे पास सिवा मेरी ख़िदमतों के है क्या, जिसके ज़ोर से मैं हिज़ हाइनेस की मेहरबानी का 'स्विच' दबाये रखता हूँ? हाँ, अगर नमकहलाली गुनाह है तो मैं बेशक गुनहगार हूँ।

मेरे बाप इसी रियासत में नौकर थे और बड़े घुटे हुए राछ थे। उन्हीं की बदौलत राज-दरबार की जो-कुछ तालीम मुझे मिली है, उसका हर्फ़-ब-हर्फ़ मैं पालन करता हूँ। इसी लाइन पर मैं चलकर तरक्क़ी के रास्ते पर सरपट दौड़ा चला जा रहा हूँ। मेरे बाप ने सिखाया था—राजा के 'मूड' के साथ-साथ बहना ही तरक्क़ी का राज़ है। अगर उनका जी बातें करने को नहीं चाहता है तो तुम अपना मुंह सीकर उनके तलुवे सहलाने लगो, अगर वह बातें करने के 'मूड' में हैं तो अपनी सारी क़ाबलियत खर्च करके भी खुद बातें किये जाओ और उन्हें बातें करने की सामग्री दो। अगर वह किसी पर नाराज़ हैं तो तुम भी ज़ाहिर करो कि तुम उस आदमी के जानी दुश्मन हो, अगर वह किसी पर खुश हैं तो तुम उसकी तारीफ़ों के पुल बाँध दो। अगर मालिक फ़िज़ूलखर्च है तो उसकी फ़ैयाज़ी के गीत गाओ, और पैसे की जगह दस पैसे खर्च करो और कराओ। अगर वह कंजूस है तो किफ़ायतशारी के सेहरे पढ़ो और जहाँ एक पैसे का खर्च हो, वहाँ अधेले से काम चलाओ!—अगर किसी ग़रीब का गला काटकर, किसी से झूठ बोल कर, छल-कपट करके, किसी भी प्रकार रुपया बचा सको तो बचाओ और और मालिक को अपनी कार-गुज़ारी दिखाओ।

मैं अपने बाप के इस निर्देश की सीध में चलने का यत्न कर रहा हूँ।

अब आप ही कहिए—अगर मैं मुजरों में आई हुई तवायफ़ों को दो सौ रुपये रोज की बजाय सौ रोज रुपये में धता बता देता हूँ, अगर मैं शराब की बोतलें खानसामों बावर्चियों और कोचवानों के काम नहीं आने देता, अगर मैं बम्बई और कलकत्ते से रण्डियाँ मंगाने की बजाय अपनी रियासत की अस्पतालों की ईसाई नर्सों, स्कूलों की मिस्ट्रेसों और उन ग़रीब लोगों की खूबसूरत बहू-बेटियों को मँगाने की सलाह देता हूँ, जिनका गुज़ारा इस तरीक़े पर आसानी से चल जाता है और हिज़ हाइनेस की साल भर में लाखों की बचत हो जाती है, तो इसमें मैं क्या बुरा करता हूँ।

लेकिन मेरा नाम भास्करदेव है, मैं अपने मालिक का नमक-हलाल नौकर हूँ। मुझे सिर्फ़ मालिक की खुशी का खयाल है और अगर मालिक खुश है तो दुनिया की नाराज़गी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

उस दिन हिज़ हाइनेस ज़रूरत से ज़्यादे सुरूर में थे। कहने लगे—'भास्कर, तुम बड़े अच्छे हो?'

मैंने दस्तावस्ता अर्ज़ की—'मैं हुज़ूर का खादिम हूँ।'

'नहीं भास्कर, खादिम मेरे हज़ारों हैं, लेकिन वह सब नमकहराम हैं।'

मैं गद्गद् हो गया और मैंने विनय से सर झुका लिया।

हिज़ हाइनेस ने फिर कहा—'तुम में मैंने यह खूबी पाई कि तुम मेरी नेकनामी को अपनी इज़्ज़त, मेरी बदनामी को अपनी तौहीन और मेरे रुपये को अपनी जान से ज़्यादे समझते हो।'

मेरे बाप ने सिखाया था कि ऐसे मौकों पर चुप रह जाना चाहिए और मन की सारी कृतज्ञता चेहरे पर लाकर प्रकट कर देनी चाहिए। मैंने भी वैसा ही किया और सर झुकाकर रह गया।

'देखो भास्कर, हिज़ हाइनेस कह रहे थे—'तुम्हीं बताओ कि मैंने आखिर उन लोगों का बिगाड़ा क्या है—जो मेरे खिलाफ़ हैं? मेरे वज़ीर-उमरा, मेरे सामन्त- सरदार मेरे प्रजाजन सभी तो मेरे खिलाफ़ हैं,—सभी तो मुझे गालियाँ देते हैं, सभी तो मेरा अहित चाहते हैं। जिसे जो जुगत मिलती है, उसी जुगत से मेरा सर्वनाश करना चाहता है, मेरे खिलाफ़ षड्यन्त्र करता है, मेरी जेब काटना चाहता है। मेरा क़सूर सिर्फ़ यह है कि मैं राजा के घर पैदा हुआ हूँ, राजा हूँ, सारे दुनियावी ऐश-आराम मुझे मिले हुए हैं और मैं हमेशा खुश रहना चाहता हूँ। लेकिन आखिर इसमें किसी का क्या बिगाड़ता हूँ?'

मैंने सर झुकाकर अर्ज की—'यह सब लोगों का कमीनापन है सरकार!'

हिज़ हाइनेस ने शराब के और घूंट लेकर नशे पर गहरे नशे का कोट किया और कहा—'तुम सच कहते हो। सब कमीने हैं—सब नालायक हैं। अरे, अगर प्रजा कुछ कहती है तो मैं उसे बर्दाश्त करता हूँ; क्योंकि मैं प्रजा का

सेवक बनना चाहता हूँ, लेकिन जो टुकड़खोर मेरे टुकड़ों पर पल रहे हैं, जिन्हें सुबह से शाम तक सिवा मौज मारने और पेट-भर खाने के कोई काम नहीं, उन्हें क्या हक़ है कि मेरा बुरा चाहें। मैं उनके साथ हर तरह की हमदर्दी दिखाता हूँ। वह बीमार होते हैं तो सरकारी हस्पताल में मुफ़्त उनका इलाज हो सकता है, उन्हें अच्छा खाना, अच्छा पहनना महल से मिलता है, अगर उनकी अचानक मौत हो जाय तो उनके बाल-बच्चों के लिए वज़ीफ़े का प्रबन्ध है। आखिर उन्हें दुःख क्या है, जो हरामज़ादे हमेशा मेरी मर्यादा और मेरे मन को ठेस पहुँचाने के कुचक्र रचा करते हैं?··· और मेरे वज़ीर···'

यहाँ पहुँचकर हिज़ हाइनेस रुक गये!

'···इन वज़ीरों ने जैसा मेरा नाक में दम किया है, उसकी तो कुछ न पूछो। जितनी तनख्वाह मुझे इन लोगों को देनी पड़ती है, उससे कम में मुझे उनसे पचास-गुना क़ाबिल और हज़ार-गुना स्वामि-भक्त आदमी मिल सकते हैं। लेकिन मैं राजा हूँ और मुझे इन्साफ़ का ख़याल है। उन लोगों ने मेरी सल्तनत में अपनी उमर बिताई है, मैं नहीं चाहता कि जहाँ वे लोग हाकिम बनकर रहे हैं, वहाँ कुत्तों की तरह रहने पर उन्हें मजबूर किया जाय। मैं नहीं चाहता कि उन लोगों को उनके मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों की नज़रों में गिराऊँ, उन्हें रुस्वा करूँ, उनका बुढ़ापा ख़राब करूँ। ···मेरी इसी शराफ़त का नाजायज़ फ़ायदा तो ये लोग उठाते हैं भास्कर!'

मैंने सिवा 'सच हुज़ूर, सच है!' के कुछ न कहा।

'और मेरी माँ', हिज़ हाइनेस का गिलास उनकी ख़ूबसूरत ख़िदमतगार ज़र्क-वर्क कपड़े पहने, आकर चुप-चाप बदल गई थी। उन्होंने इसी गिलास का पहला घूंट लेकर कहा—'मुझे शर्म आती है कि मैं उसे माँ कहूँ।···वह मेरी माँ है भास्कर! वह मेरी सब से बड़ी दुश्मन है। दुनियाँ में जो व्यक्ति मेरे दुश्मनों से मिलकर उनके आगे मेरी ही बुराई करेगा, वह दुश्मन नहीं तो और क्या है? कितने मर्तबा मैंने समझाया कि वह इन हरामज़ादों को अपने मुँह न लगायें, लेकिन अगर मेरी बात वह मान जायें तो उनके बड़प्पन में कमी आ जाये न! अरे भाई, विधवा औरत को सिवा हरि-नाम के और काम ही क्या? क्या ज़रूरत है, उन्हें राजनैतिक मामलात में दिलचस्पी

लेने की ? क्यों वह कोशिश करती है, मेरे मिनिस्टर्स को अपने तरफ़ तोड़ने की ? तुम्हीं सोचो भास्कर, मेरे दिल पर ऐसी बातों का क्या असर होता होगा ? यह माँ के काम हैं ? ···यह हर्कतें तो साफ़ दुश्मनों की हैं, दुश्मनों की !! अब तुम्हीं बताओ मैंने क्या बुरा किया, अगर उसका अपने महल में घुसना बन्द करा दिया ? अगर उसकी गति-विधि पर नज़र रखवा दी ? अगर उसकी ख़तो-किताब पर सेन्सर बिठा दिया ? मैं राजा हूँ भास्कर, अगर अपने दुश्मनों से खुद मैं ही खबरदार न रहूँगा तो कौन रहेगा ?'

मैं चुप था ।

अगर्चे में अक्सर विचार किया करता हूँ कि इतनी तादद में प्रजाजन और नौकर-चाकरों और सरदार-सामन्तों के हिज़ हाइनेस के भीतरी दुश्मन बन जाने के कारण क्या है और कभी-कभी मेरी समझ में उनमें से कुछ कारण आते भी हैं, लेकिन मेरे बाप ने मुझे बताया था कि राज-दरबार में तरक्की पाने के लिए न तो ऐसी बातें मुँह से निकालनी चाहिए और न उन्हें दिल में ही आने देना चाहिए । मैं ऐसी बातें मुँह से तो नहीं निकालता, लेकिन दिल में आने से कैसे रोक सकता हूँ ?

लेकिन मुझे वास्तव में हिज़ हाइनेस से हमदर्दी है । इसीलिए तो महज़ डेढ़ सौ और रोटी-कपड़े पर पड़ा हुआ हूँ । सोचता हूँ, अगर और कहीं भी नौकरी करूँगा तो इससे ज़्यादे का 'स्टार्ट' मिल सकना असम्भव है, क्यों न यहीं दिन काट दूँ ? पिताराम की सीख है कि राज-दरबार में तरक़्क़ी राजा की इच्छा से होती है, इसलिए श्रीकृष्ण के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते माँ फलेषु कदाचन' की उक्ति के अनुसार अपना फ़र्ज़ अदा किये जा रहा हूँ, फिर यह भी सोचता हूँ कि महज़ डेढ़ सौ रुपये का ही तो मोह नहीं है और भी बहुत-सी बातें हैं । महल के जितने नौकर-चाकर और अमले हैं, सब मुझसे झुक-झुककर सलाम करते हैं । राजधानी के छोटे-मोटे पदाधिकारियों के लिए तो मैं हौवा ही हूँ । बुड्ढे-बुड्ढे लोग तक जिनकी दाढ़ी के बाल राज-परिवार की सेवा में सफ़ेद हुए हैं, मेरा रोब मानते हैं । जो रोब मानना नहीं चाहते, उनसे मैं ज़बरदस्ती रोब मनवाता हूँ । इस पर भी अगर वह अपनी अकड़ से बाज़ नहीं आते तो ज़रा-से इशारे से उनका पत्ता कटवा देता हूँ । इसकी मेरी अलग रीति है । वक्त आने पर आपको भी बतला दूँगा—लेकिन

ज़रा अपने ही तक महदूद रखियेगा।

और सबसे बड़ा फ़ायदा तो यह है कि ग़रीब के घर में पैदा होकर भी कम-से-कम आधा वक्त बादशाहों की तरह रहता हूँ। क्या हुआ, अगर घर पर 'पुनर्मूषिको भवेत्' होना पड़ता है। जब तक महल में रहता हूँ, तब तक तो मैं भी राजमहल का निवासी हूँ। आख़िर चन्द्रमा भी तो एक तरफ़ से काला है, लेकिन लोग तो उसके प्रकाशमान् हिस्से को ही देखते हैं और उसी की तारीफ़ करते हैं।

लोग चाहे जितने जलें, जब तक मेरा वक्त अच्छा है, कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

मां-महारानी की कहानी

मेरा नाम पूछकर तो आप क्या करेंगे, लेकिन लोग मुझे माँ-महारानी कहते हैं। यों मेरी इज्ज़त अब एक मामूली औरत से ज़्यादे नहीं है, लेकिन लोग-दिखावे के लिये मेरी पूरी शान-बान की रक्षा की जाती है। अव्वल तो मुझे अपने बँगले से बाहर निकलने ही नहीं दिया जाता, लेकिन जब बार-बार हठ करने पर कभी मुझे बाहर जाना नसीब हो जाता है तो जिस मोटर में मैं बैठती हूँ, उसकी क़ीमत तीस हज़ार रुपया है, जिन बावर्दी प्यादों की फ़ौज मेरी मोटर के आगे-पीछे चलती है, उनकी वर्दी ज़र्क़-वर्क़ और क़ीमती होती है और मेरे जुलूस के आगे-आगे फ़ौजी बाजा बजता हुआ चलता है।

मैं इस सारी शान और इस इज़्ज़त से नफ़रत करती हूँ। मुझे मोटर से बाहर झाँकने तक की भी तो इजाज़त नहीं है। मैं ऐसा महसूस करती हूँ कि क़ैदखाने से निकालकर मैं संदूक में बन्द कर-दी गई हूँ। मेरे चारों तरफ़ जितने सिपाही और प्यादे होते हैं, उन सब के चेहरे पर मुझे शक, शुबह और कमीनेपन की स्याही दिखाई देती है। उन सभी की कोशिश रहती है कि किसी तरह उनकी नापाक आँखें मोटर की छत, शीशा दीवारें फोड़कर यह देख सकें कि भीतर घुटे-घुटे मेरी भाव-भंगी में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं। आप जानते हैं क्यों यह कोशिश इन कमीनों की होती है? सिर्फ़ इसलिए कि मेरी हरकतों की रत्ती-रत्ती रिपोर्ट वह उसे दे सकें।

आप 'उसे' जानते हैं? ज़रूर जानते हैं। एक लफ़्ज में वह मेरा पुत्र

है। लेकिन दुनिया अब उसे मेरे पुत्र के रूप में नहीं जानती, मुझे उसकी माँ के रूप में जानती है; क्योंकि वह राजा है और मैं उसकी माँ हूँ; इसी-लिए तो मैं माँ-महारानी कहलाती हूँ। अगर्चे वह मुझे एक नाचीज़ यतीम से ज़्यादे कुछ नहीं समझता। ज़रूर लोगों की नज़रों में मुझे वह सारे ही आदर प्राप्त होते हैं, जिन्हें राजा की माँ को पाने का अधिकार है, लेकिन मेरी नज़र में यह सारे पाखण्ड वृथा हैं, निस्सार हैं।

वह मेरा पुत्र है। मैंने उसे अपनी कोख से जन्म दिया है। यों तो उसकी देख-भाल के लिए पचीसों दाई-नौकरानियाँ थीं, लेकिन मुझे उससे इस कदर मोहब्बत थी कि दिन और रात में न जाने कितने बार मैं उठ-उठकर उसका मुँह देखती थी, उसके अवोध मुँह का चुम्बन लेती थी, उसकी बलैयाँ लेती थी, उसके लिए मर-मरकर जीती थी और जी-जीकर मरती थी। वह मेरा पुत्र था और मेरी और मेरे स्वामी की आशाओं का सहारा था।

मेरे स्वामी···। उनकी याद आती है तो मुझे रोमांच हो आता है, रुदन मेरे कण्ठ तक पहुँच जाता है। आँखें आँसुओं से लबरेज़ हो जाती हैं। वह ख़ुद चले गये, लेकिन मुझ अभागिन को छोड़ गये! उनका वह देवताओं का-सा शरीर अब भी रह-रहकर मेरे सम्मुख आकर खड़ा हो जाता है। मैं स्वप्न में उन्हें देखती हूँ और चौंक-चौंक उठती हूँ और स्वप्न में ही कभी-कभी उनसे कहती हूँ 'मेरे देवता, तुम कहाँ हो? मैं तुम्हें खोजती हूँ। तुम आओ—सिर्फ़ एक मुहूर्त के लिए आओ, और मुझे अपने साथ ले चलो।' वह कुछ जवाब नहीं देते और अन्तर्द्धान हो जाते हैं। मेरी आँखें खुल जाती हैं।

मेरे स्वामी वास्तव में एक राजा थे। उनका शरीर सोने की तरह ठोस और कान्तियुक्त था, उनकी आँखें गन्धर्वों के समान मधुमयी थीं, उनका मुख-मण्डल राजकीय तेज से दैदीप्यमान् था, उनका कण्ठ-स्वर दृढ़ किन्तु मधुर था। किसकी मजाल थी, जो उनकी आँख-से-आँख मिला सकता? कौन था, जो उनके महान् व्यक्तित्व की कहीं भी निन्दा करता? मैं भी उनकी प्रभा और तेजस्विता से हतप्रभ हो-हो जाती थी। मैं अपने बाप की बेहद हठीली लड़की थी और जब ब्याह हुआ तो लोग इस विषय में टीका कर रहे थे कि पति से मेरी बनेगी नहीं। मैं भी यह समझकर विवाह करना

चाहती थी कि पति राजा हों तो हुआ करें, मैं राजा की बेटी भी हूँ और राजा की रानी भी—इसलिए मैं उन्हें अपने तेज से उद्भासित करके अपने वश में कर लूँगी। इसी गर्वित अहंकार के साथ मैं किसी शालीन पुरुष-रत्न की पत्नी बनकर वैवाहिक जीवन के शालीनतामय मंच पर अवतरित होना चाहती थी।

लेकिन इसके पहले ही मुझे अपनी ग़लती मालूम हो गई। वह घटना मेरे जीवन की सबसे मधुर घटना है। इसलिए आप उसे सुन लें। आज अगर्चे उस घटना की स्मृति-मात्र मेरे शरीर का रोआँ-रोआँ खड़ा कर देती है, शोक से मेरा अन्तस्तल प्लावित हो उठता है, मेरी आँखों के सम्मुख वह देव-मूर्ति आकर विराजमान हो जाती है। मैं उनके इस काल्पनिक दर्शन से विभोर होकर अपनी सुध-बुध बिसार बैठती हूँ, और मैं चाहती हूँ कि यह स्मृतियाँ मुझसे जितनी दूर रहें, उतना ही अच्छा है। लेकिन आखिर मैं स्त्री हूँ और पति ही स्त्री के लिए वास्तविक आदर, गौरव, प्रतिष्ठा और अहंकार की वस्तु है। मेरी कहानी में यदि मेरे पति की कहानी न आ सकी तो मेरी कहानी अधूरी है—उसका कुछ भी महत्व नहीं है। मेरी कहानी के साथ उनकी कहानी अनिवार्य रूप से आबद्ध है—या कहूँ, वास्तव में तो यह उन्हीं की कहानी है—मेरी कहानी तो केवल उनकी छाया-मात्र है।

तो, मैंने कहा कि मैं अपने बाप की बेहद लाड़ली और बेहद हठीली कन्या थी। बाईस बरस की उमर तक मैंने ब्याह न किया था। यद्यपि हमारी तरफ़ सोलह बरस के बाद कन्या का कुमारी रखना पाप समझा जाता है। परन्तु कोई वर मेरे पसन्द ही न आता था। न-जाने कौन-से आस्मान पर मेरा दिमाग़ रहता था! मेरी अखण्ड सुन्दरता के पतिंगे बन-बनकर बहुत-से राज-परिवारों ने अपने सन्देश मेरे पास भेजे, लेकिन उनके चित्रों को मैं हमेशा अपने जूते की नोक पर धरकर उछाल देती थी। और मेरी अनुचरी उसका समाचार पिताजी को दे आती थी। मेरे उद्भट सौन्दर्य और स्वतन्त्र व्यक्तित्व ने विकसित होकर मुझे स्त्री से अधिक पुरुष बना दिया था। मैं सदा मर्दाने कपड़े पहना करती थी, घोड़े की सवारी किया करती थी, अपने हमजोली अनुचरी-मण्डल के साथ पोलो से लगाकर कबड्डी तक के खेल खेला करती थी और अपने जीवन के इस बहाव में

कोई मुझे बाधा देने वाला न था। मेरी सारी दासियाँ, नौकरानियाँ, हम-जोलियाँ हमेशा मेरी ही तरह मर्दाने वेश में रहती थीं और राज्य-भर के प्रजा-जन राज्य के बड़े-से-बड़े पदाधिकारी से भी इतना न डरते थे, जितना मेरी एक मामूली नौकरानी से।

यह सब इस बात का फल था कि मैं अपने पिताजी की इकलौती सन्तान थी। राज्य का वारिस मुद्दत तक उन्होंने गोद नहीं लिया, और उम्मीद करते रहे कि पुत्र उत्पन्न होगा। इसके लिए दुनिया-भर के जन्तर-मन्तर, ज़ादू-टोट के, दवा-दर्पण सभी कुछ किये गए, लेकिन जिसके भाग्य में पुत्र-सुख नहीं, उसकी मदद कोई भौतिक उपाय नहीं कर सकता। यही कारण था कि पिता का सारा स्नेह मुझपर केन्द्रित हो गया था और राज्य में सर्वत्र मेरी तूती बोलती थी। पिताजी के सामने मैं बेहद उद्दण्ड थी और इसी उद्दण्डता के फल-स्वरूप मैंने उन्हें बता दिया था कि मैंने आजीवन कुमारी रहने का निश्चय कर लिया है। कारण पूछने पर मैंने उन्हें बताया कि दुनिया में ऐसा कोई माई का लाल अभी जन्मा नहीं, जिसके ताबे होकर मैं रह सकूँ। यह सुनकर मेरे पिताजी ने कोशिश की कि किसी मामूली रजवाड़े या जागीरदार को घर-दामद बनाकर रख लें। लेकिन मेरा तेजस्वी स्त्रीत्व इस प्रस्ताव को भी स्वीकार न कर सका और दिन इसी तरह एक-एक करके बीतते रहे।

लेकिन समय आया, जब मेरे पिताजी को अपना वारिस लेना पड़ा, और इसके साथ ही उस घर से जैसे मेरा दानी-पानी उठने लगा। मैंने स्थिति के परिवर्तन को महसूस किया और पिताजी से दरख्वास्त की कि किसी पहाड़ी स्थान पर मेरे लिए एक बंगला खरीद दें—ताकि मैं वहीं जाकर रह सकूँ। मैंने यह भी कहा कि अब मेरा राजमहल में रह सकना असम्भव है। और इसके साथ ही पिताजी ने मेरी आँखों से आँसू भी देख लिये।

पहाड़ी स्थान में बँगले का प्रबन्ध तो खैर मेरे लिए न किया गया लेकिन वर की तलाश सरगर्मी से शुरू हो गई। और बीसों आदमी इधर-उधर दौड़ा दिये गए। बरसों या महीनों में नहीं, हफ़्तों में ही 'उनका' पता मिल गया। उनकी कई रानियाँ थीं, लेकिन सन्तान किसी से न हुई

थी। इसीलिए डॉक्टरों की सलाह थी कि उन्हें एक और विवाह करना चाहिए। उनकी मर्यादा बहुत बड़ी थी, मेरे पिता की हैसियत तो उनके सामने कुछ न थी। इसलिए मेरे पिता की बड़ी अभिलाषा हुई कि यह सम्बन्ध जुड़ जाय। मैंने उनका यश तो सुना ही था, जब चित्र देखा तो दंग रह गई। लेकिन कई रानियों की बात ने मेरा उत्साह भंग कर दिया और मैं उदास होकर पड़ रही। पिताजी आये, माताजी भी आईं, गोद लिए हुए भाई साहब ने भी समझाया, सखी-सहेलियों ने भी डरते-डरते दबाव डाला, लेकिन मेरी स्वतन्त्र आत्मा किसी प्रकार इस रिश्ते के लिए तैयार न हुई। यद्यपि उनका चित्र देखकर मैं एक बार मुग्ध हो उठी थी, लेकिन काश, कि वह कुँआरे होते! मैं सोचती थी कि ऐसा होता तो मैं उनके चरण धो-धो कर पीती। लेकिन अब, अब उनकी अन्य कई रानियाँ हैं—उनका स्नेह बँटा हुआ है—मेरा उपयोग वह सिर्फ़ उत्तराधिकारी उत्पन्न करने के लिए करना चाहते हैं तब वहाँ मेरा क्या मान होगा? वहाँ मेरे लिए स्थान कहाँ है? वहाँ मुझे यह आराम, यह आज़ादी, यह गौरव कहाँ नसीब होगा?

लेकिन धीरे-धीरे मुझे समझाया गया कि मेरी धारणाएँ ग़लत हैं। महाराज ने मेरी सुन्दरता की तारीफ़ सुनी है और उनकी यह इच्छा है कि वे मुझसे भेंट करें—मुझे देखें और वह इस बात के लिये तैयार हैं कि यदि हम दोनों में से कोई भी एक-दूसरे को पसन्द न करे तो रिश्ता न हो। मुझे यह भी समझाया गया कि हमेशा सबसे छोटी रानी पर राजा का स्नेह अधिक होता है। साथ ही यह भी सुझाया गया कि अगर मैं उत्तराधिकारी की जननी हुई तो शेष रानियों की पोज़ीशन एक दासी से अधिक न रहेगी और दुनिया के लोग और इतिहास के पाठक केवल मुझे ही राज्य की रानी के रूप ने स्मरण करेंगे।

मैंने यह सब कुछ सुना तो मेरी आशा फिर वापिस लौट आई। मैंने उनके चित्र को उठाकर फिर ध्यान से देखा और जब मैं कमरे में अकेली थी तो एक बार उसे सीने पर धर लिया।

पड़ौस के एक राज्य में एक भोज की व्यवस्था की गई, जिसमें उन्हें और मेरे पिता—दोनों को निमन्त्रित किया गया। मैं और मेरी माताजी भी पिताजी के साथ गईं। वह इतनी बड़ी हस्ती थे, लेकिन इस भोज में वह

सिर्फ़ अपने दीवान के साथ आये थे। यह उनके दीवान क्या थे—मित्र थे, लँगोटिये थे और उनके जाँनिसार थे। दीवान साहब तो बाहर रहे और मुझे और मेरी माता को अलग कमरे में बिठाकर उन्हें हमारे पास छोड़ दिया गया। जब उन्होंने प्रवेश किया तो मेरी सारी आज़ादी मेरा सारा अहंकार और स्वातन्त्र्य-भाव न-जाने कहां भागने लगा। लेकिन मैंने पूरी शक्ति लगाकर अपने को संयत रक्खा और एक बार भरपूर नज़र से उनके साथ आँखें चार कीं। वह मुस्करा रहे थे और उन्होंने आपाद-मस्तक एक बार मुझे निहारकर अपनी आँखें नीची कर लीं।

पाँच मिनट के बाद वह चले गए। उन्होंने मुझें पसन्द कर लिया था।

और मैं? मेरी माँ ने जब मुझसे इस बारे में पूछा तो मैंने शर्माकर उसकी गोद में मुँह छिपा लिया।

दीवानबहादुर की आत्म-कहानी

मुझे लोग दीवान बहादुर अमरदास कहते हैं। मेरे नाम के आगे कई उपाधियाँ भी हैं, लेकिन मैं फ़िल्हाल उन्हें आपको बताना नहीं चाहता। इस समय मैं रियासत का चीफ़ मिनिस्टर हूँ और मेरे सर के बाल सन की तरह सफ़ेद हो चुके हैं। आजकल तो मैं हर रोज़ अपनी जान और नौकरी की खैर मनाया करता हूँ, लेकिन कोई ज़माना था, जबकि इस राज्य में सभी जगह मेरी तूती बोलती थी। यह ज़माना तब था, जबकि गत महाराज ज़िन्दा थे और उन्होंने अपनी गुण-ग्राहकता के कारण मुझे एक साधारण क्लर्क से उठाकर रियासत का प्रधान मन्त्री तक बना दिया था।

उनकी स्मृति की वह खट्टी-मीठी भावनाएँ इस बुढ़ापे में भी जब हृदय में उभर आती हैं तो मेरा कलेजा मुँह को आ जाता है। उन्हीं की बदौलत मैं, आज मैं हूँ। वरना जैसी विषम परिस्थितियों में मैंने जन्म ग्रहण किया, जिस तरह की कठिनाइयों से मेरा सामना हुआ, जिस तरह ज़िन्दगी की एक-एक सीढ़ी मैंने पार की, उसे मैं ही जानता हूँ।

लेकिन वह मर गए और इस बुढ़ापे में मुझे एक ऐसे नौजवान की नौकरी करनी पड़ रही है, जिसकीं भावनाएँ उम्र की रंग-बिरंगी के साथ-ही-साथ हर रोज बदलती रहती है। हालत यहाँ तक पहुँच चुकी है कि कोई यह नहीं कह सकता कि सुबह अगर इस नौजवान के ख़यालात कुछ हैं तो शाम को क्या हो जाएँगे। मैं अपने बुढ़ापे से, अपने मृत स्वामी के प्रति की गई प्रतिज्ञाओं से, माँ-महारानी की वर्तमान दयनीय स्थिति से और इस नौजवान के भविष्य के ख़यालात से किसी-न-किसी तरह अपने दिन बिताये

जा रहा हूँ। इस रियासत के, उसके राज्य-परिवार के, उसके अतीत और वर्तमान के अनन्त भेद मेरे कलेजे की आड़ में छिपे पड़े हैं और मैं महसूस करता हूँ कि अगर मैं इन्सान हूँ तो मुझे मरते दम तक अपने मालिक के उस आदेश का पालन करना चाहिए, जो उन्होंने अपना आख़िरी साँस लेते समय अपनी गऊ-सी महारानी और अपने बच्चे का भार मुझे सौंपकर दिया था। दूसरी रानियों में-से कुछ तो उनके जीवनकाल ही में स्वर्गस्थ हो चुकी थीं और शेष के लिए उन्होंने अपने सामने सामने ही जागीर-जायदाद और नकदी की व्यवस्था कर दी थी। सिर्फ़ छोटी रानी, जिन्हें राजमाता बनने का सौभाग्य ईश्वर ने प्रदान किया था, मरते समय भी उनकी हार्दिक करुणा का कारण बनी हुई थीं।

छोटी रानी···

इस बदनसीब औरत का ध्यान आते समय मेरे शरीर का रोम-रोम थर्रा जाता है। जब महाराज का देहान्त हुआ तो मैंने आँखों में आँसू भरकर एक बार छोटी रानी के मुख की ओर देखा था। और उनका वह रूपोद्-भासित मुख-मण्डल जिस तरह शोक से नीला पड़ गया था, उनके बड़े-बड़े नेत्र जिस प्रकार आँसुओं से भरकर मेघाच्छन्न बादल का रूप धारण कर चुके थे, उनका शरीर अंगूर की बेल की तरह अमित सौन्दर्य के भार से झुका हुआ जिस दयनीय रीति पर थर-थर काँप रहा था, उसकी याद आज भी मुझे आती है तो शोक और सन्ताप से मेरा कलेजा हिल जाता है। उस बेचारी का सौन्दर्य फूटने भी न पाया था कि दैव ने उसका सुख-सौभाग्य चूर्ण कर डाला। कैसी डरावनी वह घड़ी थी! महाराज का शरीरान्त होने के कुछ ही क्षण पश्चात् छोटी रानी, राजकुमार का हाथ पकड़े, बराबर वाले कमरे में चली गयीं। मैंने उनका यह व्यापार देखा तो मेरा शरीर सिहर उठा। मुझे शंका हुई कि छोटी रानी जान पर खेल जाएँगी। मैं साहस करके उनके पीछे-पीछे गया और उनके कमरे के दरवाज़े पर खड़ा हो गया।

महाराज का मृत शरीर अपने मृत्यु-कक्ष में क्षण-भर के लिए एकाकी रह गया।

रात के दो बजे थे और दास-दासी व चिकित्सक, सब अपने-अपने

स्थानों पर उँघ गये थे। चिकित्सकों का मत था कि महाराज की मृत्यु की अभी कई मास कोई आशंका नहीं है, लेकिन खुद महाराज ने मृत्यु से चौबीस घण्टे पूर्व मुझसे कह दिया था कि अब उनका अन्त समय आ पहुँचा है। उनकी आज्ञानुसार ही हमने उस दिन सन्ध्या से समस्त दास-दासियों, परिचारिकाओं और चिकित्सकों को उनके कक्ष से दूर हटा दिया था और इसके उपरान्त वह मृत्यु-पर्यन्त मुझसे और छोटी रानी से वार्तालाप करते रहे। मरते समय तक उनके चेहरे और उनकी भाव-भंगी के तेज में कोई अन्तर न आया था और जिस समय उन्हें आखिरी हिचकी आई, उस समय उनका मुख-मण्डल एक अपूर्व हास्य-छटा से प्रदीप्त हो उठा था !

'महारानीजी…!' मैंने कक्ष-द्वार पर पहुँचकर, अपने आँसू भरे नेत्र नीचे झुकाकर आवाज़ दी।

उन्होंने कोई उत्तर न दिया और राजमहल की वह भयावनी रात मौत के सन्नाटे में घुल-मिलकर और भी भयावनी हो उठी।

मैं डर गया और हिम्मत करके कमरे का पर्दा हटा दिया।

वह अपने छपरखट पर औंधी लेटी हुई थीं और राजकुमार उनके समीप खड़े हुए थे। मैंने एक ही नज़र में सारा मामला समझ लिया और पीछे हट गया।

'रो ले अभागिन, रो ले !' मैंने अपने मन में कहा—'तू ही वह जीव है, जिसे इस मौत का सबसे अधिक कष्ट है। तेरा अधिकार है कि तुझ पर संसार के सारे सुख, जीवन की सारी सुविधाएँ और दुनिया के समस्त ऐश्वर्य न्यौछावर कर दिए जाएँ ! तू रो, ख़ूब रो—जिससे तेरे मन का सन्ताप आँसुओं की गंगा-जमना बनकर धुल जाय ! अभागिन, तेरे जीवन की कली अभी खिलनी भी शुरू न हुई थी कि दैव ने उसे मसोस डाला !'

मैंने रूमाल निकालकर अपने नेत्रों के आँसू रोकने का यत्न किया, लेकिन आँसुओं की धारा कहीं इस तरह रोके रुक सकती है ?

अकस्मात् बिजली की तरह महाराज के स्वर्गवास का समाचार पहले राजमहल में और फिर राजधानी में फैल गया। सारे महल की बत्तियाँ एकबारगी जल उठीं और कोने-कोने से दास-दासियों, प्यादे-सिपाहियों, रानियों और उनके 'पर्सनल-स्टॉफ़' की स्त्रियों के रुदन का हृदय-भेदी

स्वर व्याप्त हो उठा। क़िले पर तोप की आवाज़ें हुईं और राजधानी का बच्चा-बच्चा उस भयानक अंधेरी रात में, शीत और अन्धकार का कुछ भी विचार किये विना, राजमहल की तरफ दौड़ पड़ा। महाराज की जय-जयकार के नारों के रूप में जनता का शोक उमड़-उमड़कर समस्त राजमहल को स्तम्भित करने लगा।

उनकी लाश, इसी तरह निर्निमेष-भाव से हँसती हुई पड़ी थी।

राजा—नहीं, एक महान् पुरुष प्रस्थान कर गया था।

'दीवानजी···' जब मैं फिर छोटी रानी के कक्ष की तरफ़ गया तो गद्-गद्-कण्ठ से निकली हुई यह आवाज़ मेरे कान में पड़ी।

'आज्ञा महारानीजी?' कहकर मैं रोता हुआ, सर झुकाकर उनका आदेश सुनने के लिए प्रस्तुत हुआ।

महारानी मेरे पास आयीं। राजकुमार का हाथ इस समय भी उनके हाथ में था।

'आप इसे सँभालिये दीवानजी, मैं सती होना चाहती हूँ।'

मेरा पैर जैसे जीते साँप पर पड़ गया।

'यह क्या महारानीजी···?'

अचरज और परेशानी ने बाँध बनकर मेरे आँसू बरबस रोक लिए। मैंने महारानी के उस शोकान्वित नील-वर्ण मुख-मण्डल पर भरपूर नज़र से ताकने की गुस्ताख़ी की।

'हाँ, दीवानजी, अब मेरा जीते रहना वृथा है, सती होना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है।'

एक दासी सर धुनती-विलखती मेरे पास से गुज़र रही थी। उसके कान खड़े हुए और क्षण-के-क्षण में सारे राजमहल और सारी राजधानी में यह समाचार फैल गया कि छोटी रानी सती होना चाहती हैं।

और राजमहल के बाहर एकत्रित हुई भीड़ ने 'महाराज की जय' के स्थान पर 'छोटी महारानी की जय!' 'सती महारानी की जय!' 'पतिव्रत-धर्म की जय!' के नारे बुलन्द करने शुरू कर दिये।

लेकिन मैं और महारानी के कुछ सम्बन्धी और महाराज के कुछ ख़ास सरदार-सामन्त महारानी को सांत्वना देने की कोशिश कर रहे थे। उनका

कहना था कि ब्रिटिश-सरकार के क़ानून के अनुसार सती होना जुर्म है और यह जुर्म रियासत के लिए ख़तरनाक होगा। बहुत-कुछ समझाने-बुझाने पर आख़िर महारानी ने अपना निश्चय परित्याग किया।

इतने में ख़बर मिली कि भारत-सरकार के स्थानीय प्रतिनिधि आ रहे हैं। और महारानी और राजकुमार को उनकी ख़ास परिचारिकाओं की देख रेख में छोड़कर हम लोग उधर दौड़े।

कुछ ही मिनटों में वह सारी कार्यवाहियाँ समाप्त कर दी गईं, जो प्रत्येक राजा के मरने पर अमल में लाई जाती हैं और मुझे महल के छज्जे में खड़े होकर सर्व-साधारण को नियमित रूप से गत महाराज के देहावसान और नए महाराज के सिंहासनासीन होने का समाचार उद्घोषित करना पड़ा। मेरे हृदय की इस समय जो दशा थी, वह कहते नहीं बनती! सच तो यह है कि सम्राट् के अँग्रेज़ प्रतिनिधि वहाँ न होते तो मुझे अपने-आपको सँभालना मुश्किल हो जाता।

मुझे अफ़सोस है कि मेरी आत्म-कहानी के इस हिस्से का विस्तार ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ गया है, लेकिन सच यह है कि जब तक मैं अपनी पुरानी स्मृतियों के कुछ जलते हुए संस्मरण आपको पेश न करूँ, न तो आप इस राज्य के साथ मेरे सम्बन्धों की ठीक-ठीक कल्पना ही कर सकते हैं और न उन दुर्व्यवहारों और कमीने हमलों की वीभत्सता का अहसान कर सकते हैं, जो मेरे प्रति, मेरे इस बुढ़ापे में अमल में लाये जा रहे हैं। मैं आपको बताऊँगा, कि किस प्रकार अनेक अवसरों पर मैंने अपनी जान की बाज़ी लगाकर इस रियासत की सम्मान-रक्षा की है। गत महाराज के हृदय में मेरी सेवाओं के लिए क्या स्थान था, महाराज की मृत्यु के उपरात छोटी महारानी और राजकुमार के प्रति मेरे भाव कैसे रहे और इस बुढ़ापे में मुझ पर जो-जो कलंक लगाये जा रहे हैं और जिन कलंकों के अभी आगे चलकर लगने की सम्भावना है, उनकी सार्थकता क्या है। साथ ही मैं यह भी बताऊँगा कि जिन हरामख़ोर सरदार-सामन्तों के षड्यन्त्रों पर विश्वास करके आज मेरी इज़्ज़त-हुर्मत तक की दुर्गति की जा रही है, उनकी वास्तविक स्थिति क्या है, उनकी स्वामि-भक्ति के पीछे भयानक षड्यन्त्रों का कौन-सा तूफ़ान छिपा हुआ है, किन-किन परिस्थितियों में किस प्रकार

उन्होंने समय-समय पर राजकुमार और महारानी का सफ़ाया करने की कोशिश की और किस तरह प्राणों पर खेलकर मैंने उनके सारे षड्यन्त्र विफल किये; और जिनकी इस नौजवान को बताने की मैंने कभी ज़रूरत तक न समझी। मेरे हृदय में उनके प्रति आज के अपमानों ने क्रोध और परिताप की ज्वाला धधका दी है। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि राज्य मुझे कुछ चाँदी के टुकड़े माह-ब-माह अदा करता है। मैंने कुछ जगह जायदाद बना ली है, ब्रिटिश-भारत में कुछ रुपया इधर-उधर फैला दिया है। मेरी ज़िन्दगी दिखावटी ऐश और आराम के साथ गुज़रती है लेकिन क्या चाँदी के यह टुकड़े मेरी उन सेवाओं के साथ तोले जा सकते हैं ? क्या धन के ढेर उस स्वामि-भक्ति का एवज़ाना समझे जा सकते हैं, जिसके कारण बार-ही मैंने अपनी जान ख़तरे में फँसाई है, महीनों तक रात-रात भर जागता रहा हूँ और राजकुमार को अपने सीने पर सुलाया है, भारत-सरकार के उद्भट प्रताप से मोर्चा लेकर वर्षों के लम्बे समय तक रियासत को नष्ट होने से बचाया है ? आज मेरी शिकायत की जाती है कि मैं मुँहफट हूँ गुस्ताख़ हूँ, इस गर्म ख़ून के नौजवान की बे-जा हरकतों की चर्चा ग़ैर ज़िम्मेदारी ढंग पर करता हूँ और कहा जाता है कि चूंकि मैं राज्य की तनख़्वाह पाता हूँ, राज्य का नौकर हूँ, इसलिए मुझे इस क़दर आज़ादी लेने का हक़ नहीं है —लेकिन क्या यह नाचीज़ नौकरी मेरी आत्मा को ख़रीद सकती है ? आज मुझे बताया जाता है कि मैं रिश्वतख़ोर हूँ, मैंने प्रजा का रक्त चूस-चूसकर धन एकत्रित किया है, लेकिन क्या कोई ऐसा माई का लाल इस दुनिया के पर्दे पर मौजूद है, जो मेरे विरुद्ध इस कलंक को साबित कर सके ? क्या खुद महाराज की यह हिम्मत है जो मेरी आँख-से-आँख मिलकर यह कह सकें कि मैंने ज़िन्दगी में कभी किसी का एक पैसा रिश्वत के रूप में स्पर्श किया ? अगर मैं अपनी किफ़ायतशारी और मिलनसारी की वजह से अपने परिजनों की स्थिति ठीक कर सकने समर्थ हो सका हूँ तो क्या मैंने कोई दोष किया है ? आज मेरी इस हरकत पर अंगुश्तनुमाई की जाती है कि मैं छोटी रानी के निकट जो अब माँ-महारानी हैं, क्यों जाता हूँ ? लेकिन क्या मैं अपने उस स्वर्गीय मालिक की आज्ञा उल्लंघन कर दूँ, जिसने मुझे ज़मीन से उठाकर आकाश में पहुँचाया ? और यह सिर्फ़ इसलिए कि कुदरत ने आज

उस व्यक्ति को मेरा मालिक बना दिया है, जिसे आज तक मैं अपना पुत्र समझकर प्यार करता रहा ? क्या मेरी आत्मा इतनी गिर गई है कि मुझ पर यह शक किया जाय कि मैं उसी व्यक्ति के विरुद्ध पडयन्त्रों में सहयोग दूंगा जिसको मैंने वर्षों के दीर्घकाल तक अपनी जान से ज़्यादे अज़ीज़ समझा ? जिसके लिए मैंने दिन को दिन नहीं समझा और रात को रात ! आप सोचिये, मेरे साथ यह कैसा भारी अन्याय है !

मैं—और उसे ज़हर दिलाऊंगा ? जिसकी सूरत में आज भी मैं उसी सुकुमार वालक की भोली-भाली तस्वीर देखता हूँ, जिसे देखकर आज भी बरवस मेरी इच्छा होती है कि उसे अपने सीने से लिपटा लूं, जिसके किसी वे-जा फ़ेल की खबर मुझे मिलती है तो मेरा कलेजा मसोस उठता है जिसकी कहीं निन्दा सुनता हूँ तो मेरी छाती में घूंसा-सा लगता है, जिसकी ज़िन्दगी ही मेरी ज़िन्दगी और जिसका यश ही मेरा यश है ! जिसके शरीर की एक-एक वूंद में मेरा अनुराग हैं, जिसके वारे में बातें करते-करते मेरा गला भर आता है, जिसके रूप में मैं अपने गत स्वामी के दर्शन करके और आँखों के आँसू कलेजे में पचाकर मैं अपनी भूखी आत्मा को शान्ति देता हूँ, जिसके उत्कर्ष की कल्पना मात्र से मेरा हृदय रोमांचित हो उठता है, उसके विपरीत मैं यदि घृणित भावना को स्थान भी आने दूं तो मुझ-सा कमीना कौन है और जिसके विपरीत इस तरह की बातों का लांछन मुझ पर लगाया जाय तो मुझ-सा अभागा कौन है ?

रानी त्रिपुरी की आत्म-कहानी

जीवन में पहली बार उन्हीं के आग्रह पर मैंने शराब पी थी। यों हमारी ताँती की उन राज-कन्याओं को शराब पीने के अनेक मौक़े मिल जाते हैं, जो योरोप की सैर कर आती हैं और बड़ी उम्र तक जिनकी शादी नहीं होती। लेकिन मेरा सौभाग्य था कि शादी के पहले दो बार योरोप की सैर कर आने के बावजूद भी मैंने उस दिन तक शराब का क़तरा हुआ न था। उनसे मेरी भेंट बम्बई में हुई थी—हुई क्या थी, कराई गई थी। और मैं पहली ही निगाह में उन पर कुर्बान हो गई। उनकी वह शर्मीली चितवन आज भी मुझे याद आती है तो मेरे जीवन का वर्तमान दुःख मेरी छाती फाड़कर बाहर निकल आता है।

पहली मुलाक़ात में हम दोनों कई घण्टे साथ रहे थे और उस मुलाक़ात से पहले उन्होंने मुझे देखा था, मैंने उन्हें नहीं। आम-तौर पर राज-घरानों की लड़कियाँ और रानियाँ असूर्यम्पश्या समझी जाती हैं, लेकिन अपने राज्य के बाहर जाकर न-जाने हम लोग कुछ हल्के हो जाते हैं या क्या—कि हमारी इच्छा स्वतन्त्रतापूर्वक बिचरकर ज़िन्दगी को आज़ादी की ताज़गी से धो-डालने के लिये अत्यन्त बलबती हो उठती है। मेरी तबियत कुछ तो यों-ही अल्हड़ थी, तिस पर कुँआरपन! योरोप की दो यात्राओं ने तो मेरे यौवन, मेरे अल्हड़पन और मेरी आज़ादी की भावनाओं में और भी निखार ला दिया था। इसीलिये मैं अकसर बम्बई जाकर मामूली औरतों की तरह सैर-सपाटे करने की शौक़ीन थी! हाय, मेरे वह हसरत-भरे दिन! तब सौन्दर्य मेरे अंग-अंग में आँख-मिचौनी खेलता फिरता था और जवानी का

यह हाल कि फट-पड़ने के लिये कहीं से जगह न पाती थी। वम्वई के जिस वाजार से गुजर जाती थी और जिस दूकान में सेकण्डभर को ठिठक जाती थी, देखने वाले निहाल हो जाते थे। मैं कनखियों से वड़े-वड़े तपस्वियों के दिलों को झूले में हिलाती, हँसती-खेलती-उछलती अपनी मोटर में आ-बैठती और फुर्र! और लोगों का झुण्ड ईद के चाँद की तरफ़ मुँह वाए हुए नमाज़ियों की तरह देखता रह जाता और मैं उनकी इस दयार्द्र दशा पर इतना हँसती—इतना हँसती—इतना हँसती कि हँसते-हँसते मेरे पेट में वल पड़ जाते।

इसी तरह की छटा में, एक दिन रात में उन्होंने मुझे 'मालावार-हिल' पर भांप लिया; न-जाने कहाँ से, कैसे और किस मिनट। मैं वेचारी, वावली लड़की, अपनी खूबसूरती जवानी और नज़ाकत से दवी-झुकी, मस्त थी। दो परिचारिकाएँ मेरे साथ थीं और 'शोफ़र' साहव मोटर के पास तशरीफ़ रखते थे। और वस! जव हम घर आ रहे थे तो इन्हीं शोफ़र साहव ने एक परिचारिका के कान में कह दिया कि आज एक आदमी की तरफ़ से हम पर अजव तरह की निगाह रक्खी गई है और उससे हम लोगों का परिचय पूछा गया है। शोफ़र का चूँकि फ़र्ज था कि अगर पेड़ का कोई रूखा पत्ता भी उड़कर हमारी तरफ़ आने की कोशिश करता है तो उसकी इत्तला मेरे कानों तक पहुँचा दे, इसलिए उसकी हरेक इत्तला पर ज़रूरत से ज़्यादा ग़ौर देने की मैं आदी न थी और इसलिए दो-चार मिनट के वाद मैं इस नतीजे पर पहुँच गई कि जिस ख़ास आदमी ने किसी ख़ास मतलव से मुझ पर निगाह रक्खी है, वही मतलव और कुछ हो, वद नहीं है और इसीलिए मुझे रात को नींद आने में कोई बाधा न पड़ी।

इसके चार ही दिन वाद मुझे ख़वर दी गई कि वह मुझे देखने के लिए आ रहे हैं। मैंने उनका नाम मुद्दत से सुन रक्खा था—और उनके यश की कुछ कल्पित-अकल्पित कहानियाँ भी मेरे कान में पड़ चुकी थीं। मर्यादा का उनकी क्या कहना! मुझे वतलाया गया कि उन्हें ख़ास तौर पर इसलिए आमन्त्रित किया गया कि संयोगवश वह भी वम्वई में मौजूद हैं और उनके पिता चूँकि मेरे पिताजी के परिचित थे, इसलिए इस परिचय को घनिष्ठता प्रदान करने का यह अवसर छोड़ना मुनासिब नहीं समझा गया। लेकिन

उनके आने के पहले-पहले, मेरी वफ़ादार परिचारिकाओं ने असल बात का पर्दा-फ़ाश मुझ पर कर दिया। और मैंने सुना तो मेरा कॉलेजा जैसे बाँसों उछलने लगा।

आखिर वह आये और मेरे पिताजी ने दूर तक बढ़कर उनकी अगवानी की। जब वह बैठें तो पाँच ही मिनट बाद मुझे माताजी के साथ वहां जाने का आह्वान मिला। मैं—योरोप की दो बार सैर की हुई आज़ाद लड़की मैं—सर से पैर तक गुलाब बनी हुई मैं—ज़मीन पर पाँव रखकर, आस्मान पर महसूस करती हुई मैं—गई, और हाथ जोड़कर मैंने मानों स्वप्न की-सी दशा में उन्हें प्रणाम किया। मुझे याद नहीं कि उनकी नज़र पहले मुझ पर पड़ी या माताजी पर, लेकिन वह खड़े हो गए और उन्होंने आगे बढ़कर माताजी के सम्मुख सर झुकाया और दोनों हाथ जोड़ लिए। पिताजी अपनी जगह पर खड़े, मुस्करा रहे थे।

मैंने मानो डूबते हुए की तरह उचककर उनकी यह क्रिया देखी। उनकी मर्यादा हमसे बहुत बड़ी थी और यह ज़रूरी न था कि वह मेरी माता के प्रति इतना शील-भाव प्रदर्शित करते। लेकित मैं—मैं तो उनके इस शील पर लहालोट हो गई, मेरे सर का पल्ला बरबस नीचा हो गया और संकोच से थरथराती हुई, उन सबके साथ-ही-साथ मैं सोफ़ा पर बैठ गई।

प्रथम दर्शन के अनुराग की चञ्चलता का अनुभव मैंने जीवन में पहली बार किया।

कुछ ही दिन बाद हमारी शादी हो गई और उस शादी की धूम-घाम का वर्णन करते आज मेरी छाती फटती है! मुझे मालूम न था कि उस शील के पुतले के बीचों-बीच बदचलनी का एक वज्र-दण्ड चुप-चाप अपनी जगह लिए हुए है। मैं जानती न थी कि वह क्या दिखाई देते हैं और क्या हैं! मुझ अभागिन को पता न था कि इस भौंरे की प्यास मुझ पवित्र नारी के रूप-रस से तृप्त होने वाली नहीं है। मैंने उन्हें साक्षात् कामदेव समझकर वरा और ईश्वर समझकर प्यार किया। मेरी दृष्टि में वह देवता थे, मैं उनकी तुच्छ दासी। उनकी गम्भीर मोहिनी ने मेरी सारी आज़ादी, सारी चुहल, सारी चंचलता को जैसे सोख-सा लिया और मैंने समझा, मैं उन्हें पाकर इस क़दर धन्य हूँ, जिस पर स्वर्ग को देवियों को स्पर्द्धा होनी चाहिए और

मृत्य-लोक की स्त्रियों को ईर्ष्या।

लेकिन तुरन्त ही मेरे यह सुख-स्वप्न ताागा टूटी हुई माला के मोतियों की तरह बिखर गए। कैसी वह मनहूस घड़ी थी, जब इत्र से महकते शयन-कक्ष में, चाँदी-सोने की उस पुष्प-शय्या पर बाल-बाल मोती पिरोये बैठी हुई मुझ नारी के सुहाग-रात के उस क्षण में वह शराब के नशे में झूमते-झामते भीतर आये। उनकी वह रसीली आँखें सुर्ख़ होकर फटी पड़ रही थीं, उनकी वह शर्मीली चितवन विकरालता में परिणत हो गई थी, उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे, उनकी चेष्टा विकृत और डरावनी बनी हुई थी, उनके पैर लड़खड़ा रहे थे और हाथ काँपे जा रहे थे, उनके मस्तक पर पसीने की बूंदें नफ़रत-भरे ढंग पर चू रही थीं, उनके चेहरे का पाउडर गालों पर जगह-जगह जम गया। वह सर से पैर तक आदमी की जगह हैवान बने हुए थे।

मेरे मुँह से यक-लख़्त भय की एक चीख़ निकल पड़ी और साथ ही कक्ष-द्वार पर मुझे सम्मिलित रमणी-कण्ठ से निकली हुई निर्बल हास्य-ध्वनि सुनाई पड़ी। और तत्क्षण कक्ष-द्वार बाहर से बन्द कर दिया गया।

मैं बेहोश होने को हुई, लेकिन बेहोश न हुई। मैंने छपरखट पर से उठ जाने-की कोशिश की, लेकिन मैं कामयाब न हुई; न-जाने किस अज्ञात शक्ति ने मानो मेरे अंग-अंग में कीलें गाड़कर मुझे पलँग से सी! दिया। हे मेरे भगवान्! उस युग-परिवर्तनकारी क्षण की याद आज भी मैं कैसे कर पाती हूँ !!

न, यह हर्गिज़ वह न थे। वह एक पियक्कड़ दानव था। उसने सब से पहले मुझे देखा, तब पुष्प-शय्या को, तब मेरे बाल-बाल मोती-पिरोये यौवन पर एक सरसरी नज़र डाली और तब वह दानव पलँग पर चढ़कर मेरे पास बैठ गया।

मैं भयभीत बिल्ली की तरह सुकड़कर पलँग के एक कोने पर पहुँच गई। मेरी आँखें नफ़रत और गुस्से से भीतर धँसने को हो गईं, मेरा सारा शरीर पसीने से तर-बतर हो गया। बेशक, मैंने योरोप में लोगों को शराब पीते देखा था, लेकिन मेरा सौभाग्य, कि इस हालत में कभी किसी को पाने का अवसर मुझे प्राप्त न हुआ। और मेरे पति? वह भी शराब पीते हैं, और

शराब पीकर उनकी यह अवस्था हो जाती है, इसकी तो मुझे कल्पना भी न थी।

'हः हः हः हः !' उन्होंने ख़ूब ज़ोर से हँसकर मेरी कलाई पकड़ ली और कहा—'क्या आप डर गईं ?'

उनकी हथेली गर्म थी। मेरी हिम्मत हाथ छुड़ाने की न हुई। मुझे सारा कमरा चक्कर खाता हुआ महसूस हुआ और मैं निर्निमेष भाव से उनके विकृत मुख की ओर ताकने लगी।

"इधर आइये।" उनके स्वर में नशे की लड़खड़ाहट नाच रही थी। "आप इतनी बच्ची नहीं कि हम से इस क़दर ख़ौफ़ खा एँ। अरे, हम हम हैं, वही—वही..."

कहकर वह "हा-हा" करके पिशाच-भाव से हंस पड़े। मेरे शरीर ने जवाब देना शुरू कर दिया।

'आइये, इधर आइये !' उनकी आवाज़ और भावभंगी में एक अजीब गुण्डेपन का भाव था। लेकिन मैं आख़िर औरत थी और उनकी स्त्री भी। मैंने कोशिश की कि मैं पलंग पर से कूद पड़ूँ, लेकिन मैं ऐसा न कर सकी। उन्होंने पूरी ताक़त से मेरा हाथ पकड़कर खींचा। मैंने ज़ोर से 'आह' की और दूसरे ही क्षण अपने बाहुपाश में आबद्ध करके उन्होंने ताबड़-तोड़ मुझे चूमना और काटना शुरू कर दिया, मेरे वस्त्र उतारकर फेंक दिये, मेरे शरीर को राक्षसी-बल से मसल-मसलकर शिथिल कर दिया और उसके बाद उनके मुँह से लहकती हुई दुर्गन्धि ने निकलकर मुझे बेहोश कर दिया।

फिर कई दिन उनकी सूरत दिखाई न दी। मैं तीन दिन और तीन रात सो न सकी। पीड़ा और वेदना से मेरा शरीर और मन व्याकुल था। मेरे लिए भोजन के थाल आते थे और ज्यों-के-त्यों चले जाते थे। मेरे शरीर का सारा खून मानों आँसू बनकर बह जाना चाहता था। मैंने अपने मन की व्यथा किसी को न बताई, लेकिन मेरी परिचारिकाएँ मेरी दशा देखती थीं और मुँह फेर-फेरकर हँसती चली जाती थीं। तीन दिन तक किसी को मेरे दर्द का भेद जानने का होश न आया। अलबत, मेरे अन्न-त्याग की कहानी अतिरंजित होकर इधर-उधर फैल रही थी। गला सूखता था तो मैं पानी के दो घूंट पेट में उतार लेती थी। महल-भर में कोई ऐसा न था, जो दो घड़ी

मेरे पास बैटता, या कहूँ, जिसे अपने पास बैठाकर वातें करने लायक़ मेरे मन की दशा होती। ससुर मेरे स्वर्गवासी हो चुके थे और सास को इस महल में आने की इजाज़त न थी। मैके की कुछ परिचारिकाओं को साथ भेजने की मेरी माता की अभिलाषा थी,. लेकिन उनका रुख न पाकर यह इच्छा रोक ली गई। मेरी समझ में न आता था कि क्या करूँ, और कहाँ जाऊँ! दिन पहाड़-सा लगता था और रात समुद्र-सी। करवटें बदलते-बदलते पसलियाँ दुखने लगीं। आखिर मैंने भगवान् से प्रार्थना की कि किसी प्रकार इसी दशा में मेरा प्राणान्त हो जाय।

चौथे दिन एक दासी ने एक चौकोर लिफ़ाफ़ा लाकर मुझे दिया। सरनामे पर मेरा ही नाम लिखा हुआ था। मैंने काँपते हाथों से उसे खोला। यह उनका पत्र था, जो उन्होंने स्वयं अपने हाथ से लिखा था—

'सौभाग्यवती,

हम अपनी हरकत पर इस क़दर लज्जित हैं कि आपके सम्मुख आने का साहस नहीं होता। हमें यह अनुभव होता है कि आप हमारी असावधानी के कारण हम पर रुष्ट हैं। यदि ऐसा है तो आपका रुष्ट होना बे-जा नहीं। किन्तु, क्या आप हमें क्षमा कर सकेंगी? शुभेच्छु

....

नीचे उनके दस्तख़त थे। मैंने एक ही नज़र में तीन बार उस पत्र को पढ़ डाला और तब उसे सीने पर धरकर पागलों की तरह दबा लिया।

दासी ने यह लीला देखी तो चुपचाप वहाँ से खिसक गई।

मेरे शरीर का दर्द काफ़ूर की तरह उड़ गया। तीन दिन और तीन रात की कमज़ोरी भी न-जाने कहाँ विलीन हो गई। शरीर का रक्त न-जाने कितने-गुना तेज़ी से धमनियों में चक्कर काटने लगा। मेरी आँखें आँसुओं से भर गईं और तब दोनों तरफ़ सावन-भादों की झड़ी लग गई।

'मेरे स्वामी! मेरे स्वामी!' सहसा मेरे कण्ठ से निकला—'क्या आप इतने महान् हैं मेरे देवता!'

लेकिन साथ ही मुझ होश आया कि कक्ष-द्वार खुला हुआ है। मैंने उठ कर अपने अस्त-व्यस्त वस्त्र दुरुस्त किये और आइने के सामने जा खड़ी हुई। उनका वह पत्र और लिफ़ाफ़ा अभी तक मेरे सीने पर दबा हुआ था। मैंने

आइने में अपनी सूरत देखी तो खुद ही अपने-आपको पहचान न सकी। मेरी आँखें भीतर धँस गईं थीं, गाल हल्दी की तरह जर्द पड़ गये थे और चेहरा सूख गया था। मैंने उस पत्र को दो बार पुनः पढ़ा।

मैंने मन-ही-मन कहा—"हे अभागिन, तू नर्क की कीड़ा है, तेरे स्वामी देवता हैं। तुझे धिक्कार है, जो तूने उस देवता के प्रति ऐसे विकार-युक्त भावों को मन में स्थान दिया!"

मैंने बिजली की पुतली की भाँति गुसलखाने में घुसकर स्नान किया, वस्त्र बदले और भोजन किया। इसके बाद शृंगार करके मैं पलँग पर आसीन हुई और मैंने समस्त लज्जा का त्याग करके दासी को आज्ञा दी कि मैं तुरन्त उनके दर्शन करना चाहती हूँ।

उसके बाद, मेरी वह रात, मेरे पाठक, किस स्वर्गीय आनन्द के साथ व्यतीत हुई, उसका वर्णन स्वर्ग के देवता, संसार के महाकवि और साक्षात् ईश्वर भी नहीं कर सकते। मैंने अनुभव किया कि मैंने स्वर्ग का राज्य प्राप्त कर लिया था, जिसे दैव ने छीनने से षहले ही मुझे वापिस लौटा दिया। मैं सारी रात गलबहियाँ डाले, उनके देव-सदृश नेत्रों को निहारती रही और मुझे मुझे यह पता न लगा कि कब सबेरा हो गया।

लेकिन अदृश्य खड़ा हुआ ठहाका मारकर हँस रहा था!

वह पन्द्रह दिन मेरे जीवन के स्वर्ण-दिवस थे। संसार का समस्त सौभाग्य जैसे विधाता ने मुझ पर उँड़ेल दिया था। मेरे स्वामी मुझे छोड़कर कहीं जाने का नाम न लेते थे। कब सुबह होती थी और कब शाम—इसका हमें पता भी न लगता था। मैं कभी चिड़िया की तरह उनकी गोद में किलकती, कभी गलबहियां डालकर झूल जाती, कभी मीठे-मीठे चुम्बन देकर उन्हें आन्दोल्लसित करती, कभी उनके चरण स्पर्श करके धन्य होती और कभी उनके कठोर बाहुपाश में आबद्ध होकर अपना जन्म सार्थक करती। वह भी कभी मुझे लैला बनाते थे, कभी शीरीं—कभी आनन्द-विभोर होकर मेरे चारों तरफ नाचते और कभी मस्त होकर मेरी बलैयाँ लेने लगते। कभी मुझे रेडियो सुनाते, कभी खुद गाते, कभी किस्से-कहानियाँ कहकर मेरा दिल बहलाते और कभी हास्य-विनोद-द्वारा हँसाते-हँसाते मेरे पेट में बल डाल देते। हमारी सुन्दर-सुन्दर दासियाँ डरती-डरती आतीं और मुँह में

कपड़ा दाबकर हँसती चली जातीं, राज्य के मन्त्रिगण पेशी की मिसलें लेकर दरबार-गृह में आते और घण्टों इन्तजार के बाद मुँह लटकाकर लौट जाते। चिट्ठियों, तारों और सन्देशों के गट्ठे-के-गट्ठे हर रोज उनके सामने लाकर डाल दिये जाते थे, लेकिन कभी कहते, 'इनमें आग लगा दो'; और कभी कहते 'इन्हें बाहर फेंक दो !' 'पर्सनल स्टाफ' के लोग जरूरी-से-जरूरी मामलात पर दो मिनट उनके दर्शन करने की दरख्वास्त भेजते, लेकिन वह डरा-धमका कर उन्हें भगा देते थे। उनकी इस अस्थायी आसक्ति का वृत्तान्त इस क़दर प्रसिद्ध हुआ कि क्रमशः राजमहल की चार-दीवारी से निकलकर राजधानी और राजधानी से निकलकर राज्य-भर में फैल गया।

ऐसे थे मेरे वह पन्द्रह दिन !

आज उन दिनों की याद आती है तो मेरे अरमान आँसू बनकर भीतर-ही-भीतर सूख जाते हैं यह पन्द्रह दिन अब फिर न लौटेंगे।

सोलहवें या शायद सतरहरवें दिन उन्होंने बाहर पैर रक्खा और उसके बाद दो रातें लगातार वह मेरे साथ रहे और उसके बाद फिर मेरी ज़िन्दगी का नर्क शुरू हो गया।

उन्हीं पन्द्रह दिनों में यह मासूम बालिका मेरी कोख में पड़ गई थी। उनकी शराब भी फिर शुरू हो गई थी। और दूसरे-दूसरे सारे कर्तब भी। उन सुनहरे दिनों के बाद वह अकसर मुझसे बचने लगे, लेकिन भूले-भटके जब कभी मेरे पास आ-निकलते थे और मैं उन्हें समझाने-बुझाने का यत्न करती थी। मेरी जवानी का वह उफान निकल चुका था। लेकिन चढ़ाव ज्यों-का-त्यों था। आग मन्दी हुई, इसी से जीवन में फिर उफान की नौबत न आई। क्रमशः उनके और उनकी गन्दी आदतों के प्रति मेरे मन में नफरत की जगह दया का प्रादुर्भाव हुआ। इसका भी कारण था। शराब के नशे में यद्यपि वह मेरे साथ हर तरह की ज़्यादितियाँ करते थे, लेकिन दूसरे ही दिन उन्हें अपनी इस हर्कत पर पश्चात्ताप होता था और इस पश्चात्ताप का वेग एक बार यहाँ तक बढ़ा कि उन्होंने दुःखी होकर अपना सर दीवार से टकरा दिया। मैं—हिन्दू नारी—उनकी इस वेदना को सहन न कर सकती थी और रोती थी। लेकिन सिवा समझाने-बुझाने के और कर क्या सकती थी ? और समझाने-बुझाने का असर यह हुआ कि बाहर की शक्तियों को

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
८५२८

उन्हें मुझसे और अधिक दूर खींचने का अवसर मिलता गया। उन्होंने पहले डरते-डरते और बाद में साफ़-साफ़ मुझसे अनुनय की कि मैं उनके साथ शराब पीना शुरू कर दूँ, तो उनका बाहर जाना रुक जायगा। मैं पहले तो सिहर उठी और पूरी शक्ति लगाकर मैंने उनके प्रस्ताव को कार्य-रूप में परिणत करने की कल्पना को दूर रक्खा, लेकिन मोह की विजय हुई। मुझ पापिन ने शराब भी पी और वह चार-छः दिन मेरे पास आते भी रहे, लेकिन फिर वही ! बाहर की शक्तियाँ उनका मेरे पास रहना गवारा न कर सकीं।

जब यह लड़की मेरे गर्भ में आई तो कुछ दिन तक सर्वत्र इस आशा में मेरी खातिर-तवाज़: बढ़ गई कि शायद पुत्र-जन्म हो ! लेकिन मुझ बदनसीव के भाग्य में यह कहाँ बदा था ? प्रसूत की तैयारी में एक लाख रुपया खर्च किया गया, जश्नों की पेशगी व्यवस्था की गई। पहली बार मेरी सास को भी मुझसे मिलने की इजाज़त दी गई, सरदार-सामन्तों और अमीर-उमराओं के लिए जागीर-खिलअत-मर्यादा और इनाम-इक़राम की फ़हरिस्त तैयार की गई, अखबारवालों से खास 'एडीशन' निकालने की प्रार्थना की गई, लेकिन······लेकिन जब नर्स का यह प्रस्ताव मैंने नामंज़ूर कर दिया कि मैं चाहूँ तो नवजात कन्या को किसी अन्य नवजात पुत्र से बदल सकती हूँ और कन्या की उत्पत्ति का समाचार बाहर पहुँचा तो सारी खुशियों, आशाओं और तैयारियों पर जैसे उल्का-पात हो गया।

अब मेरी शादी हुए चार साल से ऊपर हो चुके हैं और मैं क़रीब-क़रीब एक बन्दिनी का-सा जीवन बिताये जा रही हूँ। मेरा रंग ज़र्द पड़ गया है, जिसे धो-माँजकर काफ़ी साफ़ रखने का प्रयत्न करती हूँ, लेकिन दुःख के रंग पर भला दुनियाँ का और कोई रंग चढ़ा है ? न मेरा जी खाने को करता है, न पीने को। दिन-रात पड़ी-पड़ी भगवान से मौत की भीख माँगा करती हूँ। जब कभी गाहे-ब-गाहे उनसे मुठभेड़ हो जाती है तो या तो शराब के नशे में मदहोश होते हैं या सुन्दरियों की बग़ल में ! बस, मैं नज़र आई कि उनका 'मूड' खराब हुआ, उनकी आँखें लाल-पीली हुईं ! वह होते हैं और उनके 'पर्सनल स्टाफ़' के लोग ! अपनी इज़्ज़त बचाने को मैं वापस चली आती हूँ।

अभी-अभी खबर लगी है कि मेरे बारे में मशहूर हो गया है कि मेरी कोख में अब और सन्तान उत्पन्न करने की क्षमता नहीं रही है, इसलिए महाराज दूसरी शादी करेंगे।

हाय मेरे राम ! मैं क्या करूँ ?

माणिक सरदार की आत्म-कहानी

अगर ईश्वर नाम की कोई वस्तु है और अगर उसके हाथ में संसार के कोटि-कोटि प्राणियों के प्रारब्ध का संचालन करने की शक्ति है और अगर वह योग्य व्यक्ति को पुरस्कार और अयोग्य को दण्ड देने की क्षमता रखता है और अगर उसके दरबार में न्याय है और अगर वह सत्य को सत्य और असत्य को असत्य के रूप में देख सकता है तो कोई कारण नहीं की इस विशाल राज्य का मालिक आज मैं न होकर यह ना-समझ, अस्थिर-बुद्धि, कम-उमर लड़का होता । मेरी राय में अगर यह ईश्वर के विधान से हुआ है तो या तो ईश्वर पागल है, या वह योग्यता का क़ायल नहीं । और यदि ईश्वर ऐसा है तो कोई उसे ईश्वर नहीं मान सकता और न-ही उसे हक हासिल है कि वह ब्रह्माण्ड के हिताहित का फ़ैसला करनेवाली अन्तिम शक्ति बने ।

जब इस लड़के के बाप ज़िन्दा थे, तभी से मैं इस रियासत में एक बाग़ी मशहूर था । राज्य-कर्मचारी मेरी सूरत से तो क्या—मेरे नाम से ही थर-थर काँपते थे । खुद महाराज मेरे कुचक्रों से घबरा-घबरा उठते थे और उन्होंने शुरू-शुरू में इस बात की कोशिश की कि मैं उनकी मुखालफ़त करना छोड़ दूं । लेकिन मैं ऐसा हर्गिज न कर सकता था । उस समय उमर मेरी बहुत ही कम थी और वर्तमान महाराज अपनी मां की कोख में भी न आये थे । लेकिन मेरी अभिलाषायें अन्तिम शिखर पर पहुँच गई थीं, मेरी नसों का खून बहुत तेजी से चक्कर मारने लगा था, मौत मेरे लिए एक बिल्कुल तुच्छ वस्तु वस्तु बन गई थी । मेरे दिमाग़ में प्रत्येक समय राजगद्दी

का सुख-स्वप्न घूमता रहता था। मैं महसूस करता था कि गद्दी का वास्तविक मालिक मैं ही हूँ और हक़ अन्यायपूर्वक छीना जा रहा है और अगर मुझ में हिम्मत है, ग़ैरत है, ताक़त है तो मुझे इस अन्याय का वदला लेना ही चाहिये।

वृद्ध महाराज और मेरे दादा सगे भाई थे, मेरे पिता के एक भाई और थे, जो उनसे छोटे थे। जब वृद्ध महाराज को बड़ी उमर तक भी कोई सन्तान न हुई तो उन्होंने मेरे दादा से प्रस्ताव किया कि वह मेरे पिता को उन्हें गोद दे दें। मेरे दादाजी को भला इस सौभाग्य की स्वीकृति में क्या इन्कार हो सकता था? लेकिन मेरे पिता दार्शनिक वृत्ति के आदमी थे। उन्होंने अनुनयपूर्वक इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और तब राजगद्दी मेरे चचा यानी गत महाराज को हाथ लग गई। गोद की घोषणा के प्रायः दो सप्ताह बाद ही वृद्ध महाराज का देहान्त हो गया। और मैं अपने दुर्भाग्य और पिताजी की मूर्खता पर छटपटाता रह गया।

मैं अपने पिता का एक-मात्र पुत्र था। और जब मुझे अपने दादाजी के प्रति किये गये वृद्ध महाराज के प्रस्ताव का ज्ञान हुआ था तो मैंने बहुत कोशिश की कि पिताजी उनकी बात मान लें। मेरी उमर उस समय बीस साल की थी, लेकिन इसी उमर में मैं ज़िन्दगी के दांव-पेचों में भली प्रकार पारंगत हो गया था। मेरे चाचा, यानी गत महाराज और मेरी आयु में क़रीब छह वर्ष का अन्तर था और हम लोगों के सम्बन्ध इस समय तक चचा-भतीजे के न होकर मित्र-मित्र के-से रहे थे। लेकिन भतीजा होने और अल्पायु होने पर भी मेरी उपद्रवी प्रकृति के कारण उन पर सदा मेरा रुआब ग़ालिब रहता था। उसी असना में, जब कि गोद की चर्चा चल रही थी, उन्होंने मेरी उदासी देखकर ख़ुद भी इस बात की कोशिश की कि उन्हें गोद न लिया जाय, लेकिन मेरे पिताजी की हठ और दादाजी के आग्रह, राजगद्दी का लोभ और कहना चाहिए कि लोगों के उस नालायक ईश्वर की वेवक़ूफ़ी से मेरे चचा राजगद्दी के उत्तराधिकारी घोषित कर दिये गये।

मेरे क्रोध का पारावार न रहा। उन पुरानी घटनावलियों को याद करता हूँ तो आज भी शोक और क्षोभ से मेरी नस-नस फ़ड़कने लगती है, परन्तु जो होना था, सो हो गया। मन मारकर मैं अब आगे की बात सोचता

हूँ। मैंने गोद की घोषणा होते ही गत महाराज—यानी चचा साहेव से बैर-सा बसा लिया था। उनकी सदा यह इच्छा रहती थी कि मैं उनसे पूर्ववत् मिलूँ-जुलूँ, परन्तु मैं बरावर कन्नी काटता रहता था। जब तक मेरे दादाजी और वृद्ध महाराज जीवित रहे, तब तक तो मैंने अपने ऊपर क़ाबू रखने की कोशिश की, और पूरी ताक़त इस वात में लगाई कि षड्यन्त्रों या कुचक्रों के द्वारा किसी-न-किसी प्रकार गद्दी की घोषणा होने के पहले-ही-पहले चचा साहेव का या तो खात्मा-ही कर दूँ, या उन्हें पागल मशहूर करके गद्दी से उतरवा दूँ। अपने इस प्रयत्न में मैंने लाखों रुपये वरबाद किये। बहुत-से अवाख़रवालों को गहरी रकमें चटाई। भारत-सरकार तक गुप्त समाचार भिजवाकर होनी को अनहोनी करने की कोशिश की। राजधानी में एक अच्छा ख़ासा दल गत महाराज के विरुद्ध खड़ा किया, लेकिन मुझे कामयाबी की सूरत न दिखाई दी। इन प्रयत्नों में कई वरस बीत गए और वृद्ध महाराज और मेरे दादा दोनों ही कुछ दिन के आगे-पीछे चल वसे। दादाजी का मरना था कि पिताजी ने मथुरा जाकर रहने का निश्चय कर लिया। मेरे उपद्रवी स्वभाव के कारण उनका वैराग्य और भी बढ़ गया, उन्हें मेरे षड्यन्त्रों का थोड़ा-वहुत पता था, लेकिन अपने स्वभाव से मजवूर होकर उन्होंने कभी मुझे मेरे कामों से रोका नहीं। फिर भी अपने ऊपर किसी का अप्रत्यक्ष दवाव मुझे सहन न हो सका और इसीलिए उनके वानप्रस्थी होने का मैंने विरोध न किया। जब वह चले गये तो मैंने आज़ादी की साँस ली। उस समय मेरी उम्र तेईस वरस की थी और मेरे चचा साहेब—जो अब कानूनन् उस राज्य के स्वामी थे, जिसका मैं निवासी था—उनत्तीस बरस के थे। उनकी एक शादी हो चुकी थी और वह अभी तक निस्सन्तान थे।

दादाजी के मरने पर अपनी दार्शनिक प्रकृति के बावजूद भी मेरे पिताजी राजकीय तक़रीबात में मेरे परिवार का प्रतिनिनित्व किया करते थे, मैं सदा ऐसे मौकों पर या तो राजधानी से बाहर चला जाता था, या वीमार पड़ जाता था। मेरे पिताजी को भले ही छोटे भाई के सामने झुकने में लज्जा न आती हो, लेकिन मेरी उद्दण्ड आत्मा इस तरह की कल्पना-मात्र से विद्रोह कर उठती थी। राज्य में मेरे इन भावों का बच्चे-बच्चे को पता था और जिस तरह में तमाम तक़रीबात से कन्नी काटता था, उसका भी नोटिस

लिया जाता था । भड़कानेवालों ने महाराज को भड़काने में भी कसर न रखी, परन्तु महाराज की जुरअत न होती थी कि मेरे खिलाफ़ वह किसी तरह का 'एक्शन' लें। लोग उनकी इस वृत्ति को उनकी उदारता कहते थे, परन्तु मेरी राय में यह उनके पोचपन और मेरे दबंगपन का सबूत था।

लेकिन पिताजी चले गये तो मैंने मजबूर पाया अपने आपको कि मैं राजकीय तक़रीबात में अपने परिवार का प्रतिनिधित्व करूँ । मेरे शरीर का रक्त खौल-खौल उठता था और मैं अपने समस्त कौशल व्यर्थ जाते देखकर तड़प उठता था । अगला दरबार आया तो मैंने वहुत कोशिश की कि मैं किसी-न-किसी बहाने से वच जाऊँ, अपने अन्तरंग मित्रों से इस बारे में सलाह-मशविरा भी किया, परन्तु न तो कोई उपाय मेरी ही समझ में आया और न कोई सलाह मुझे यार-दोस्त ही दे सके। आखिर जब कुछ बस न चला तो मैंने दरबार के पहले रोज़ खूब शराव पी और अपनी मोटर एक पेड़ से टकरा दी। अगर्चे इस हरकत में मेरी जान जाने का खतरा था, लेकिन अपमान की बजाय मैंने मौत तक का खतरा लेना गवारा किया। इत्तफ़ाक़ की बात कि मोटर को तो काफी नुकसान पहुँच गया, परन्तु मुझे चोट न लगी। तव मैंने डाक्टर को कुछ दे-दिलाकर तमाम शरीर में पट्टियाँ कसवाईं और सुबह ही सारे शहर में हल्ला मच गया कि मैं रात में मोटर-दुर्घटना का शिकार हो गया हूँ और मुझे इस क़दर चोट आई कि शायद अच्छे होने में कई महीने लग जायें ।

दरबार निपट गया। और मेरी गैरहाज़िरी का नोटिस न लिया गया। मेरी चोट का हाल महाराज तक पहुँच चुका था और अगले दिन वह खुद अपनी मोटर हाँकते हुए दो ए० डी० सी० नौजवानों के साथ मेरे महल में आये। मैंने सुना तो एक बार सर से पैर तक पसीने से नहा गया, लेकिन फ़ौरन् ही तबियत पर क़ब्ज़ा पाकर मैंने कराहना शुरू कर दिया। इस नाटक में मेरा चेहरा इस क़दर बिगड़ गया कि महाराज आये तो मेरी तकलीफ़ की कल्पना करके उनका मुख ज़र्द पड़ गया। मैं निश्चय न कर सका कि यह ज़र्दी दुःख की थी, या मक्कारी की। लेकिन मेरा खयाल है कि उनमें इतनी बुद्धि नहीं थी कि मक्कारी का इतना अच्छा नाटक कर सकते। मैं मन-ही-मन हँसा ।

मेरे हाथ-पैरों में भी पट्टियाँ बँधी हुई थीं, इसलिए मैं उन्हें प्रणाम भी न कर सका। कायदे से मुझे उनका चरण स्पर्श करना चाहिये था, लेकिन उन्होंने इस बात का कुछ भी ख़याल न किया, घण्टा-भर मेरे पास बैठे मुझे सान्त्वना देते रहे और तब चले गये। जब उन्होंने मेरी तरफ़ से पीठ फेरी तो मैंने नफ़रत से मुँह सिकोड़ा।

हिन्दुस्तान में बड़े और छोटे आदमियों के रहन-सहन में कुछ इतना बड़ा वैषम्य है कि छोटे आदमी अपने खून में बड़े आदमियों के प्रति नफ़रत और दुश्मनी का भाव लेकर पैदा होते हैं। इसीलिए राजा-महाराजाओं के हज़ारों-लाखों ऐसे दुश्मन होते हैं, जिनसे पूछे जाने पर वह अपनी दुश्मनी का कोई भी कारण न बता सकेंगे। मैं लोगों की इस मनोवृत्ति से वाक़िफ़ था और इसीलिए महाराज के साथ मेरी रंजिश का हाल जानकर मेरे हमदर्दों और पैरोकारों की एक बड़ी तादाद राज्य-भर में पैदा हो गई थी। इन हमदर्दों में ज्यादातर प्रजा के लोग थे और कुछ सरदार। कुछ ऐसे कर्मचारी भी थे, जिनका पेशा ही राज्य के खिलाफ़ उभड़नेवाली ताक़त से मिलकर अपना मतलब निकालना होता है। इसलिए मेरा अहंकार और विद्रोह-भाव घटने की बजाय क्रमशः बढ़ता ही गया और इसी अनुपात में मेरे मददगारों की ताक़त में वृद्धि होती चली गई।

महाराज के कानों तक यह सारी बातें पहुँच रही थीं, लेकिन काफ़ी समय तक उन्होंने यह ज़ाहिर न होने दिया कि उन पर मेरी हर्कतों का कोई असर हुआ है। मैंने अपनी कोशिशें बराबर जारी रक्खीं और महाराज की इस बुज़दिली से लोगों के दिल पर मेरा रोब और खौफ़ बढ़ता ही चला गया। राज्य के प्रत्येक विभाग में मेरे आदमी थे; यहाँ तक की महाराज के खास खिदमतगारों तक में मेरे दूत शामिल थे और मेरे पास महाराज की दिनचर्य्या की राई-रत्ती रिपोर्ट, पहुँच जाती थी। धीरे-धीरे मेरे उपद्रवों ने यह सूरत अख्तियार की कि जिनका असर अप्रत्यक्ष रूप से राज्य की शान्ति और सुव्यवस्था पर पड़ने लगा और महाराज के पास पहुँचनेवाली मेरी शिकायतों ने अजब रंग अख्तियार करना शुरू कर दिया। पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट से भी पूछ-ताछ होने लगी।

मेरे चरों ने मुझे सूचना दी कि महाराज को सुझाया गया है कि मेरी

जागीर ज़ब्त करके मुझे या तो क़ैद कर लिया जाय, अथवा राज्य-बाहर कर दिया जाय। लेकिन महाराज ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया है। मैंने अपनी नोकीली मूँछों पर हाथ फेरा और हुंकार लेकर ज़मीन पर पैर पटका और कहा कि उस नामर्द की जुरअत नहीं की यह मेरा मुक़ाबला कर सके। उसी दिन मैंने कई उपद्रव कर डाले। एक दर्ज़ी मेरा नया सूट सीकर लाया। बज़ाहिर उसमें कोई दोष न था। लेकिन मैंने नाराज़ होकर उस सूट की धज्जियाँ उड़ा दीं और हण्टर उतार कर उस दर्ज़ी को इतना मारा—इतना मारा इतना मारा कि वह पिटते-पिटते बेहोश हो गया। तब मैंने बूट से उसका मस्तक ठुकराकर नौकरों को आज्ञा दी कि अगर वह मर गया है तो उसे मिट्टी का तेल डालकर जला दिया जाय। लेकिन वह मरा न था। और मेरा क्रोध जब इस पर भी शान्त न हुआ तो मैंने अपने महल के सामने से गुज़रते हुए चार-पाँच गँवारों को पकड़कर अपने अहाते में मँगवा लिया और अपने वफ़ादार नौकरों को हुक्म दिया कि उनको मादर-ज़ात करके हण्टरों से पीटा जाय। मेरे नौकर मेरी आँखों की लाली पर मूत देने को तैयार रहते थे और इसीलिए मेरे हुक्म पर उन्होंने उन नालायक़ गँवारों को उधेड़ना शुरू कर दिया। जब वह लोहू-लुहान करके निकाल दिये गये तो मेरी नज़र सूखी घास की भरी हुई कुछ सरकारी गाड़ियों पर पड़ी। मैंने अपने नौकरों को हुक्म दिया कि इन सारी गाड़ियों में दियासलाई लगा दी जाय। उन्होंने दियासलाई तो न लगाई, लेकिन ऊपर बराम्दे में खड़े होकर दहकते हुए कोयले उन गाड़ियों में फेंक दिये। गाड़ियाँ भक-भक करके जल उठीं और गाड़ीवानों को अपने बैलों और अपनी जान तक के लाले पड़ गये।

मेरी आँखें प्रतिहिंसा और क्रोध से लाल हो रही थीं और जब इतने पर भी मेरी तृप्ति न हुई तो मैं वह बूट पहिने हुए, इधर-से-उधर चक्कर काटने लगा, जिससे मैंने बदमाश दर्ज़ी को ठोकर मारी थी। मेरी समझ में न आया कि मुझे और क्या करना चाहिए, जिससे महाराज मेरे ख़िलाफ़ कोई 'एक्शन' लें और मुझे मौक़ा मिले कि मैं उनके ख़िलाफ़ बग़ावत खड़ी कर सकूं।

यह सारी शिकायतें उन तक पहुँची। वह अधमरा दर्ज़ी भी बँधा

बँधाया डोली में डालकर उनके रू-ब-रू पेश किया गया और वे लोहू-लुहान गँवार और गाड़ी वाले भी। महाराज के सामने उन्हें अपनी रामकहानी कहने की इजाज़त दी गई और महाराज के चेहरे पर कितने बार किस तरह का रँग बदला, इसकी सारी विस्तृत रिपोर्ट मेरे कानों तक पहुँची। लेकिन बहुत कोशिश करने पर न तो मुझे इस बात का पता मिला कि महाराज ने अपने किसी मन्त्री को भेंट के लिए उस दिन बुलाया और न यह-ही कि उन्होंने क्या 'एक्शन' लेने का निश्चय किया। इस चीज ने मेरे पत्थर कलेजे में भी क्षण-भर के लिए उथल-पुथल पैदा कर दी। लेकिन शाम खत्म होने पर डट कर शराब पी और रात-भर आराम से सोया। यानी, मैंने अगले ही दिन बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना का सामना करने के लिए अपने-आपको तैयार कर लिया।

अगर महाराज मेरी गिरफ़्तारी का हुक्म देते तो मेरा यह यक़ीन था कि शहर में ग़दर हो जाता। फ़ौज के अफ़सर तक मेरे ज़ेर-असर थे और सारे राज्य में कोई जेलखाना ऐसा न था, जहाँ मुझे बन्द किया जा सकता। ख़ुद मेरे महल में एक-सौ ऐसे आदमी थे, जो बजाहर तो मेरे ख़िदमतगार थे, लेकिन मौक़ा पड़ते ही उन्हें बन्दूक़चियों की शक्ल में तब्दील किया जा सकता था। इसलिए मैं जानता था कि गिरफ़्तारी का परवाना आ जाने पर भी मेरा फ़ौरन् गिरफ़्तार होना असम्भव है। यह सौ आदमी राज्य की बड़ी-से-बड़ी फ़ौजी टुकड़ी को कम-से-कम चौबीस घण्टे बाहर रोकने की ताक़त रखते थे और चौबीस घण्टे के भीतर ही खुद मेरी अपनी जागीर से इतने हथियारबन्द आदमी आ सकते थे, जिनकी संख्या राज्य की फ़ौज से दुगुनी थी। राजधानी के सहायकों से मैंने उस वक्त तक किसी मदद की आशा न रक्खी थी, जब तक वर्तमान महाराज की हत्या न कर दी जाय और पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट मुझे गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित न कर दे। मैंने प्रबन्ध कर रक्खा था कि यदि महाराज मेरी गिरफ़्तारी का हुक्म निकाल देंगे तो पलक-झपकते मेरी जागीर के हज़ारों सशस्त्र आदमी धावा बोल देंगे। अगर मुझे उस वक़्त तक कैद कर लिया गया होगा तो उस जेल की ईंट-से-ईंट बजाकर मुझे रिहा करा लिया जायगा और ठीक उसी क्षण राजमहल के भीतर किसी शक्ति-द्वारा महाराज का काम-तमाम कर दिया जायगा। मैं ऐसे क्षण का इन्तज़ार बेचैनी से कर रहा था और मेरी सारी

कोशिशें इसी बिन्दु तक पहुँचने के लिए थीं। मेरा ख़याल था कि राजगद्दी का मालिक मैं हूँ और मेरा अधिकार, मेरी ग़ैरत और मेरी योग्यता का तक़ाज़ा है कि गद्दी पर से इस गुड्डे को बल-पूर्वक हटाकर अपना क़ब्जा जमाऊँ और अगर इस प्रयत्न में मेरे प्राण भी चले जाते तो मैं उसके लिए सहर्ष तैयार था।

इसलिए उस रात को, शराब से मदहोश होकर मैंने रातभर उस रण्डी के साथ यह समझकर ऐश किया कि हो सकता है कि मेरी ज़िन्दगी और मेरे ऐश की वह अन्तिम रात सिद्ध हो।

लेकिन सवेरा हो गया, रण्डी चली गई, ख़ुमारी उतर गई और मेरी गिरफ़्तारी का परवाना न आया। हैरानी और बेचैनी के कारण मेरा कलेजा धड़कने लगा। इसी बेचैनी और हैरानी की हालत में पूरा एक दिन और बीत गया और उस दिन रात को मुझे नींद न आ सकी। सिर्फ़ सवेरे ज़रा-सी झपकी आई और जब आँख खुली तो बेचैनी और हैरानी की जगह वही दर्प, वही साहस, वही इरादे और वही दृढ़ता मेरे रोम-रोम में भरी हुई थी।

आठ बजे भी न थे और मैंने अभी स्नान भी न किया था कि चार-पाँच आदमी दौड़ते हुए मेरे पास आये और उन्होंने इत्तला दी कि महाराज तशरीफ़ ला रहे हैं। पूछने पर मालूम हुआ, बिल्कुल अकेले हैं ; 'शोफ़र' तक साथ नहीं है।

एक बार तो मैं सकते के आलम में आ गया, लेकिन फिर पलक-झपकते मैंने अचकन-पगड़ी पहनी और नंगे-पैरों उनकी अगवानी के लिए दौड़ा। यह एक ऐसी अप्रत्याशित घटना थी कि क्षण-भर के लिए मेरा सारा दर्द, सारा साहस, सारा मंसूबा ख़ाक में मिल गया।

वह मोटर का 'स्टीयरिंग' पकड़े बैठे थे। मुझे देखा तो मुस्करा दिये। उनकी इस मुस्कराहट में बड़ा भारी रुआब था, जिसने मुझे कुछ देर के लिए अप्रतिहत कर दिया। मैंने आगे बढ़कर उनकी मोटर का दर्वाज़ा खोल दिया। वह उतरे और बोले—'चलो !

मैं मूरत की तरह चला। वह मेरे साथ-साथ आये और सीधे मेरे सोने के कमरे में आकर बैठ गये। मेरे सारे नौकर-चाकर ज़मीन से छू-छूकर उन्हें

सलामें करने लगे, अटारी पर नौबत बजने लगी, दासियाँ झुण्ड-की-झुण्ड खड़ी होकर महाराज के प्रति आदर प्रदर्शित करने लगीं। मेरे घर की स्त्रियों में भगदड़-सी मच गई।

'कैसी तबियत है माणिक ?' उन्होंने एक सोफ़े पर आराम से बैठते हुए कहा।

मैं अचकन-पगड़ी पहने, नंगे पाँव खड़े-का-खड़ा रह गया। मुँह से मेरे बोल न निकला।

'बैठो भैया', महाराज ने अपनी चिर-परिचित बेतकल्लुफ़ी से मुझे हाथ पकड़कर अपने निकट बैठाया।

बैठते ही जैसे मेरी चेतना लौट आई। मैं सम्हल चुका था।

तुम्हें मालूम है, मैं क्यों आया हूँ ?'

मैंने सम्हलकर कहा—'न···।'

'मैं राज-काज में नया हूँ, तुम्हें मेरी मदद करनी होगी। तुम्हारी मदद के बिना मैं अपने फ़र्ज़ पूरे नहीं कर सकता !'

मैं मानो आस्मान से गिरा। मैंने अपनी अचकचाई आँखें उनसे मिलाईं।

'हाँ भाई, मैंने कल शाम से तुम्हें अपना दाहिनी हाथ मुक़र्रिर कर दिया है और जिस नाम से कहो, उसी नाम से तुम्हें पुकारा जाना शुरू कर दिया जाय।'

मेरी हैरानी का ठिकाना न रहा। लेकिन बोल मैं अब भी न सका।

'तुम आज से राज्य के प्रत्येक मन्त्री से ऊपर की हस्ती हो, तुम्हारी आज्ञा राज्य के प्रत्येक प्राणी के लिए क़ानून होगी। माणिक, अपनी इस नई ज़िम्मेदारी को स्वीकार करो और दस बजे मेरे पास आकर अपनी जिम्मे-दारियों का चार्ज लो !

वह उठ खड़े हुए और चले गये। जब वह कई क़दम बढ़ गये तो मैं उठकर उठकर उनके पीछे दौड़ा और उसी दशा में, अचकन-पगड़ी पहने, नंगे पाँव उनके साथ मोटर तक गया। उन्होंने ख़ुद ही मोटर का दर्वाज़ा खोला, भीतर घुसे और हाथ झकझोरकर मुस्कराते हुए वापस चले गये।

इस घटना ने जैसे मेरे सारे मन्सूबे पलट दिये। महाराज को विदा

करके लौटा तो उसी सोफ़े पर आकर धम-से बैठ गया और मुतवातिर एक घण्टे तक उठ न सका। आख़िर यह क्या गोरखधन्धा हो गया ? मेरी आत्मा इस बात को मानने के लिए हर्गिज़ तैयार न होती थी कि महाराज के इस काम में जो जाहिरा महानता दिखाई दी है, उसमें कुछ वास्तविकता भी है। लेकिन आख़िर फिर क्या है ? एक घण्टे के विचार के बाद मैं दो नतीजों पर पहुँचा। पहला यह कि मेरी तैयारियों का पूरा समाचार उन तक पहुँच चुका है और इसलिए मुझे महल में बुलाकर चुपचाप कैद या क़त्ल करने के लिए यह जाल रचा गया है। दूसरा यह कि मेरे प्रताप से प्रभावित होकर महाराज ने मेरे सामने आत्म-समर्पण कर दिया है।

पहली सम्भावना का ध्यान करके मेरा हृदय आज्ञात रूप से एक बार काँप उठा। और मैं निश्चय न कर सका कि ठीक दस बजे महल में जाकर चार्ज लेने की आज्ञा का पालन करूँ या 'न करूँ लेकिन यह आज्ञा थी और राजा का शब्द क़ानून होता है। मौत का मुझे डर न था, लेकिन कुत्ते की मौत मरने को मैं तैयार न था। मैंने उसी समय अपने चर निर्धारित स्थानों के लिये दौड़ा दिये और उन्हें समझा दिया कि मेरी गिरफ्तारी की हालत में किस तरह क्रान्ति का आयोजन किया जायगा और किस तरह मुझे जेलखाने से मुक्त कराया जाएगा। यानी, मैंने निश्चय कर लिया कि मैं न जाऊँगा।

यह सब करते-कराते क़रीब-क़रीब एक घण्टा हो गया। दस बजने को हुए। मैंने स्नान किया और कपड़े बदले। और प्रायः साथ ही मेरे विचार ने पलटा खाया। मैंने सोचा अगर मेरा अनुमान ग़लत हो ? अगर वास्तव में उन्होंने आत्म-समर्पण करने का निश्चय कर लिया हो ? तो इस तरह अनायास प्राप्त हुई सत्ता को छोड़ने से क्या लाभ ? जब वह खुद भी मेरी सलाह के अनुसार चलने को तैयार हैं, तो फिर राज-गद्दी मिलने में क्या कसर रह गई ? आखिर वह राजा हैं। अगर मुझे क़ैद करना ही अभीष्ट होता तो क्या उसके लिये यही उपाय रह गया था ? अपनी मर्यादा और इज़्ज़त को इस तरह ख़तरे में डालकर एकाकी रूप में वह मेरे घर क्यों चले आते ऐसी अवस्था में मेरा आज्ञा न मानना क्या उचित है। यह भी तो हो सकता है कि मेरी अवहेलना उनके प्रसुप्त राज-गौरव को जागरूक बना दे ? मेरे मुख़ालिफ़ लोगों की भी तो कमी नहीं हैं; मुमकिन है, मेरा पाँसा पलट जाय।

और जब ठीक पौने दस बजे मेरे ख़िदमतगार ने आकर ख़बर दी कि महाराज के सबसे प्रतिष्ठित ए० डी० सी० उनकी सबसे क़ीमती 'कार' लेकर मुझे लेने आये हैं तो मेरी दोनों विचार-धाराएँ मिलकर एक हो गईं और मैं चल पड़ा।

मुझे दरअस्ल चार्ज दे दिया गया और मैं मिनिस्टर-खास के नाम से विख्यात हुआ। निस्सन्देह मुझे वह अधिकार दिये गये, जो स्वयं महाराजा के अतिरिक्त किसी को न थे। प्रजा-जन और राज-कर्मचारियों के भाग्य की बागडोर मुझे सौंप दी गई। ज़िम्मेदारियों का आकर्षक महल मेरे सामने खड़ा कर दिया। राज्य-भर में माणिक-सरदार का नाम गूँज उठा। जब शाम को मैं घर लौटा तो मैंने डटकर शराब पी, उसी ख़ूबसूरत रण्डी को बुलवाया, उसी तरह छककर रात-भर ऐश किया और सुबह गजरदम नंगी तलवार हाथ में लेकर मैं अपने महल की छत पर चढ़ गया और आकाश के टिमटिमाते हुए तारों की तरफ़ तलवार तानकर पागलों की तरह एक बार चिल्लाकर मैंने कहा—'माणिक सरदार की जय!' मैं नीचे उतरा। तलवार म्यान में रक्खी। पलँग पर अचेतावस्था में नंग-धड़ंग पड़ी रण्डी को मैंने उन्मत्तों की नाईं चोटी पकड़ कर खड़ा कर दिया और उसकी कमर में ज़ोर से एक घूँसा मारकर कहा—'नालायक़ औरत तूने सुना?' उस औरत की नींद जैसे क़त्ल कर दी गई हो। उसका सारा शरीर डर और आतंक से सफ़ेद पड़ गया। वह मुझे जानती थी। शायद उसे निश्चय हो गया कि उसकी मौत आ गई। उसके सर से पैर तक पसीना चू उठा। दोनों हाथ जोड़कर बकरी की तरह मिमियाती हुई बोली—'मेरी जान बख़्श दी जाय हुज़ूर!'

मैंने भयंकर स्वर में गर्जन किया—'आज से इस राज्य का मालिक मैं हूँ!' उस बेचारी ने फटी आँखों और फटे गले से जवाब दिया—'जी हुज़ूर।'

तब मैंने नौकर बुलाकर उसे अपने महल से निकाल दिया।

दरअस्ल अब मैं उस रियासत का वास्तविक राजा था। मेरी मर्ज़ी के वग़ैर कहीं एक पत्ता भी न हिल सकता था। मेरी लाल आँखों की ताब रियासत का बड़े-से-बड़ा मन्त्री भी न ला सकता था। आप ग़ौर कीजिये कि क्या मेरी उम्र थी, और क्या मेरा दबदबा था! जो मेरे षड्यन्त्र में मेरे सहायक थे, उन सबके अब पर निकलने शुरू हुए और सबने इस बात की

कोशिश की कि अपना-अपना प्रभाव बढ़ायें। कुछ ने ख़ुद मुझसे ही नाजायज़ फ़ायदा उठाने की कोशिश की। लेकिन मैं मैं था—मैंने एक ही धमकी में सब के औसान ख़ता कर दिये और जो मेरे भेदों से वाक़िफ़ थे, उनमें से कुछ को तो रियासत-बदर कर दिया, एकाध को यमलोक पहुँचा दिया और बाक़ी के लिए घुड़की ही काफ़ी थी। महाराज तो मेरी मुट्ठी ही में थे; मेरे किए पर उँगली न धरते थे। जब जो-कुछ उनके सामने रख दिया, उन्होंने आँख मूँदकर उस पर दस्तख़त कर दिया।

इस तरह कई बरस बीत गये और महाराज की पहली रानी से कोई सन्तान न हुई। मेरे कलेजे में एक नई तरह की गुदगुदी उठने लगी। सब राज्य का बच्चा-बच्चा मेरे प्रताप से काँपता था और कोई ताक़त ऐसी न थी, जो मेरे आगे न झुकती। थे एक दीवानबहादुर अमरदास जो ताज़े-ताज़े चीफ़-मिनिस्टर बनाये गये थे और जिन्हें ताज़ी-ताज़ी ही दीवान-बहादुरी मिली थी। यह आदमी हमेशा मेरे बीच में आता था और हरचन्द कोशिश करने पर भी मैं इस काँटे को दूर न कर सका था। न-जाने महाराज पर उसने क्या जादू फूंक दिया था! इसी एक आदमी के मामले को लेकर धीरे-धीरे मेरे और महाराज के बीच मनोमालिन्य बढ़ने लगा और जब कई बरस बीतने पर भी महाराज को उत्तराधिकारी का मुँह देखना नसीब न हुआ तो एक दिन सहसा मेरे दिल में यह ख़याल आया कि क्यों न इस बला से छुटकारा पाकर हमेशा के लिए ताज और तख़्त का मालिक बनकर निष्कण्टक हो जाऊँ? फिर देखता हूँ, कहाँ जाते हैं दीवानबहादुर और कहाँ रहती हैं उनकी रानी साहेबा! कुत्ते की तरह रियासत से बाहर न निकलवा दिया तो मेरा नाम माणिक-सरदार नहीं।

मैंने फिर अपने पुराने साथियों की टटोल शुरू की, अख़बार वालों के लिए फिर मेरी मुट्ठी खुलने लगी, सार्व-भौम-सत्ता के साथ फिर रब्त-ज़ब्त बढ़ाने शुरू किये। राजनीति में बिना इन सब हथकण्डों के काम नहीं चलता! पैसा आख़िर क्या नहीं करा सकता? धीरे-धीरे फिर मेरे इर्द-गिर्द उन लोगों के झुण्ड एकत्रित होने लगे, जिन्हें मैंने दूध की मक्खी की तरह निकाल-फेंका था। और उनकी बेग़ैरती देखो, सब-के-सब अपने अपमान को शर्बत की तरह पी गए और न सिर्फ़ मेरी बदसुलूकी की शिकायत

मुझसे नहीं की, बल्कि दोबारा वापिसी के लिए मेरी हज़ार बलैयाँ लीं और किसी-किसी ने मेरे क़दम तक चूम लिए ! !

लेकिन इस नालायक़ अमरदास की सलाह पर महाराज ने नई शादी की कोशिशें शुरू कर दीं। मैंने सुना तो कलेजे में जैसे किसी ने मुक्का मार दिया। लेकिन मैं हिम्मत हारनेवाला न था। मैंने अपने जाल का ताना-बाना फैलाना शुरू किया और जहाँ-जहाँ कोशिशें हुईं, वहीं से काट करनी शुरू कर दी। कई रिश्तों की बातचीत हुई, लेकिन बीच में रुक गईं।

लेकिन उस बे-इन्साफ़ ताक़त ने, जिसे लोग सर्वशक्तिमान् कहने की हिमाक़त करते हैं, शायद मुझसे मुक़ाबला करने की ठान ली थी। एक जगह शादी पक्की हो गई और मेरी लाख कोशिशों के बावजूद भी शादी हो गई। यों मैं शादी में भी शरीक था और वह तमाम फ़रायज़ भी मैंने अञ्जाम दिये, जो मुझे देने चाहिए थे, लेकिन दिल की हालत दिल ही जानता था !

ख़ैर, शादी हुई और मैंने भी तहय्या कर लिया कि देखता हूँ, मुझमें और ईश्वर कहलाने वाली उस मसनूई ताक़त में से कौन जीतता है। जिस दिन नई महारानी घर में आईं, मेरी दूतिनें उनके इर्द-गिर्द लग गईं। जो दूतिनें नहीं थीं, वे बना ली गईं और मैंने इस बात का मुकम्मिल इन्तज़ाम कर लिया कि अगर छोटी रानी के पुत्र उत्पन्न हो तो तुरन्त उसका गला घोंटकर काम-तमाम कर दिया जाय !

न-जाने क्यों महाराज अब मेरी तरफ़ से खिचने लगे। अब मेरे पेश किए काग़ज़ात पर वह उस तरह दस्तख़त न करते। अब मुझे देखकर उनकी मूँछों में मुस्कराहट की वह लहर नहीं दौड़ती। अक्सर मर्तबा उनके माथे के बल मेरी नज़र पड़ने लगे हैं। कई दफ़ा मेरे खिलाफ़ आई हुई शिकायतों की चर्चा करते-करते वह झुंझला उठने लगे। और मेरा अफ़सोस, ग़म और ग़ुस्से की आग में तब्दील होने लगा, जब मैंने पाया कि मेरी जगह धीरे-धीरे दीवानबहादुर लेते जा रहे हैं। दीवानबहादुर यों मुझसे उम्र में बड़े ही थे और रियासत के लोगों की नज़र में उनका रुतबा भी मुझसे बड़ा था, लेकिन वास्तविकता यह थी कि अब तक मैंने उन्हें उस भुनगे से ज़्यादा कुछ न समझा था, जिसे सहज इसलिए मसलकर फेंक देने की कोशिश मैंने न की कि इससे मेरी बहादुरी को बट्टा लगता। मैं चाहता था कि वक्त आये,

जब दो दिन अपने पैर पुजवाकर मैं इस पापी को अपमान के साथ, ढँढ़ोरा पीटकर रियासत से बाहर निकालूँ। लेकिन अब उसका प्रभाव बढ़ता देखा तो पुरानी भावनायें तीव्र वेग से उभरकर मेरे मन और मस्तिष्क को आन्दोलित करने लगीं।

छोटी रानी की कोख जैसे गर्भ-धारण के लिए तैयार ही होकर आई थी। शादी हुई नहीं कि रियासत-भर में शहनाइयाँ बजनी शुरू हो गईं कि छोटी रानी गर्भवती हैं। मैंने अपना माथा ठोक लिया और विरत रात में आस्मान की तरफ़ नंगी तलवार उठाकर क़स्म खाई कि अगर पुत्र हुआ तो उसका ख़ात्मा जन्मते ही कर दिया जाएगा और उसी के दूसरे दिन खुद महाराज का, और तीसरे ही दिन मैं गद्दी पर बैठ जाऊँगा। अगर मैं ऐसा न करूँ, तो मैंने माँ का नहीं, गधी का दूध पिया है।

लेकिन क़ुदरत यहाँ भी मेरे आड़े आई।

न-जाने किसने सलाह दी, कि गर्भवती रानी के चारों तरफ़ महाराज ने अपनी अत्यन्त विश्वस्त दासियों का पहरा लगा दिया, ख़ास डॉक्टर-वैद्य उनकी देख-भाल करने लगे। भोजन और औषधि की दस-दस बार परीक्षा करके उन्हें दी जाने लगी। मैंने यह सुना तो धक्-से रह गया। इनमें से एक आदमी भी तो मेरा अपना न था। बहुत कोशिश की, अशर्फ़ियों की थैलियाँ खोल दीं, पर कोई ताक़त कारगर न हुई। सब से वड़ी कठिनाई यह थी कि सारा काम चुपचाप करना पड़ता था। आख़िर मैंने निश्चय कर लिया कि अगर पुत्र होगा, तो मैं ख़ुद उसे मौत के घाट उतारकर उसी दिन महाराज की हत्या करा दूँगा; चाहे इस प्रयत्न में मेरे प्राण ही क्यों न चले जायें।

मगर गर्भ के मास ही महाराज ने मुझे अपने एक मित्र-राज्य में किसी ख़ास काम से जाने की आज्ञा जारी कर दी। मेरे बदन में काटो तो ख़ून नहीं ! यह काम कई महीने का था। बहुतेरे हाथ-पैर मारे, बीमारी का बहाना किया, सब-कुछ करके हार गया, लेकिन मुझे जाना ही पड़ा और छोटी रानी ने पुत्र-प्रसव किया। और मैं अभागा कुछ न कर सका।

कर क्या सका कि राजकुमार को पाँच बरस का छोड़कर महाराज तपेदिक़ से ग्रसित होकर काल-कवलित हुए। यानी दस बरस की मेहनत से इतनी आंशिक सफलता मिल सकी !

आज इस घटना को बीस बरस से ऊपर बीत चुके हैं।

हिज़ हाइनेस की आत्म-कथा

जो गोरी रात-भर मेरे साथ सोई, वह बम्बई की एक फ़िल्म-कम्पनी में एक्ट्रेस है और श्वेत-पक्ष की एक मस्ती-भरी रात को मैंने पहिले-पहल उसे अपने बम्बई-स्थित महल में बुलाया था। उस पहली मुलाक़ात ने ही मुझे बता दिया कि वह गोरी औरत नहीं, तमाशबीनों का हीरा है ! आप जानते हैं, कौन औरत तमाशबीनों का हीरा होती है ? वह, जो गोरी तो हो ही, जिसका बदन रेशम की तरह मुलायम हो, जिसका एक-एक अंग साँचे में ढला हुआ-सा हो, जिसके बाल काले, घुंघराले, लहरियेदार और एड़ी तक लटकते हुए हों, जिसके मुँह से इश्क की खुशबू आये, जिसके शब्दों से शहद के फ़ौवारे छूटें, जिसका कण्ठ-स्वर वीणा-विनिन्दित हो, जिसे तमाशबीन के किसी प्रस्ताव से इन्कार न हो, जिसकी एक-एक अँगड़ाई में शोख़ी हो, जिसके इन्कार में आमन्त्रण हो, जिसकी आँखें झुकती-झुकती भी वार करती हों, जिसकी मुस्कराहट बर्छी और भालों को बेकार कर देने की ताब रखती हो, जो एक बार मिले, तो जी चाहे कि वह जीवन-भर मिलती रहे और जिसके लिए दुआ निकले कि वह जीवन-भर उतनी ही मृदुल, उतनी ही कठोर, उतनी ही सुन्दर और उतनी ही लोचदार बनी रहे।

ऐसी है वह बम्बई कीं गोरी !

बम्बई के महल की वह जादू भरी रात आज भी याद आती है तो आनन्दोल्लास से मेरे शरीर का रोम-रोम खिल जाता है। नाम तो मैंने उसका बहुत बार फिल्मों के सिल्सिले में सुना था, लेकिन तारीफ़ की मेरे

कुछ चरों ने। उनका कहना था कि फ़ी-ज़माना उसके उठान की जोड़ करने वाली औरत बम्बई में दूसरी नहीं। उन लोगों ने कुछ नक़्शा मेरे सामने बाँधा कि सच, मेरे मुँह में पानी भर आया ! हुक्म हुआ कि उसे पेश किया जाए !

इन 'चरों' का उल्लेख सुनकर आपको ताज्जुब तो नहीं हुआ ? ज़रूर हुआ होगा। लीजिये, मैं उनका विस्तृत परिचय आपको दे देता हूँ। बेशक, नाम मैं आपको न बताऊँगा, सिर्फ़ अन्दाज़ से काम निकाल लीजिये।

इनमें कुछ तो ऐसे हैं, जिन्हें ए० डी० सी० की मर्यादा मिली हुई है और वाक़ी ऐसे हैं, जो तनख़्वाह तो पाते हैं, लेकिन पद उनका कोई नहीं। मगर आप जानते हैं कि वह मेरे किस क़दर नज़दीक हैं, और मेरे भेदों से किस क़दर वाक़िफ़ हैं? अगर उनमें से कोई बदमाशी पर उतर आवे तो मुझे गद्दी तक का खतरा उठाना पड़ सकता है। अगर वह चाहें तो मेरे नंगे फ़ोटो उतार सकते हैं, मेरी नालायकियों का सच्चा-सच्चा और मय सबूत हाल दुनिया को दे सकते हैं, मेरी कमजोर नसों को दबाकर मुझसे लाखों रुपये वसूल कर सकते हैं !

लेकिन मैं क्या कोई पागल हूँ ? मैंने अपने इस डिपार्टमेण्ट में सिर्फ़ उन्हीं आदमियों को रक्खा है, जो कुत्ते की तरह स्वामिभक्त हैं, कीड़े की तरह वे-खतर और मुर्दे की तरह निर्जीव ! अन लोगों की प्रकृति का विकास कुछ इस ढंग पर होता है, या किया जाता है कि राजा के प्रतिकूल कभी कुछ सोचने तक की भावना उनके हृदय में नहीं उठती। उनमें से अधिकांश को मैंने अक्सर हण्टरों से उधेड़ा है, नंगा करके छत से लटकवाया है, और क्रोधित होकर एकाध की हत्या भी करा डाली है, लेकिन वह हैं, कभी चूँ तक नहीं करते और हमेशा अपने अन्नदाता के आगे जीवनदान माँगा करते हैं।

क्या आप ताज्जुब करते है ? तब आप वड़े सीधे हैं, या आपको रियासतों का तजुर्वा नहीं, या आप राजकीय मर्यादा और राजा के अधिकारों से परिचित नहीं, या आप पर अंग्रेज़ियत का भूत सवार हैं, या आप एक निहायय मामूली आदमी हैं, या आपको पेट की फिक्र नहीं। अजी साहव, मैं उन्हें तनख़्वाह देता हूँ, रोटी खिलाता हूँ और साले चुपके-चुपके शराब

भी पी जाते हैं। और सबसे बड़ा अनुग्रह तो उन पर यह करता हूँ कि उन्हें अपने व्यक्तिगत भेदों में शामिल करता हूँ। ज़रूरत पड़ने पर उनकी सिफ़रिश से रियासत में चलते हुए मुकदमों को रुकवा देता हूं, अपराधियों को माफ़ करा देता हूँ, स्याह को सफ़ेद और सफ़ेद को स्याह कर देता हूँ, खुश हो जाऊँ तो मामूली-से आदमी को जागीर दे डालता हूँ, 'मूड' में रहने पर छोटे-से आदमी को आस्मान पर चढ़ा देता हूँ। फिर अगर वे लोग गुस्ताखी करें; या नमकहरामी करें, या मेरा कोई भेद खोलने की कोशिश करें तो मैं क्यों न उन्हें सख़्त दण्ड दूँ और बग़ैर इसके किस प्रकार मैं इतने बड़े राज्य का शासन और सञ्चालन कर सकता हूँ? आख़िर मैं राजा हूँ।

मैं कहीं रहूँ, राजधानी में या बम्बई, पूना, मद्रास, कलकत्ता, दिल्ली —ग़र्ज़ेकि जब-कभी जहाँ जाता हूँ, यह सारे लोग हमेशा मेरे साथ रहते हैं। और इनका काम महज़ यह रहता है कि यह मेरी शाम का बढ़िया-से-बढ़िया इन्तज़ाम करने की फ़िक्र में धूल फाँकते फिरें। मुल्क के बड़े-बड़े शहरों की बड़ी-बड़ी रण्डियों, उनके बड़े-बड़े दलालों, शहर भर की बढ़िया-बढ़िया खानगियों ओर लावारिस ख़ूबरुओं से इन लोगों का परिचय रहा है और होता रहता है। हरेक नये-से-नये माल की खबर इन इन लोगों को रहती है। जहाँ, जब कभी मेरी सवारी जाती है, इन्हीं महापुरुषों की बदौलत मुझे हरेक शाम को नई शराब की बोतलों का साथ देने के लिए नई-नई और जीती जागती शराब की बोतलें भी चखने को मिल जाती हैं।

यही शाम का वक्त मेरी सारी चिन्ताओं और परेशानियों को भुला देता है। इसी वक़्त में मुझे खौफ़नाक माँ, अपने नमकहराम सरदारों और अपने बदमाश दुश्मनों के षड्यन्त्रों की कल्पना की चिन्ता से छुट्टी मिलती। इन्हीं कुछ घण्टों में मैं अपने-आपको भूलने की कोशिश करता हूं और चाहता हूँ कि दुनिया का सारा सुख, सारा ऐश्वर्य और सारी विभूति मेरे चरणों पर लोट-लोट जाये।

उस औरत में यह सारी ख़ूबियाँ थीं। वह उस मद-भरी रात में डूब-कर जब-कभी आइन्दा मेरे सामने आई, मैंने अपने-आपको बेहोश-सा पाया। उसकी एक-एक अदा, एक-एक मुस्कान, एक-एक अँगड़ाई में से ख़ूबसूरती चू-चू पड़ती थी। वह जितना कम बोलती थी, उतना ही ज़्यादा मुस्कराती

थी और किस मौक़े पर किस क़दर दिल लुभाने वाले ढँग से उसे अपने मोती से दाँत मुझे दिखाने चाहियें, इसे वह अच्छी तरह समझती थी। मैं उसके एक-एक संकेत पर जैसे रामोञ्चित हो उठता था। हाय वह सुन्दरी !

मैंने गद्दी पर बैठने तक पर-स्त्री का मुँह न देखा था—यानी बुरी नज़र से किसी औरत की तरफ़ ताकने की जुरअत उस समय तक मुझे न पड़ी थी ! मेरी यह खौफ़नाक माँ ! उस ज़ालिम ने मुझे इस क़दर अपनी क़ैद में जकड़कर रक्खा कि मेरे कमरे की चारदीवारी मेरे लिए क़रीब-क़रीब जेल की कोठरी बन गई थी और मेरे गार्जियन और मेरी नर्स, मेरे पहरे-दार ! बल्कि मेरे पिताजी ने मेरे चारों तरफ़ इस तरह का पहरा कभी लगाने की कल्पना भी न की होगी ! मुझे याद है कि उन्होंने शराब पीते वक़्त, या रण्डियों से दिल्लगी करते वक़्त या किसी तरह की अन्य हर्कतें करते वक़्त कभी मुझसे पर्दा न रक्खा था। क्या उन्हें इतनी समझ न थी कि पांच बरस का बच्चा, जिसने राजमहलों में जन्म पाया हो, शराब का नाम नहीं जानता हो, या नशे की वाही-तबाही का अर्थ न निकाल सकता हो, या आगे चलकर उसे यह सारी घटनायें भूल सकनी सम्भव थीं। अफ़सोस, कि पिताजी स्वर्गवासी हो गये, और मेरे लिए उस वक़्त तक एक जल्लाद पैदा कर गये, जब तक कि गद्दी पर बैठकर मुझे ख़ुदमुख्तारी प्राप्त हुई ? आप ख़ुद सोचें कि उस माँ की मैं इज़्ज़त कर सकता हूँ ? उसकी सूरत तक देखने की इच्छा कर सकता हूँ ?···और मुश्किल यह कि आज तक भी तो अपनी हर्कतों से······।

लेकिन यह प्रकरण के विरुद्ध बातें हैं। मेरा कहना सिर्फ़ यह है कि किशोरावस्था की इन कड़ाइयों ने अधिकार मिलते ही मेरे संयम का बाँध एकबारगी तोड़ दिया। गद्दी पर बैठते ही मैंने शुरू-शुरू में तो लम्बे-लम्बे भाषणों द्वारा वह स्टन्ट खेला कि सुनने वाले दाँतों-तले उँगली दाबकर रह गये। प्रजा को वह सब्ज़ बाग़ दिखलाये कि वाह ! सार्वभौम सत्ता को ऐसा मैत्रीपूर्ण रुख दिया कि सम्बद्ध क्षेत्रों से दमादम शाबाशी के रुख आने लगे।

लेकिन यह गर्मी ज़रा ठण्डी हुई कि मैंने लिहाफ़ से बाहर पैर निकालने आरम्भ किये। मेरे चरों की तादाद बढ़ने लगी। शराब के दौर-दौरे शुरू हुए। औरतों के जमघट लगने लगे। ऐयाशी के मज़े का अहसास होने लगा।

दुनिया ज़्यादा दिलचस्प लगने लगी। दामन की दमक और दामिनी की चमक आँखों में और दिल में चकाचौंध पैदा करने लगी। मैंने कहा—अरे दुनिया ऐसी है ? इसमें इतना आनन्द हैं ? इतना सुख है ? इतना सुख है ? इतना मज़ा है ? हर रोज मेरे पास नई-से-नई और बढ़िया-से-बढ़िया औरतें एक-दो नहीं, दर्जनों की संख्या में आने लगीं। कुछ को छेड़ता, कुछ को काटता, कुछ को भोगता और कुछ को बखेरता ! कुछ मेरे बदनसीब नौकरों के काम आती थीं, लेकिन यह वही होती थीं, जिन पर किसी वजह से मेरा गुस्सा नाज़िल हो जाता था, या जिनको शराब के नशे की वहक में मुझे जलील करना मंज़ूर होता था। या जो ज्यादा घमण्ड दिखाती थीं। या जिन्हें अपनी खूबसूरती पर ज़्यादा नाज़ था।

मेरी यह लीलायें धीरे-धीरे बढ़ती ही चली गईं। फ़ाहिशा औरतों के ठट्ठ-के-ठट्ठ राजधानी में जमा होने लगे। मेरे हाली, मवालियों ने मुझे मेहरबान रखने का यही रामबाण नुस्खा समझ लिया। कुछ ने तो स्थायी रूप से अपने घर में कुछ ऐसी औरतों को लाकर रख लिया और कुछ ने भिन्न-भिन्न औंरतों से अपने मरासिम जारी कर लिए। औरत का उपहार मेरी दृष्टि में सबसे महान् उपहार समझा जाने लगा। एक-एक ए० डी० सी० महाशय का घर परिस्तान समझा जाने लगा। और डॉक्टर...इन सब में अग्रगण्य था। उसके घर में सबसे अच्छे पटाखों का समूह एकत्रित था। और इसीलिए उस पर मेरा सबसे ज़्यादा अनुग्रह था।

कुछ बेचारे जो ग़रीब थे बेवकूफ़ थे और बाहर की औरतों का इन्तज़ाम नहीं कर सकते थे, उन्होंने धीरे-धीरे अपनी सगी-सम्बन्धियों, बहनों, बेटियों, भतीजियों, भाञ्जियों, सालियों, सरहज्रों और खुद अपनी बीवियों तक को मेरे सामने पेश करना शुरू कर दिया और उन बदनसीब बेचारियों को देखिये कि खुशी-खुशी मेरे आग़ोश में आकर अपना जन्म सार्थक करने के लिए तैयार हो जाती थीं ! जैसा कि मैंने ऊपर कहा, मैं उनसे खेलता, उन्हें जैसे चाहता भोगता और बखेरता और कोई न था, जो मेरी हर्क़तों पर उँगली उठा सकता। मैं राजा जो था !

लेकिन इन सबमें बहुत थोड़ी ऐसी सौभाग्यशालियाँ थीं, जिनको एक बार से अधिक मेरी अंकशायिनी बनने का सौभाग्य मिला हो ! इसी में तो

मेरा बड़प्पन था ! सभी प्रान्तों और सभी जातियो से मेरा वास्ता पड़ा, लेकिन मेरठ की पहाड़िनों के अतिरिक्त न तो पूना की मरहठिनें मेरे मन भाईं, न दिल्ली की मुसलमानिनें, बम्बई की गुजरातिनों से तो मुझे नफ़रत ही हो गयी थी ! और एंगलो-इण्डियन छोकरियों के मुताल्लिक़ यह संस्कार मेरे हृदय पर जड़ जमा चुका था कि वे बीमारी की घर हैं ।

लेकिन बम्बई की वह गोरी, जिसका ज़िक्र मैं ऊपर कर चुका हूँ, जिसका वतन दिल्ली था और जिसकी माँ पहाड़िन थी और बाप बिहार के कोई राजा थे, जिसकी सुन्दरता ने और जिसके शबाब ने मुझे दीवान बनाया और बना रक्खा है, उसके बारे में मैं आपसे क्या कहूँ कि वह परी न-जाने किस लोक से उतरकर आई थी कि जितनी-जितनी मुलाक़ातें हुईं, उतना-ही-उतना इश्क बढ़ता गया और उतनी-ही-उतनी दीवानगी घटती गई। वही वह भाग्यशालिनी थी, जिसके चरणों पर एक दिन मैंने अपना तख़्त और ताज तक अर्पण कर देने का निश्चय कर लिया ।

वह घटना बड़ी दिलचस्प है, इसलिए उसका वर्णन आप भी सुन लें ।

वह उस दिन आस्मानी रंग के किसी नये क़िस्म के अमेरिकन कपड़े की शलवार पहनकर आई थी, और उस पर चोली, छनता हुआ गुलाबी जम्पर और दुपट्टा था, लेकिन उसका रंग मुझे याद नहीं । क्या कहना था खूबसूरती का उस दिन !

शलवार अगर अच्छी सिली हो, अच्छी तरह, अच्छे बदन पर पहनी गई हो, तो बड़ी अच्छी चीज़ है ।

जब पीते-पीते नशा मुझ पर सवार हो गया तो, उसने, उनींदी आँखों से एक बार मेरी तरफ़ देख-भर दिया और मैं मानों निहाल हो गया ।

मैंने कहा—'शमीम,···तुम मेरी तक एक बात मानोगी ?'

उसने मुँह से और आँखों से पूछा ।

—'इरशाद !'

—'वादा करो कि मंजूर करोगी ?'

उसने उसी तरह मुँह से और आँखों से बताया कि वह वादा करती है कि मंजूर करेगी ।'

'नहीं, क़स्म खाओ ?'

उसने दर्याफ़्त किया—'किसकी ?'

मैंने अपने सर पर हाथ रक्खा और कहा—'इसकी ?'

उसने सारी शरारत और इश्क की सारी ख़ुशबू को आँखों में भरकर इस हुक्म की तामील करने से इन्कार कर दिया।

और पैक भरा और मुझे पिला दिया।

'बताइये !'

'उँहुक् !'

'आपको मेरी क़स्म !'

'उँहुक् !'

उसने मुझे ऐसे मौकों पर 'हुज़ूर', 'सरकार' 'अन्नदाता' के नफ़रत-भरे शब्दों से सम्बोधित करना छोड़ दिया था।

'आप न बतायेंगे ?'

'उँहुक्'

'अच्छा मैं क़स्म खाती हूँ।'

'क्या ?' मैंने पानी का छींटा खाई हुई मुरझाई बेल की तरह लहलहा-कर कहा।

'आपका हुक्म ब-सरो-चश्म मंजूर।'

'क़स्म···?'

'क़स्म खाती हूँ ?'

'मेरी ?'

'हाँ आप ही की।'

'सर पर हाथ रक्खो।'

उसने मेरे सर पर हाथ रखकर क़स्म खाई।

'अब बताइये !'

'देखो,···क़स्म खाई है !'

'जी···।'

मैंने क्षण-भर रुककर शराब का घूंट भरा। तब कहा—

'मैं तुम्हें रानी बनाना चाहता हूं।'

उसका चेहरा बरसे हुए बादलों की तरह सफ़ेद पड़ गया।

'क्यों ?'

'.........'

'चुप क्यों हो गईं ?'

'जी···!'

'बोलो मञ्जूर ?'

मैंने अपनी हथेली खोलकर हाथ उसके सामने फैला दिया।

उसने दोनों हाथ मिला दिये।

'इसका मतलब ?'

'मेरी इस्तदुआ क़ुबूल हो।'

'क्या ?'

'वादा कीजिए कि क़ुबूल होगी।'

मैंने वादा किया।

उसने कातर कण्ठ से कहा—'मेरी क़स्म वापस दे दीजिये।'

मैं चिहुँक गया।

'इसका मतलब ?'

'पहले हुज़ूर अपना वादा पूरा करें।'

'यानी ?'

'मेरी क़स्म मुझे वापस अता फ़रमाई जाय।'

मैंने उसकी इस दरख्वास्त में अपमान की बू पाई और मैं क्षण-भर को स्तब्ध रह गया।

'क्या मेरी बात मञ्जूर नहीं ?'

वह सर झुकाकर रह गई।

'क्या मेरी रानी बनना मञ्जूर नहीं ?'

वह उसी तरह सर झुकाये खामोश रही।

'बोलो, मैंने क्या कहा ?'

'जी, मैंने सुना ?'

'फिर ?'

उसने बच्चों की तरह मेर आग़ोश में मुँह छिपा लिया—'मैं सिर्फ़ आपकी कनीज़ बनकर सारी उम्र बिता देना चाहती हूँ।'

मैंने कसकर उसे छाती से लगा लिया और इश्क़ के जोश में मेरा दिल तेज़ी से धड़कने लगा।

वह बेहोश-सी हो गई थी। मैंने उसे दोनों हाथों से उठाया और छपर-खट पर सुला दिया पर वह बे-हसो-हर्कत पड़ी रह गई।

मैंने गुलाब-जल का छींटा उसके चेहरे पर दिया, पंखे की चाल तेज़ कर दी, रूमाल से उसके मस्तक का पसीना पोंछा और जब इस पर भी उसने हर्कत न की तो यू-डी-कोलोन में भिगोकर रूमाल उसके माथे पर धर दिया। ख़ुद मैं उसके सिराहने बैठ गया।

कितनी ख़ूबसूरत थी वह !

उसका चेहरा मोती की तरह बे-ऐब और बे-दाग़ दिखाई पड़ता था। उसका सीना हल्के-हल्के उसासों के साथ चोली और जम्पर के साथ-साथ पेंगें लेता था, उसके पैर शलवार में मलबूस केले के कटे हुए स्तूनों की तरह हमवार थे, उसके शरीर का एक-एक हिस्सा इस बेहोशी की हालत में भी कुछ इस क़दर कला-पूर्ण ढंग पर अपनी-अपनी जगह पर अपनी-अपनी छटा दिखला रहा था कि मैं हैरान था कि हे मेरे विधाता, तूने किस घड़ी में बैठ-कर इस सूरत को घड़ा था ?

अकस्मात् उसने आह की और करवट बदली, और उसका बायाँ हाथ मेरी गोदी में आ पड़ा।

मैंने झुककर उसकी हथेली पर बोसा दिया।

उसने आँखें खोल दीं।

'आह !'

मैंने नीचे झुककर पूछा—'क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।' कहकर उसने उठने की कोशिश की।

'लेटी रहो ! लेटी रहो !'

वह लेटी रही। उसने ज़ाहिर किया वह बेहद परेशान है।

मेरे उस कमरे में कोई न आ सकता था। इसीलिए उस वक्त तक वहाँ महज़ मैं था और वह थी।

दस मिनट बाद उठकर वह बैठ गई और उसने आँखें बन्द करके मेरे गले में हाथ डाल दिये।

उसकी यह हर्कत अप्रत्याशित-सी थी। मैं क्षण-भर को हक्का-वक्का-सा रह गया।

'मेरे राजा, मुझे मुआफ़ कर दो !'

मैंने उसके माथे का बोसा लिया और धीरे-धीरे उसकी कमर थप-थपाने लगा।

'क्या तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं ?'

'मेरी तबियत अच्छी है ?'

'तब ?'

'मुझे मुआफ़ी दी जाय !'

'किसलिये ?—कैसी मुआफ़ी ?—किस कुसूर की मुआफ़ी ?'

'मैं बदनसीब हूँ, जो मैंने आपकी हुक्मउदूली की।' उसने गले से हाथ निकालकर नीची निगाहों से कहा—"क्या मुझ नाचीज़ के लिए यह कम फ़ख्र है कि आपके क़दमों की ख़ाक लेना मुझे नसीब होती ? क्या मुझ-सा खुशनसीब कोई होता, अगर मैं आपकी जूतियों के साये के तले अपनी उमर काटती। लेकिन,...लेकिन, मेरे राजा, मुझे इसी तरह की ज़िन्दगी काटते-काटते मर जाने दीजिये !'

मैं उसकी इस गुफ़्तगू पर हैरान रह गया। आख़िर इस कातर स्वर के भीतर कौन-सा राज़ छुपा हुआ है ?

वह फिर बोली—'मेरे राजा, आप बहुत बड़े आदमी हैं, आदमी नहीं, आदमियों के सरताज हैं, लाखों रूहों के मालिक हैं, बड़ी-से-बड़ी न्यामतें आपके कदमों पर लोटती हैं, ख़ूबसूरत-से-ख़ूबसूरत औरत आपकी क़दम-बोसी करने में फ़ख्र समझेगी, लेकिन मैं...मैं कितनी बदनसीब हूँ...!'

उसका गला रुंध-सा गया।

मैंने फिर उसके मस्तक का चुम्बन लिया और कहा—'परेशान न हो जानेमन्, मैं तुम्हारी बातों से बहुत खुश हूँ और तुम्हारी बड़ी-से-बड़ी ख़्वाहिश पूरी करने के लिये तैयार हूँ।'

उसने लम्बी साँस ली।

'काश, कि मैं आपके हुक्म की तामील कर सकती।'

मैंने कुछ परेशान होकर कहा—'आख़िर मुझे बताओ तो, आख़िर

क्या चीज़ है, जो हमारे टूटे हुए दिलों को जोड़ने में हायल है ?'

वह चुप रह गई और उसकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे।

मैंने उसे कलेजे से लगाकर फिर दिलासा दिया।

'आख़िर कुछ कहो तो —मैं वादा करता हूँ कि मेरी सारी दौलत, सारी हश्मत, सारी इज़्ज़त, —यहाँ तक कि मेरी जान भी अगर तुम्हारी मुश्किल आसान कर सकेगी तो मैं उसे करने में पीछे न रहूँगा।'

उसने मेरी गोद में समा जाने की कोशिश की। उसकी रुलाई थमती न थी।

'मेरे राजा, वह ऐसी मुश्किल है, जिसे कोई आसान नहीं कर सकता।'

'लेकिन सुनूँ तो सही ?'

उसने हिचकियाँ लेते-लेते कहा—"मेरे राजा, मैं रण्डी ज़रूर हूँ और मेरे पेशे की जलालत पर दुनियां 'थू' कहती है, लेकिन मैं औरत हूँ, औरत का दिल रखती हूँ, और औरत के जज़्बात को समझ सकती हूँ···"

मेरा नशा उतर चुका था, लेकिन खुमार बाकी था। मैं समझ न सका कि उसका मतलब क्या है ? मैंने प्रश्न-सूचक आँखों से उनकी तरफ़ देख दिया।

वह चुप रह गई और उसने मुझे कहने का अवसर दिया।

मैंने कहा—'मैं तुम्हारा मतलब समझा नहीं।'

तब उसने रुकते-रुकते सर झुकाकर कहा—'मेरे राजा, मुझ पर आपका पूरा अख़्तियार है, आप मेरे मालिक हैं, मैं आपकी जूतियों की ख़ाक हूँ, लेकिन आप पर मेरा कोई हक़ नहीं; आपका शरीर किसी दूसरी खुश-क़िस्मत का है और मैंने अगर उस नेकबख्त का दिल दुखाया तो मुझे दोज़ख़ में भी जगह न मिलेगी।'

मैं हक्का-बक्का सा उसकी तरफ़ ताकता रह गया।

भास्करदेव की आत्म-कथा

परसों हम दिल्ली में थे और आज यहाँ हैं। इस बात को क़रीब अड़तालीस घण्टे बीत गये हैं, लेकिन तबियत की मतली अभी तक दूर नहीं हुई है।

क्या आप चाहते हैं कि मैं वह क़िस्सा आपको सुना दूँ ? आपसे मेरा कोई पर्दा नहीं; लीजिये, सुन लीजिये।

परसों रात को मुझे हिज़-हाइनेस का पेशाब पीना पड़ा !

हम लोग जब कभी दिल्ली में रहते हैं तो अकसर रात के इन्तज़ाम के लिये मेरठ से औरतें मँगाई जाती हैं। दिल्ली की हवा कुछ दिन से ऐसी बिगड़ी है कि ढंग की औरतें सब-की-सब अपना बधना-बोरिया उठाकर इधर-उधर चल दीं। जो रह गई हैं, उनमें कुछ खूसट हैं और कुछ कमीनी ! मेरे बाप कहा करते हैं कि किसी ज़माने में दिल्ली की रण्डियों का विलायत तक में नाम था। लेकिन सिवा दो-चार बछेरियों के हमें तो कोई ढँग की चीज़ आज तक पसन्द आई नहीं। इन्हीं बेचारियों को अदल-बदलकर तक़रीबात के मौक़े पर हम यहाँ बुला लेते हैं। और उन्हीं में से एकाध वहाँ आ जाती है। इसलिये अब महाराज की दिलचस्पी दिल्ली में घटती जा रही है। अलबत्, साल में एकाध बार हमें वहाँ जाना ही पड़ता है।

तो मैं परसों रात की चर्चा आपसे कर रहा था। दिल्ली में हमारे एक एजेण्ट हैं, जो वहाँ रियासत के बारे में गुप्त बातों का पता लगाते रहते हैं। उन्हीं के सुपुर्द यह काम रहता है कि जितने दिन सरकार की सवारी दिल्ली में रौनक़-अफ़रोज़ रहे, उतने दिन उनकी शाम का इन्तज़ाम कहीं से

भी वह जुटाएँ। उस दिन उन्होंने कई नई सुन्दरियाँ एकत्रित की थीं और गाने-बजाने का भी उत्तम प्रबन्ध किया था। महाराज के 'पर्सनल स्टॉफ' के वे सारे वहाँ एकत्रित थे, जो आम तौर पर हमेशा उनके साथ रहते हैं। इनमें कुछ तो हमारी रियासत के सरदारों के नूरे-नज़र थे और कुछ रोटी-कपड़े पर रहने वाले ऑनरेरी ए० डी० सी०। इन्हीं में महाराज के 'पर्सनल फ़िज़िशियन' डॉक्टर रामलाल भी थे। इनका काम महाराज की सेहत की देख-रेख करना तो है ही, उनके लिए तरह-तरह की उत्तेजनात्मक औषधियाँ तैयार करना भी है। शाम के जल्सों में उनका काफ़ी महत्व रहता है और मैं आगे चलकर बताऊँगा कि कैसे-कैसे गम्भीर कार्यों में महाराज उनका उपयोग करते हैं।

तो हमारे दिल्ली-एजेण्ट महोदय ने, जिनका नाम मि० मेहरा था, उस दिन के लिये ख़ास व्यवस्था की थी। सर्दी का मौसम था और ठण्डी हवाएँ चल रही थीं। हमारे दिल्ली वाले मकान के लम्बे-चौड़े हॉल में सफ़ेद वत्तियों के झाड़ के नीचे मखमली गद्दों-तकियों पर लुढ़के हुए हम लोग शराब और औरत का मज़ा लेते हुए हिज-हाइनेस को उत्तरोत्तर मदहोश किये चले जा रहे थे। हम सभी की यह कोशिश थी महाराज जितना पी सकें पिएँ और जितना हँस सकें हँसें और जितना बक सकें बकें। यही शिक्षा रण्डियों को दे दी गई थी और मि० मेहरा ने ख़ास तौर पर उन्हें समझा दिया था कि उनकी कोशिश बराबर यही होनी चाहिए कि हिज़-हाइनेस को जितना खोल सकें खोलें।

एक जवान लड़की सबसे ज्यादा शोख थी। उसका क़द नाटा, रंग गोरा, बदन कसा हुआ था। नाक में उसके नथली पड़ी हुई थी, जो मेहरा के इशारे पर उसने उतार दी थी। वह ज़र्द रेशम का झल-मल करता जम्फर पहने हुए थी और सफेद किनारी की काली साड़ी उसके शरीर पर अस्त-व्यस्त दशा में पड़ी हुई थी। उसका बदन सुडौल, मद-भरा और आकर्षक था और आँखें बड़ी-बड़ी और नशीली थीं। पी तो वह सभी रही थीं, लेकिन उसकी 'मात्रा' सब से अधिक थी। पीती जाती थी और खिलती जाती थी! हँसती थी तो मोती-से दाँत दिखाई दे जाते थे। हिज़-हाइनेस भी सबसे ज़्यादा दिलचस्पी उसी में दिखा रहे थे।

उस्ताद लोग थे, लेकिन बाहर थे। पीते-पीते जब रात भीगने लगी और हम सब मतवाले हो उठे तो सहसा 'छन्न'-से घुँघरू बज उठे! न-जाने किसने बजाये, कैसे बजाये और किसके हुक्म से बजाये। मैं आम तौर पर सब से कम पीता हूँ, लेकिन अफ़सोस है कि उस दिन मैं भी बाँध न रख सका। मैंने देखा—वही मतवाली तवायफ़, पैरों में घुंघरू बाँधे, साड़ी को गले में लपेटे, नाचने को तैयार खड़ी है और उस्ताद लोग, अपने पुराने, मगर क़ीमती लिबास में झुक-झुककर सलामें करते, डर-डरकर दुबले होते हुए, भीतर आ रहे हैं।

हिज़-हाइनेस का गिलास उनके सामने की शीशे की मेज़ पर धरा था।

एक-एक औरत बारी-बारी से आती थी हम लोगों के गिलास भर जाती थी। अब की दफ़ा उसी मतवाली छोकरी ने शराब से आधी-भरी सुराही उठाई और हिज़-हाइनेस का गिलास भर दिया।

और इसके बाद उसने 'इक़बाल' की एक ग़ज़ल कुछ इस जोश के साथ सुनानी शुरू कर दी कि हम लोग झूमने लगे। शराब के नशे में संगीत का प्रभाव कितना गहरा हो जाता है।

घुँघरूओं की झनकार हमारे कानों के रास्ते दिमाग़ तक पहुँचकर कोलाहल उत्पन्न कर रही थी, ग़ज़ल का एक-एक मिसरा दिल की कली-कली खिलाये दे रहा था, तबले की थपक और सारंगी की गुनगुनाहट हमारी मदहोशी पर बेहोशी का रंग चढ़ाये दे रही थी। और इसके ऊपर उस ज़ालिम की मस्ती और उसकी ख़ूबसूरती आपस में एक-दूसरे से आगे बढ़ जाने के लिए मानों होड़-सी लगाए जा रही थी।

'ओ डॉक्टर!' हिज़-हाइनेस के सम्बोधन और उनकी आवाज़ से हमने पहचान लिया कि उनका नशा हद पार कर चुका है। लेकिन वह राजा हैं; हमें अपने नशे को इस हद तक बढ़ने की इजाज़त देने का हक बिल्कुल हासिल नहीं, जहाँ हम लोग महाराज के शब्द की महत्ता को याद रखना भूल जायें। हमारे शरीर का एक-एक रोम उनका गुलाम बनकर स्थिर हो गया।

डाक्टर होश-हवास भूलकर दोनों हाथ जोड़े हुए, हिज़-हाइनेस के सामने पेश हुआ।

'हूज़ूर !'

'इससे पूछो, इसका नाम क्या है ?'

डाक्टर ने इस लड़की की तरफ़ आँख मारकर आवाज़ दी ।

'ओ रे...!'

उसने आँख-नाक और भाव-भंगी से जिज्ञासा प्रकट करते हुए पूछा—'इर्शाद ?'

'सरकार क्या फ़रमाते हैं ?'

उसने झुककर वा-आदाब चार बार सलामें कीं और कहा—'अन्नदाता का वड़ा हुक्म !'

'अरे तेरा नाम पूछते हैं ।' डाक्टर ने चोबदारों की-सी आवाज़ में एड़ लगाई ।

'कनीज़ को आनन्दी कहते हैं ।' उस छलछन्दी ने भोली-भाली सूरत वनाकर कहा ।

'तुम सब मिलकर नाचो-गाओ !'

हुक्म की देर थी सव-की-सव अब खड़ी हो गईं । प्रायः सभी को थोड़ा-वहुत नाचना आता था और ऐसे मौके पर भला कौन किससे कम रहती ? इसलिए सभी ने घुँघरू वाँध लिए ।

सब मिलाकर पाँच थीं । सभी नशे में थीं, पर खिली हुई सबसे ज़्यादा आनन्दी ही थी । मैं उस नशे की हालत में भी छिपी निगाहों से महाराज की तरफ़ देखता जाता था और मन-ही-मन में समझता जाता था कि आज आनन्दी के भाग्य खुल गये !

उन सबने मिलकर न-जाने किस क़िस्म का नाच नाचा कि हमारे नशे पर तह-सी जम गई । हिज़ हाइनेस मदहोश हो चुके थे, लेकिन पिये जा रहे थे; और जब वह पी रहे थे तो हम भला कैसे पीछे रहते ? नशे के मारे हमारा बुरा हाल था ।

हिज़ हाइनेस के तन पर एक मोटा ऊनी बनियान था और सर पर वालोंदार टोपी । बग़ल के रास्ते कन्धे पर उन्होंने एक ख़ुशनुमा शाल डाला हुआ था । लेकिन हम लोग सब-के-सब पूरी 'ड्रेस' में थे । हमारे लिए यह एक दरवार ही था और ऐसे वक्तों पर हमारे लिए ख़ास 'ड्रेस' मुक़र्रिर थी ।

नाच-नाचकर सब फिर अदब के साथ बैठ गईं। रण्डियों का क़ायदा है कि राजा की मौजूदगी में बैठती नहीं, लेकिन हमारे महाराज बड़े दरिया-दिल हैं। उन्होंने यह तकल्लुफ़ सिर्फ़ तक़रीबात के मौकों के लिए ही महदूद कर रक्खा था। रण्डियाँ उनकी इस उदारता से बहुत ख़ुश रहती थीं।

'यहाँ आ रे !' महाराज का इशारा समझकर डाक्टर रामलाल ने उस नशे में नहाई हुई औरत से कहा।

वह फलों से लदी बेल की तरह झुकती, लचकती ख़म-खाती, आगे बढ़ी और उसने महाराज के सामने पहुँचकर सलामें कीं।

महाराज ही हालत कुछ न पूछिये। नशे में उनकी आँखें जल रही थीं और चेहरा तमतमा रहा था। उन्होंने आगे सर करके उस नारी के कान में कुछ कह दिया और खिलखिलाकर हँस पड़े।

उस नालायक़ ने आव देखा न ताव, झट अपनी साड़ी का दामन डाक्टर के गले में डाल दिया और कहा—'भाई साहब, आदाब अर्ज़।'

हमारी सारी मण्डली खिलखिलाकर हँस पड़ी !

डाक्टर बेचारे के चेहरे की अजब हालत थी। न बोलते बनता था, न चुप रहते। शर्म के मारे गाल सफेद पड़ गये और गर्दन झुक गई। लेकिन उसका यह नाट्य मुझसे कहाँ छुपा रह सकता था ! मैं ख़ूब जानता हूँ कि हिज़ हाइनेस के इशारे पर हममें से जिस किसी के साथ इस तरह का मज़ाक़ किया जाता है, वही अपने दूसरे साथियों की आँखों में उठ जाता है; यानी समझा जाता है कि हिज़ हाइनेस की दिलचस्पी अमुक आदमी में अधिक बढ़ रही है और हम नाचीजों में उनकी दिलचस्पी बढ़ना हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है !

हिज़-हाइनेस का दौर बराबर जारी था।

सहसा मेहरा साहेब की तरफ़ अपनी नशे से झुकती हुई आँखें उठाकर महाराज ने इशारा किया—'यहाँ आओ !'

वह ग़रीब आगे बढ़ा।

'उस हरामज़ादी को साधोसिंह के सुपुर्द कर दो।' हिज़ हाइनेस ने एक ऐसी छोकरी की ओर इशारा किया जो अभी बिलकुल कच्ची थी, जो शर्म से झुकी जा रही थी, जिसका साहस अभी सामने होने का न हुआ था

और जिसने इस असना में एक मर्तबा भी हिज़ हाइनेस की तरफ़ देखकर कटाक्ष न किया था । मैंने उसकी इस हर्कत का नोटिस लिया था और मैं दिल-ही-दिल में महसूस कर रहा था कि आज उस बदनसीब की खैर नहीं ।

रियासत में तो यह हर्कतें रोज़ाना ही होती थीं, लेकिन ब्रिटिश-इण्डिया में सहसा ऐसी हर्कत करने की हिम्मत न होती थी । लेकिन नशा और हिज़ हाइनेस—जब दोनों मिल गये तो फिर कौन किसी बात का ख़याल कर सकता है ?

उस लड़की के लिए यह आज्ञा हुई तो सब-की-सब रण्डियाँ स्तब्ध रह गईं । इस बेचारी के चेहरे पर तो ज़र्दी छा गई । उस्ताद लोग बाहर चले गये थे । मेहरा तो हिज़ हाइनेस का नौकर ठहरा—उसकी हिम्मत न हुई कि वह उनकी हुक्म-उदूली करे । झट सामने से हट गया और साधोसिंह को बुलाने का यत्न करने लगा ।

मेरा नशा हिरन-सा होने लगा । मुझे अपने सामने अपना कर्तव्य दिखाई देता था । यही मौक़ा था कि महाराज को दिखाऊँ कि मैं उनका कितना खैरख़्वाह हूँ और उनकी इज्ज़त का कितना ख़याल रखता हूँ । मेरे बाप की यही सीख थी कि ऐसे मौक़ों पर ही खतरा उठा जाना चाहिए । और नशे की हालत में अगर मालिक नौकरी से अलग भी कर दे तो पर्वाह नहीं करनी चाहिये; क्योंकि दूसरे ही दिन वह नौकरी, मय गहरे इनाम के वापस मिल जाती है, और अपनी शान गहरी हो जाती है—मुफ़्त में ! इसीलिए मैंने क्षण-भर में ही अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया और इरादा कर लिया कि मुमकिन है, महाराज की नौकरी से मुझे इसी समय हाथ धोना पड़ जाय । लेकिन बाप की तालीम पर मैं आँखें बन्द करके अमल करता हूँ और इसलिए इरादा कर लिया कि वह ख़तरा मुझे उठाना ही चाहिए !

मैं हिज़ हाइनेस की आँख बचाकर चुपके-से मेहरा के पीछे हो लिया और जैसे ही वह बाहर निकला मैंने उसके कन्धे पर हाथ धर दिया ।

उसने पूछा—'क्यों ?'

'मैंने कहा, दीवाने हो रहे हो ?'

'यानी ?'

'जानते हो, यह रियासत नहीं, दिल्ली है !'

'जानता तो हूँ, लेकिन करूँ क्या ?'

'करोगे क्या—अपना फ़र्ज़ तो समझो ! सरकार की हालत तो देख ही रहे हो—क्या यह वक़्त ऐसा है, जबकि हम आँखें बन्द करके काम करें ?'

'तो आख़िर कुछ बताओ भाई, मेरी तो अक़्ल हैरान है । अच्छी साली रियासत की नौकरी की !'

मैं हँसा। कहा—'अरे बेवकूफ़, लोग तो रियासती नौकरी के लिए तरसते फिरते हैं !'

उसने परेशान होकर कहा—'न भाई, मैं बाज़ आया ऐसी नौकरी से ! इससे तो रूखी खा लेना अच्छा है ! भला तुम्हीं सोचो, मेरा इन औरतों से हर रोज का वास्ता है, अगर आज किसी की बेइज्ज़ती हो गई तो आइन्दा मैं उन्हें क्या मुँह दिखाऊँगा ?'

मैंने कहा—'घबराओ नहीं, तरकीब मैं बताता हूँ।' बोलो !

'साधोसिंह के हाथ पर पाँच रु० का नोट धरो और उससे कहो कि लड़की को जाकर उसके घर पर छोड़ आये। सरकार पूछें तो उन्हें यह समझा देना कि उसे क्या जवाब देना है।'

मेहरा की समझ में बात आ गई और मैं उसकी कृतज्ञता का लाभ लूटकर वापिस लौटा । साथ ही मैंने तय कर लिया था कि सुबह जागते ही सारा माजरा साफ़-साफ़ हिज़ हाइनेस के रू-ब-रू पेश कर दूंगा । हम उनके 'पर्सनल स्टाफ़' के लोग ठहरे। अगर हम किसी भी बात का राज़ हिज़ हाइनेस से रक्खें तो यह हमारा सब से बड़ा क़ुसूर समझा जाता है !

लेकिन किस्मत की बात—उन्हें वह बात भूली नहीं थी। मेरी अनुपस्थिति का पता भी उन्हें चल चुका था। पहुँचते ही कहा—'भास्कर !'

'सरकार ?'

'कहाँ थे ?'

मैं बग़लें झाँकने लगा। फिर सम्हलकर कहा—'यहीं था सरकार ?'

उन्होंने डॉटकर फ़र्माया—'यहाँ हर्गिज नहीं थे।'

मैंने मुँह का भाव अजीब-सा बनाकर ज़ाहिर कर दिया कि मैं पेशाब करने गया था।

जिन लोगों को राजे-महाराजाओं की सोहबत का तजुर्बा है, वह जानते हैं कि जैसे वे खुद अजीब होते हैं, ऐसे ही उनका 'मूड' भी अजीब होता है। बज़ाहिर गुस्से की कोई बात न थी, लेकिन हिज़-हाइनेस की तबियत का रंज उस बेकस और शर्मालु लड़की ती तरफ़ से अभी तक दूर न हुआ था। उन्होंने चेहरा ऊपर उठाकर आवाज़ दी—'मेहरा!'

मेहरा साधोसिंह के साथ वापिस आ रहा था। उसने वहीं से जवाब दिया—'जी सरकार!'

साधोसिंह ने झुक-झुककर सलामें करते हुए सामने आकर कहा—'सरकार······?'

हिज़-हाइनेस ने आँखों के इशारे में ही उस बात की पुष्टि करने की कोशिश की, जो मेहरा ने उन्हें बताई थी।

उस कम्बख़्त ने आँखों-ही-आँखों में उनका आदेश ग्रहण करके कहा—'बहुत अच्छा सरकार, जो हुक्म अन्नदाता।'

और वह उसी तरह पीछे हट कर उस लड़की के पास पहुँच गया।

हिज़-हाइनेस ने मेरे कान में कह दिया—'एक को रक्खो, बाक़ी सब जायें।'

किसको रखने की तरफ़ उनका इशारा था, यह मैं समझ गया और तदनुसार झटपट मैं उनका हुक्म बजा लाया। मैंने आवश्यक रुपया सब को दिलवा दिया और पाँच मिनट बाद ही मैं फिर हिज़-हाइनेस के पास था।

आम तौर पर 'पर्सनल स्टाफ़' के लोग ज़ाहिरा एक-दूसरे से खूब घुल-मिलकर रहते हैं; लेकिन भीतर-ही-भीतर हम लोग एक-दूसरे से हसद भी कम नहीं रखते। ऐसे ही एक सज्जन को मैं जानता हूँ, जो मेरे सौभाग्य पर बहुत ही नाराज़ रहते हैं और वक़्तन्-फ़ वक्तन् मेरी काट करने से बाज़ नहीं आते। मैं कोशिश कर रहा हूँ कि मौक़ा मिले तो मैं उनका पत्ता कटवा दूँ, लेकिन कुछ मौक़े लाये जाते हैं और कुछ खुद-ब-खुद आ जाते हैं। मैं दूसरी तरह के किसी मौक़े की फ़िक्र और इन्तज़ार कर रहा हूँ और कोशिश कर रहा हूँ कि हिज़-हाइनेस के पास वह हज़रत फटकने न पायें।

लेकिन जब रण्डियों को विदा करके मैं लौटा तो उन्हीं महाशय को महाराज के ऐन पास खड़े देखा और मुझे शक हुआ कि अभी-अभी उसने उनसे कोई बात कही है। मेरा शरीर सन्न हो गया ! लेकिन हिम्मत को मैंने हाथ से न जाने दिया।

हिज़-हाइनेस की नज़र मुझ पर पड़ी तो उन्होंने आँखें उठाकर एक मर्तबा मेरी तरफ़ देख-भर दिया।

वह सज्जन वहाँ से हट गये। हिज़-हाइनेस ने मुझे हुक्म दिया कि आनन्दी का नाच फिर शुरू कराया जाय।

उस्ताद लोग आ गये और नाच शुरू हुआ। लेकिन इस मर्तबा नाच जमा नहीं। हिज़-हाइनेस बराबर पिये चले जा रहे थे। हम सब लोग भी उनका साथ निभाकर मदहोश हो रहे थे।

सहसा उन्हें न-जाने क्या सूझा कि शराब का भरा हुआ अपना गिलास लिए, बाथ-रूम की तरफ चले गये। जाने के पहले आनन्दी को हुक्म दे गये ग़ज़ल पर कोई नाच नाचा जाय।

वह पाँच मिनट बाद, वही गिलास हाथ में लिए, वापस लौटे और उनका आना था कि नाच शुरू हो गया।

'नाचो ! नाचो ! खूब दिल खोलकर नाचो !' सहसा हिज़-हाइनेस उच्च स्वर से चीख उठे।

'पियो ! पियो ! ख़ूब पियो !' तब उन्होंने हम लोगों की तरफ़ देखकर कह दिया।

और मुझसे कहा—'भास्कर !'

मैंने जवाब दिया—'जी सरकार······!'

नशे के मारे मेरा बुरा हाल था।

'मेरा गिलास तुम्हें पीना होगा।'

भला मेरी कहाँ ताव थी, जो उनकी हुक्म-उदूली करता ? मैंने बा-अदब सलाम किया और गिलास लेकर मुँह से लगा लिया।

'एक साँस में खत्म करो—जल्दी !'

उनके इस तरह के अहकामात को हम लोगों को बग़ैर कान-पूंछ हिलाये, मन्ज़ूर करना पड़ता था। मैंने एक ही साँस में गिलास का वह

कड़वा पदार्थ ख़त्म कर दिया।

और दूसरे ही मिनट क़ै करने के लिए मैं बाथ-रूम की तरफ़ दौड़ा।

लौटा तो सुनाई दिया—सब-के-सब ठहाका मारकर हँस रहे हैं! भीतर घुसकर देखा तो सब हँसी के मारे लोट-पोट हैं! रण्डी और उस्ताद लोग भी मुह में कपड़ा दिये, हँसी रोकने की कोशिश कर रहे हैं।

हिज़-हाइनेस ने उच्च स्वर से पुकारकर घोषणा की—'ऐसे कुसूरों की ऐसी ही सज़ा होती है।'

मैं हक्का-बक्का-सा आगे बढ़ा तो मेहरा साहेब ने मेरे कन्धे पर हाथ मारकर कहा—'अरे बेवक़ूफ़दास! पेशाब पी गए—पेशाब!'

और मैं क़ै करने के लिए दोबारा बाथ-रूम की तरफ़ दौड़ा।

माँ-महारानी की आत्म-कथा

जब मैं विवाह करके राज-प्रासाद में आई तो वहाँ की शान और स्वच्छता देखकर मेरा गर्वीला हृदय नृत्य कर उठा। मैंने सोचा—मुझसे अधिक भाग्यवती और कौन है।

मेरे स्वामी की वह रसीली आँखें हर समय मेरे आराम तथा आसाइशों का अवलोकन करने में व्यस्त रहती थीं। वह बार-बार किसी-न-किसी बहाने से आते और पूछते कि मुझे कोई कष्ट तो नहीं है। उन्होंने खुद साथ ले जाकर मुझे अपने बाग़ीचे की सैर कराई। उन्हें फूलों का तथा वाग़वानी का वहुत शौक था। यह बाग़ीचा उन्होंने बड़ी मेहनत से तैयार किया था तथा भिन्न-भिन्न क़िस्म के पौदे कुछ इस क्रम से लगाये थे कि बाग़ीचा प्रायः बारहमास फूलों से लदा रहता था। मैं वहाँ गई तो ख़ुशबू से मेरा दिमाग़ मुअत्तर हो गया। जीवन में पहली वार इस बाग़ीचे में मैंने ऐसे गुलाब के फूल देखे, जिनकी चौड़ाई एक-एक बालिश्त से भी अधिक थी। उन्होंने क़न्नौज, पूना, मद्रास तथा बर्मा से तथा विदेशों के सभी प्रसिद्ध स्थानों से तरह-तरह के बीज तथा कुछ पौदे मँगवाये थे और उनकी रक्षा के लिए दर्जनों हिन्दुस्तानी मालियों पर एक इटैलियन माली को सरदार वनाकर रक्खा था। यही बाग़ीचा उन्हें वास्तविक शान्ति प्रदान करता था और यहीं आकर वह कहा करते थे कि उन्हें जीवन की सारी ज़िम्मेदारियों तथा चिन्ताओं से क्षण-भर के लिए छुट्टी मिल जाती थी।

आने के कई दिन बाद उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि मैं बड़ी रानी से जाकर

भेंट करूँ। मैं बहुत शर्माई, लेकिन उन्हें देखने का कौतूहल मुझे भी था और तिस पर स्वामी की आज्ञा—मुझे जाना ही पड़ा।

आज बड़ी रानी इस दुनिया में नहीं हैं। अगर वह होतीं तो सम्भवत: उनके प्रति अपनी हृद्गत भावनाओं को प्रकट करने लायक़ साहस मुझमें न हो सकता—क्योंकि अपनी प्रशंसा से उन्हें बेहद चिढ़ थी। वह देवी की तरह शान्त और गंगा की तरह गम्भीर थीं। महाराज तो उनकी पूजा ही किया करते थे। उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ तथा धर्म-ध्यान में ही बीतता था। वह अच्छी तरह जानती थीं कि नैतिक चरित्र की दृष्टि से महाराज एक-पत्नी-व्रती नहीं हैं, उनके अन्त:पुर में अनेक स्त्रिया थीं, लेकिन मुझे ज्ञात हुआ कि बड़ी रानी ने कभी उनके इस कार्य की आलोचना नहीं की। यों महाराज शराब भी पीते थे और कभी-कभी जुआ भी खेलते थे। माँस खाना तो हमारे यहाँ साधारण-सी बात है। लेकिन बड़ी रानी ने महाराज से कभी इस बारे में जवाब तलब नहीं किया। अलबत, खुद वह न माँस खाती थीं न, शराब छूती थीं, न उन्हें अपने व्यक्तित्व तथा अपने मद-भरे सौंदर्य के जौहर दिखाने का शौक़ था, तथा न-ही उनकी भावनायें वासना की ओर प्रवृत्त थीं।

मैं जब उनसे मिली तो मैंने महसूस किया कि मन्दिर में किसी देवी के दर्शन कर लिये। जब तक उनके सामने नहीं गई थी, डर रही थी। झिझक रही थी। यह भी खयाल था कि वह मुझे ज़रूर नफ़रत-भरी निगाह से देखेंगी। मन-ही-मन उनके काल्पनिक प्रश्नों के उत्तरों का बाँधनू बाँध रही थी। लेकिन पाँच ही मिनट की बातचीत में उन्होंने अपने देवत्व का परिचय मुझे दे दिया और मेरा गर्व काफ़ूर हो गया तथा मेरा दर्प उनके सम्मुख नत हो गया।

उस दिन शाम तक उन्होंने मुझे आने न दिया। उन्होंने अपनी देख-रेख में मेरे भोजन की व्यवस्था कराई, दुनिया-भर के विषयों पर बातचीत की, उपदेश दिये, महाराजा के स्वभाव का परिचय दिया, सफल गृहिणी के गुणों का नक़्शा खीचा और जब मैं लौटी तो आशीर्वाद दिया—'पुत्रवती हो!'

उसके बाद जब तक बड़ी महारानी जीवित रहीं, मैं नित्य उनके दर्शनों

के लिये जाती रही। उनके वचनों ने मेरे लिये अमृत का काम किया। उनके उपदेशों में मेरे व्यक्तित्व की सख़्ती धीरे-धीरे घुलने लगी, गम्भीरता और सेवा की मंगलमयी भावनाओं का जैसे उन्होंने मुझे इंजेक्शन दे दिया। मेरे कार्य-क्रम में, ज़मीन-आस्मान का अन्तर आ गया। मैंने हमेशा नौकर-नौकरानियों को पशु समझा था, कभी मैं उनके साथ मेहरबानी से पेश नहीं आती थी, प्रजा-जन के प्रति भी मेरे ख़यालात क़रीब-क़रीब इसी तरह के थे। लेकिन उन्होंने मुझे सिखाया कि नौकर की आत्मा भी उतनी ही मूल्यवान्, उतनी ही आदरणीय और उतनी ही चिन्तनीय है, जितनी ख़ुद मालिक की। उन्होंने मुझे बताया कि प्रकृति की दृष्टि में पूर्व जन्म के कर्मानुसार मनुष्य को भिन्न-भिन्न कर्तव्य सौंप दिये जाते हैं और जो अपने कर्तव्य को जितनी समझदारी के साथ निभा देता है, उसका जीवन ही सफल है। उनका कथन था कि प्रजा-जन हमारे सेवक नहीं, मालिक हैं और राजा-रानी की उत्पत्ति उन पर शासन करने, उन पर अत्याचार करने, उनसे घृणा करने के लिए नहीं, बल्कि उनकी रक्षा और सेवा करके उनका आशीर्वाद-भाजन बनने के लिए हुई है।

मैंने उनकी सीख को पल्ले में बाँधा और आज तक उन शब्दों को भूली नहीं। काश कि आज वह जीवित होतीं! मैं महसूस करती हूँ कि अपने देवोपम स्वामी का वियोग उन के सम्पर्क में मुझे भूल जाता। न तो मुझे फिर अपने शौर्य को प्रकट करने की व्याकुलता होती और न-ही उन अपमानों की आग में जलना पड़ता, जिन से आज पद-पद पर मेरा सामना होता है। न अपने कुलांगार की लीलायें देख-देखकर कुढ़ती ही और न मेरा मन ही परेशान रहता!

जब बड़ी रानी का देहान्त हुआ, उनकी उम्र मरने योग्य न थी, न उनके स्वास्थ्य में ही कोई नुक़्स था। एक दिन अचानक सुबह उन्होंने शरीर त्यागकर दिया और हम सब हैरान रह गए! मैं उस समय गर्भवती थी और वह मुझसे मृत्यु के एक दिन पहले तमाम दिन बात-चीत करती रहीं। उन्होंने उस दिन मुझे इतना प्यार किया, जितना कोई माँ अपनी बेटी से भी नहीं कर सकती। कभी वह मेरे शरीर पर हाथ फेरती थीं और कभी मुझे छाती लगाती थीं। यद्यपि इतने काल में उनके प्रेम से मेरे शरीर का रोआँ-रोआँ

विंध चुका था, लेकिन उस दिन का स्नेह उनका अनहोना था ! मुझे भला क्या पता था कि कल वह स्वर्ग चली-जायेंगी ! मैं उनके इस नवोपम स्नेह से लदी-भरी राजमहल में लौटी और जब मैंने महाराज से उनकी इस चेष्टा की चर्चा की, तो उनकी आँखों में आँसू भर आये।

मुझे उनकी वह याद आज भी आती है तो दिल भर आता है। वह मेरी गुरू थीं। उनकी मृत्यु के बाद और पूर्व मेरे स्वामी कहा करते थे कि उनकी भी वह गुरु ही थीं। उनका कहना था कि उन्हीं का भाग्य था कि उन्हें राजगद्दी मिल गई और उन्हीं के परामर्श के फल-स्वरूप उन्हें राज्य-कार्य में इतना यश प्राप्त-हुआ। वे राज्य के उत्तराधिकारी न थे; उन्हें गत महाराज—मेरे ससुर महोदय ने गोद लिया था। बड़ी महारानी से उनका विवाह इस घटना के पूर्व ही हो चुका था। और जब वह गोद लिये गये तो उन्हें राज-काज का तनिक भी अनुभव न था। उनका कहना था कि बड़ी महारानी का ही प्रताप था कि उन्हें यह अक़्ल आई कि राजा की ज़िम्मेदारी क्या है और राजनीति किस चिड़िया का नाम है। आज मेरे अतिरिक्त कोई नहीं जानता कि किस प्रकार पद-पद पर वे बड़ी महारानी से राज-काज में सलाह लेते थे, किस प्रकार वे राज्य की बारीक से बारीक गुत्थी के सुलझाने में उनकी मदद किया करती थीं, किस प्रकार एक एक करके उन्होंने अपने शत्रुओं और विरोधियों को अपना मित्र वनाया और किस प्रकार इसमें बड़ी महारानी ने उन्हें रास्ते और तरीक़े सुझाये। मेरे स्वामी ने इसी सिल-सिले में एक एक घटना मुझे सुनाई थी—जो मुझे आज तक याद है।

मेरे स्वामी के विरोधियों में सबसे बड़े और सबसे भयानक माणिक सरदार थे, जो आजकल रियासत के मिनिस्टर-ख़ास हैं। गोद लिए जाने से पहले उन दोनों के बीच बड़ा सान्निध्य था, लेकिन उसके बाद इन सम्वन्धों में बिगाड़ पैदा होना शुरू हो गया। इस बिगाड़ का सब से बड़ा कारण यह था कि माणिक सरदार की राय में उनका हक़ मेरे स्वामी को मिल गया था। जब गोद की रस्म हुई तो उसके कुछ ही दिन बाद मेरे ससुर का देहान्त हो गया था और राजगद्दी होने के बाद यह मन-मुटाव विद्रोह की सूरत धारण करने लगा। इस बीच में उन्होंने इस बात की भी भरपूर कोशिश की कि मेरे स्वामी या तो खत्म कर दिये जायें; अथवा

राजगद्दी से महरूम रह जायें। लेकिन होनी बलवान होती है! न तो उनका वाल ही बाँका हो सका और न राजगद्दी ही मिलने से रही। मेरे स्वामी उनके उपद्रवों से धीरे-धीरे परेशान हो गये। और एक दिन उनके एक अपराध पर तो वह आपे से बाहर हो गए। उनका क्रोध इस हद तक बढ़ा कि उन्होंने निश्चय कर लिया कि उनकी जागीर ज़ब्त करके उन्हें रियासतबदर कर दिया जाय। लेकिन जब बड़ी रानी से उन्होंने इस सम्बन्ध में परामर्श किया, तो उन्होंने न-केवल ऐसा करने से उन्हें रोका, बल्कि सलाह दी कि उन्हें अपने राज्य का सबसे बड़ा ओहदा प्रदान कर दिया जाय। मेरे स्वामी मुझे बताया करते थे कि उन्होंने पूरी एक रात बड़ी महारानी से इस सम्बन्ध में वाद-विवाद किया और उनकी आतमा उनकी सलाह मानने के प्रति विद्रोह कर उठी। लेकिन अन्त में बड़ी महारानी की ही विजय हुई और उन्होंने उनकी आज्ञानुसार उन्हें अपने राज्य का मिनिस्टर-ख़ास—या सर्वेसर्वा—नियुक्त कर दिया। और कुछ ही समय बाद उन्हें महसूस हो गया कि यदि वे बड़ी महारानी की सलाह पर अमल न करते तो उनके भतीजे साहेब राज्य में विद्रोह करा देते जिसके फल-स्वरूप न-जाने कितना भयानक उपद्रव राज्य में हो जाता! बड़ी महारानी की सलाह का इतना महत् मूल्य था।

जब माणिक सरदार की चर्चा आई है, तो उनके विषय में जो-कुछ मुझे ज्ञात है, वह कहना अप्रासंगिक न होगा। वह एक उद्भट व्यक्तित्व का जीव है, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन परले दर्जे का नीच और स्वार्थी है। उससे दुनियाँ में कभी किसी का भला न तो हुआ और न हो सकता है। जितने काम जीवन में उसने किए हैं, सब अपने लाभ के लिए और अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए। वह समय आने पर पतित-से-पतित आदमी की जूतियाँ सर पर उठाकर चल सकता है और जरूरत पड़ने पर सगे वेटे का गला अपने हाथ से काट सकता है। यही वह पापात्मा है, जिस पर मुझे शक है कि उसने अपनी अन्धी अभिलाषा का पूर्ति के लिए मेरे स्वामी का असमय में प्राण-नाश किया और इसी राक्षस ने मेरे पुत्र की हत्या कराने के अनेक षड्यन्त्र किए। उसी की साज़िश के कारण आज मेरे पुत्र के पद-पद पर भेदिये लगे रहते हैं और वही आज अपनी मतलब-परस्ती के लिए मुझे

नाना प्रकार के लोभ दिखाकर अपनी तरफ़ गाँठने का प्रयत्न करता है। मैं भी मजबूर हूँ। बेटे की बेइज्ज़ती मेरी मानसिक आग को रोज-रोज भड़काती हैं, मेरे अन्तर की उच्च अभिलाषायें मुझे मजबूर करती हैं यह सोचने पर कि मेरे-जैसी उद्भट नारी के रहते हुए इस नासमझ लड़के का कोई अधिकार नहीं है। प्रजा की गाढ़ी कमाई का रुपया जब पानी की तरह बहता देखती हूँ, तो बड़ी महारानी के उपदेश-अनुसार मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ कि राज्य की बागडोर अपने हाथ में लूँ। अपने ही अंग को जब दिनोंदिन पतन के मार्ग पर फिसलते हुए देखती हूँ, तो शोक से मेरा कलेजा मसोस उठता है। इसीलिए मैंने माणिक सरदार से इस क़दर नफ़रत करने के बावजूद भी उसके उन प्रयत्नों में अपने सहयोग की मौन-सम्मति दे दी है, जिनके फलस्वरूप और सब काम हो जाय, लेकिन उसके प्राणों पर कोई आँच न आये। आख़िर वह मेरा पुत्र है।

लेकिन क्या मैं माणिक सरदार पर विश्वास कर सकती हूँ ?

पिछले बयान में मैंने अपनी रियासत के चीफ़ मिनिस्टर दीवानबहादुर अमरदास की चर्चा की थी। यह एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन पर मेरे स्वामी का अगाध विश्वास ही नहीं था, अगाध प्रेम भी था। वे मुझसे उम्र में बड़े हैं और आज बरसों से उनके साथ मेरा परिचय है। मेरे स्वामी तो उन्हें अपना मित्र और हमजोली बनाकर रखते थे, लेकिन मेरे हृदय में उनके प्रति पिता की श्रद्धा है। मैं महसूस करती हूँ कि मेरे स्वामी धन्य थे, जिन्हें ऐसे अलभ्य रत्न का सहयोग प्राप्त हुआ। वास्तव में मेरे स्वामी के अतुल यशोपार्जन के साधन बननेवालों में बड़ी महारानी के पश्चात् उन्हीं का नम्बर था। जब मेरे स्वामी मृत्यु-शैया पर पड़े थे तो अबोध राजकुमार की और मेरी ज़िम्मेंदारी उन्हीं के ऊपर छोड़ गये थे और जब स्वामी की लाश देखकर मेरे औसान जाते रहे और मैं उनकी देह के सती होने के लिए तत्पर हुई तो वही थे, जिन्होंने मेरे, राजकुमार के और रियासत के भविष्य की शुभ-चिन्तना से प्लावित होकर मुझें अपने इस निश्चय से बाज़ रखा। उनका वह द्रवित आग्रह भला भूलने की चीज है ?

दीवानबहादुर और माणिक सरदार के मध्य आरम्भ से-ही वैमनस्य है और इस वैमनस्य का बीजारोपण उस समय हुआ, जब मेरे स्वामी ने

और कोई चारा न देखकर माणिक सरदार को सहसा उनके सर पर लाकर बैठा दिया । उसी समय दीवान-बहादुर इस रियासत को सदा के लिए छोड़कर चले जाना चाहते थे। लेकिन मेंरे स्वामी के आग्रह और प्रेंम ने उन्हें विवश कर दिया। उनकी मृत्यु के उपरान्त तो उनकी यह मजबूरी और बढ़ गई। पिछले बीस बरस के अरसे में उन्होंने अनेक बार मुझसे कहा कि माणिक सरदार के साथ उनके वैमनस्य की खाई दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है और यदि मेंरी अनुमति मिल जाय तो वह अपनी ज़िम्मेंदारी से बरी हो जायें। लेकिन मेंरे स्वामी मरते समय मुझें उपदेश दे गये थें कि किसी भी अवस्था में उन्हें रियासत से अलग न होने दिया जाय। जब राजकुमार सिंहासनासीन हुए, उस समय तो उन्होंने क़रीब-करीब्र मेंरे पैर छूकर मुझसे इजाज़त चाही, लेकिन मेंरी आँखों के आँसू देखकर वे फिर पिघल गये।

सब से भयानक बात तो यह थी कि पापी दुनियाँ ने दीवानबहादुर के प्रति मेंरी भक्ति को गर्हित और अतिरंजित रूप दे-देकर इधर-उधर बकना शुरू कर दिया था और यह एक ऐसा लाञ्छन था, जिसे कोई भी ईमानदार आदमी सहन नहीं कर सकता। मैंने जब पहले-पहल यह बात सुनी तो मेरे शरीर में आग लग गई, लेकिन फिर मैंने सोचा कि आखिर जब हमारा हृदय पवित्र है तो संसार के बकनें की मुझें क्यों चिन्ता करनी चाहिए? अगर दुनियाँ को पिता और पुत्री के सम्बन्धों में भी कलुष दिखाई दे तो क्या केवल इसीलिए पिता और पुत्री के सम्बन्ध नाश हो जाते हैं? अतएव मैंनें बलपूर्वक अपनें हृदय की निर्बलता को दूर कर दिया।

लेकिन मेंरा पुत्र! उसने आज अपना जो रूप दुनियाँ के सामनें पेश किया है, उसे-सुनकर मेंरी छाती शोक और लज्जा से फटनें लगती है!!

दीवान-बहादुर की आत्म-कहानी

महाराज तो चले गये और छोटी रानी और राजकुमार का भार मेंरे मेंरे कन्धों पर छोड़ गये। लेकिन मेंरी कठिनाइयाँ और मुसीबतें इस क़दर वढ़ गईं और बढ़ती गईं कि कुछ न पूछिए! सारे राज्य में यह समाचार प्रचारित हो गया था कि महाराज ने मरने से पहले छोटी रानी, राजकुमार और समस्त राज्यकार्य की अन्तिम जिम्मेंदारी मेंरे सुपुर्द कर दी है और इसके साथ-ही-साथ कुछ इस तरह की ऊल-जलूल अफ़वाहें भी उड़ीं कि सुन-सुनकर मुझें हँसी आती थी। कुछ लोगों ने तो यह उड़ाया कि महाराज मरने से पहले एक करोड़ रुपये का चेंक मुझे दे गये हैं और कह गये हैं कि यह मेरी सेवाओं का मूल्य है। कुछ ने इस खबर का प्रचार किया महाराज मुझे यह अधिकार दे गये हैं कि राज्य के मन्त्रियों, जागीरदारों और अफ़सरों के साथ चाहे-जो-कुछ व्यवहार करके मुझे राज्य की व्यवस्था को ठीक रखना होगा।

इन अफ़वाहों का नतीजा और क्षेत्रों में क्या हुआ, यह तो मुझे पता नहीं, लेकिन ऐसा एक व्यक्ति था जिसके बारे में मुझें सदा आशंका रही और वह आशंका इस समय सत्य में परिवर्तित हो गई। यह व्यक्ति माणिक-सरदार था, जो महाराज का भतीजा था और इस कदर उग्र और उपद्रवी उसकी प्रकृति थी कि राज्य का बच्चा-बच्चा उससे परेशान था। न-जाने गणित के किस सिद्धांत के आधार पर उसने अपने दिमाग में इस खब्त को जगह दे डाली थी कि राज्य का वास्तविक

स्वामी वह है। जब गत महाराज गोद लिए गए, तभी से उसके उपद्रव और षड्यंत्र आरम्भ हो गए थे और उनके गद्दी पर बैठने के बाद तो खुल्लम-खुल्ला विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था। शुरू-शुरू में तो इसका विद्रोह तकरीवात में शरीक़ न होने, आगे-पीछे महाराज की अयोग्यता की कल्पित कहानियाँ कहने, अपनी ताकत और मर्दमी के राग गाने-आदि के रूप में प्रकट होने लगा, लेकिन जब महाराज ने अपनी शराफ़त और दरिया-दिली के कारण उसकी इन कमीनी हर्कतों पर दृष्टि-विपर्यय किया तो उसकी हिम्मत बढ़ती ही गई। महाराज के नोटिस में उसके तमाम उपद्रव आते रहते थे । और अकसर वह मुझसे इस सम्बन्ध में वार्तालाप किया करते थे। लेकिन उनका हृदय समुद्र था और साणिक सरदार के प्रति उनके मन में स्नेह भी था और आदर भी। इसीलिए उन्होंने उसकी कार्रवाहियों पर काफ़ी दिन ज़ब्त रक्खा। मुझे मंजूर करना चाहिए कि माणिक-सरदार की ज्यादतियों की वजह से मेरे मन में उसके प्रति सख़्त नफ़रत के भाव थे और मैंने बार-हा महाराज को यह राय दी कि वह उसके बारे में कड़ाई से काम लें। अगर्चे महाराज ने कभी किसी मामले में मेरी राय की अवहेलना नहीं की, लेकिन इस मामले को वह हमेशा यही कहकर टाल देते थे कि वक्त आने पर हरेक चीज़ ख़ुद ठीक हो जायेगी।

मुझे ज्ञात था कि बड़ी महारानी महाराज की असली मार्गदर्शिका हैं और माणिक-सरदार के बारे में महाराज की नरमी का कारण भी वही हैं। बड़ी महारानी एक तपस्विनी थी और उनके वचनों के लिए मेरे मन में भी बड़ी श्रद्धा थी। इसलिए जब मुझे ज्ञात हुआ कि उनकी सलाह यही है कि माणिक-सरदार के साथ कोई सख़्ती अमल में न लाई जाए तो मुझे यह सोचकर चुप रह जाना पड़ा कि बड़ी महारानी के स्वर में ईश्वर बोलते हैं, इसलिए उनकी सलाह ठीक है और मेरी ग़लत।

लेकिन एक दिन माणिक-सरदार की करतूतों की कुछ ऐसी भयंकर ख़बरें महाराज के पास पहुँचीं, जिन्हें सुनकर मेरे भी रोंगटे खड़े हो गए थे और महाराज तो क्रोध से अंगारा बन गए। उन्होंने मेरी मौजूदगी में ही ग़ुस्से से आग-बबूला होकर यह निश्चय कर डाला कि आज-ही माणिक-सरदार की सारी जागीर ज़ब्त कर ली जायगी और उसे रियासत-बदर

कर दिया जायगा। मैंने भी उनके इस निश्चय में कोई वाधा देने की कोशिश न की।

मैं निहायत बेचैनी से अगले सुबह यह प्रतीक्षा कर रहा था कि अब महाराज के निश्चय को अमल-दरामद होने का अवसर मिलता है। मैंने पुलिस और फ़ौज के महकमों को यह सूचना दे दी थी कि उन्हें किसी आकस्मिक परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। शहर के प्रत्येक नाके पर पहरा डबल कर दिया गया और पिछली सारी रात मुझे करवटें बदलते-बदलते ही बीती थी। दस बजे, ग्यारह बजे, बारह बजे और बारह बजे मुझे जो समाचार प्राप्त हुआ, उसने मुझे स्तम्भित कर दिया।

महाराज ने सहसा मेरी पेशी का हुक्म सादिर फ़रमाया और मुझे तुरन्त उनके रू-ब-रू हाज़िर होना पड़ा। वहाँ जाकर मैंने महाराज के अतिरिक्त माणिक-सरदार को भी बैठे पाया। महाराज की मौजूदगी में हम लोग ज़मीन पर ही बैठ सकते हैं, लेकिन उस समय माणिक-सरदार एक कुर्सी पर आसीन थे। महाराज के नज़दीक पहुँचते-पहुँचते मेरे कान में यह भनक पड़ चुकी थी कि महाराज ने माणिक-सरदार को मन्त्रि-मण्डल में प्रविष्ट करने का निश्चय कर लिया है और इसीलिए उनकी तलबी अपने हुज़ूर में की है। जब मैं पहुँचा तो महाराज ने मुझसे कहा कि उन्होंने माणिक-सरदार को मिनिस्टर-खास का पद सौंप दिया है और यह कि मुझे भी आइन्दा महाराज का हरेक ऑर्डर माणिक-सरदार के मार्फ़त ही प्राप्त हुआ करेगा।

मेरा पाँव तो जैसे जीते साँप पर पड़ गया! अपने जीवन में जो कुछ तरक़्क़ी मैंने की थी, सब महाराज और उनके पिताश्री के चरणों की वदौलत और पिछले कई साल के अर्से में मैं उनके स्वभाव का परिचय अच्छी तरह प्राप्त कर चुका था। लेकिन उनका यह निश्चय उनके स्वभाव के एक-दम विपरीत था।

मैंने महाराज का हुक्म सुना तो स्वभाव-वश झुककर उन्हें सलाम की, लेकिन फिर तुरन्त ही मेरी आँखें उनसे चार हो गईं। और मैंने आँखों-ही-आँखों में उन्हें उनकी आज्ञा के प्रति अपना मानसिक विद्रोह प्रकट किया।

लेकिन इसी क्षण-भर के दृष्टि-परिवर्तन में उनकी पलकें कुछ पूर्व-परिचित ढँग पर झपकीं और इस संकेत में मैंने उनके आन्तरिक भावों की अप्रत्यक्ष छाया पाई।

मैंने लम्बी साँस लेकर माणिक-सरदार की ओर देखा। उसकी आँखों में क्रूर विद्रूप नृत्य कर रहा था और उसने अप्रत्यक्ष मुस्कान के साथ मेरे अभिवादन का उत्तर दिया।

वह क्षण मेरे जीवन का सबसे दुःखद क्षण था!

महाराज की आज्ञा लेकर मैं उनके कक्ष से विदा हो गया। जब मैं बाहर आया, तो आँसू के जो दो बूँद मैंने तब तक ज़बरदस्ती रोके हुए थे, वह अनायास ही टपक पड़े और मेरे कलेजे से दुःख, वेदना और अपमान की एक आह निकल पड़ी।

उस दिन मैं ऑफ़िस में बैठा तो सही, लेकिन काम में मेरा दिल न लगा और ऑफ़िस के समय से पहले ही मैं उठकर मकान पर चला गया। मेरी पत्नी एक समझदार और सुशिक्षित गृहिणी हैं और मेरे जीवन का सबसे बड़ा सहारा रही हैं! मैं जाकर अपने पलँग पर पड़ा रहा और मैंने ईश्वर से उस दिन पहले-पहल यह प्रार्थना की कि ऐसे अपमान का सामना कराने से पहले उसे मेरे जीवन का अन्त कर देना चाहिए था। उसी दिन मुझे 'नौकरी' की यथार्थता और उसके गर्हित स्वरूप का ज्ञान हुआ और मैंने निश्चय कर लिया कि तुरन्त इस्तीफ़ा लिखकर महाराज की सेवा में भेज दूँ। मैं जीवन का कोई महत्वपूर्ण कार्य पत्नी से सलाह लिए बिना न करता था, लेकिन इस प्रश्न पर मैंने उनसे भी परामर्श करना उचित न समझा और पलँग से उठकर उन्मत्तों की नाईं इस्तीफ़ा लिख डाला। मैंने तय कर लिया था कि इस बारे में पत्नी से सलाह हर्गिज़ न लूँगा और तुरन्त इस्तीफ़ा महाराज की सेवा में भेज दूँगा।

लिहाज़ा मैंने इस्तीफ़ा लिखा, लिफ़ाफ़े में बन्द किया और नौकर के हाथ महाराज के ए० डी० सी०-इन्-वेटिंग को भेज दिया। मैं जानता था कि एक वालिये-मुल्क के साथ इस तरह का बर्ताव करना गुस्ताख़ी थी, लेकिन उन्माद की-सी उस मानसिक अवस्था में मैं बड़े-से-बड़ा ख़तरा उठाने को तैयार हो गया था।

जब नौकर लौट आया तो मेरी पत्नी ने आकर पूछा कि मैं क्यों अनमना हूँ और मैंने कहाँ क्या लिखकर भेजा था ?

मैंने सारा माजरा पत्नी को सुनाया और फूट-फूटकर रोने लगा। मैंने उनसे महाराज की आँख के उस अप्रत्यक्ष संकेत की बात भी कह दी, लेकिन साथ ही यह भी कह दिया कि मेरी दृष्टि में उस संकेत का विशेष मूल्य नहीं है।

मेरी पत्नी ने जब यह सारा समाचार सुना तो वह गम्भीर हो गईं और बहुत देर तक वह कुछ न बोलीं। उस समय तक मेरे पास इतना रुपया तो न था, जितना अब है, लेकिन फिर भी जीवन-निर्वाह के लायक दौलत मैंने एकत्रित कर ली थी और पत्नी की उदासी पर जब मैंने यह कहा कि हम सीधी-सादी ज़िन्दगी बसर करेंगे और ज़रूरत होगी तो कोई छोटा-मोटा व्यापार कर लेंगे, तो उन्होंने आँखों में आँसू भरकर एक बार मेरी ओर ताक दिया। जब मैंने उनके मन के भाव जानने की कोशिश की तो उन्होंने कहा—'स्वामी, मुझे इस तनख़्वाह और यश की चिन्ता नहीं है, मुझे चिन्ता है, आपकी प्रतिष्ठा और राज्य के भविष्य की। माणिक सरदार का मन्त्रि-मण्डल में प्रवेश हमारे मालिक और हमारे राज्य के भविष्य के लिए अत्यन्त भयावह घटना है और आपकी मौजूदगी उस उपद्रवी के कुचक्रों के सफल होने में बड़ी भारी बाधा बनकर रहती। इसीलिए मुझे इस्तीफ़ा देने में आपकी जल्दबाज़ी पसन्द नहीं आई।'

मेरी समझ में पत्नी की बात कुछ-कुछ आई। लेकिन अब तीर हाथ से निकल चुका था। इस्तीफ़ा महाराज के हाथ में पहुँच चुका था और अब निर्णय मेरे हाथ में न था।

लेकिन मैंने यह समझकर मन को सान्त्वना दी कि इस ग़ुलामी के बन्धन से छुटकारा पा जाना हो अब श्रेयस्कर है और राज्य के या राजा के भविष्य की चिन्ता या ज़िम्मेदारी मुझसे ज़्यादा खुद महाराज के सर पर है।

हम लोगों ने किसी प्रकार एक-दूसरे को समझा-बुझाकर समय बिताया। शाम हुई। मैंने 'शोफ़र' को मोटर तैयार करने का हुक्म दिया और हम दोनों ने सैर के लिए निकलने का निश्चय किया। मैंने सोचा—दिल बहलेगा और दिन-भर के मानसिक द्वन्द्व से कुछ देर के लिए छुटकारा

मिल जायगा।

अँधेरा होने लगा था। हम लोग बँगले से बाहर निकलकर मोटर में बैठने ही वाले थे कि आँधी की तरह एक मोटर हमारे निकट आ-खड़ी हुई। बाग़ीचे के लैम्पों की रोशनी में मैंने पहचाना कि वह मोटर स्वयं महाराज की थी और वे स्वयं तने-तनहा उसे हाँक रहे थे।

'हलो अमरदास!' कहकर महाराज मोटर से उतरे और मुझे से हाथ मिलाया।

मेरे मकान पर वह अनेक मर्तबा आ चुके थे। मेरी पत्नी ने उन्हें नमस्कार किया, जिसे सर झुकाकर उन्होंने ग्रहण किया।

'मुझे अफ़सोस है कि आपकी तफ़रीह के वक़्त मैंने बाधा दी।' महाराज ने मेरी पत्नी की ओर देखकर मुस्करा दिया और तब मेरा हाथ पकड़कर ड्राइंग-रूम में आ-बैठे।

और क़िस्सा मुख़्तसिर यह है, कि रात को दो बजे, मेरी आलमारी की पूरी एक बोतल शराब खत्म करके और मेरा इस्तीफ़ा मेरी जेब में धरकर वह राजमहल को लौट गये।

उस दिन मैंने पहचाना कि गत महाराज कितने महान् थे—और मेरे प्रति उनके क्या भाव थे।

रानी त्रिपुरी की कहानी

अगर मैं आपसे कहूँ कि जो भिखारी औरत मेरे राजमहल की तरफ़ आनेवाली सड़क पर बैठकर सुबह से शाम तक भीख माँगती है और दिन-भर में दो आने कमाकर अपने अन्धे, गन्दे गलित-नख-नयन पति को रूखी-सूखी रोटी खिलाकर ख़ुद आधे-पेट अपने मैले-कुचैले बिछौने में भर-नींद सो जाती है, और सुबह उठते ही फिर अपनी तपस्यामयी मुहीम पर निकल आती है, वह लाख दर्जे मुझसे ज़्यादे सौभाग्यशालिनी है, तो आप मेरी बात पर विश्वास करेंगे ? हर्गिज़ नहीं, क्योंकि आपकी दृष्टि में तो मैं महारानी हूँ। आपकी कल्पना तो मुझे उस व्यक्ति की हृदयस्वामिनी समझती है जो अपने लाखों प्रजाजन का, अपनी हज़ारों की सेना का, अपने बड़े-बड़े सामन्त-सरदारों का भाग्य-विधाता है। आप तो मेरे आगे-पीछे भागने वालों नौकर-चाकरों, प्यादे-सिपाहियों और गाजे-बाजों को देखते हैं। आपके हृदय में ईर्ष्या की कैसी भयानक हूक उठती होगी। आप ज़रूर महसूस करते होंगे कि मैं कैसी सौभाग्यशालिनी हूँ और आप ज़रूर चाहते होंगे कि दुनियाँ में मेरे-जैसी सौभाग्यशालिनी सब-कोई हों। मेरे क़दमों की खाक़ का भी आपकी नज़र में महत्व होगा—मेरी ज़बान से निकले हुए एक शब्द की भी आप बड़ी कीमत समझते होंगे, मेरे पान के थूक में भी आपको जवाहरात की राख दिखाई देती होगी। आप सोचते होंगे मैंने पिछले जन्म में बड़े भारी पुण्य किये हैं, जो मैं ऐसे वैभव-सम्पन्न राज्य की स्वामिनी हुई, जो मैं इतने बड़े राज्य की महारानी हुई—जिसके पैरों पर

दुनियाँ के सारे ऐश्वर्य लोटते हैं, जिसके इशारे पर हज़ारों सर तस्लीमख़म हो जाते हैं, जिसकी पुकार पर सैंकड़ों जानें क़ुर्बान हो जाने को तैयार हो जाती हैं।

लेकिन आप पूछिए मेरे इस बदनसीब दिल से, सूने दिमाग़ से, मेरी ह़ाहाकार करती हुई जवानी से, मेरी बुझी हुई आशाओं से ! मेरे दिल में सुबह से शाम तक अभिलाषाओं का जो ज्वार-भाटा उठता है, मेरे कलेजे में दिन और रात वेदना का जो हाहाकार मचता है, मेरी आँखों आगे वैवाहिक जीवन के जो गंगा-जमनी सुख अपनी झलक दिखा-दिखाकर लुप्त हो जाते हैं, उनका अहसास मेरे सिवा भला और कौन कर सकता है ?

अब तो वह बात पुरानी हो चुकी है और मेरी कोई भी कोशिश उन पर कारगर नहीं होती, जब शुरू-शुरू में मैं अपनी बेबसी से बिखर पड़ने को हुई, जब मेरे स्वामी के पतन की कहानियाँ गले हुए लोहे की तरह आ-आकर मेरे कानों में पड़ने लगीं, जब मेरी कौमार्य-जीवन की स्वाधीन भावना फटकर बाहर निकल पड़ने को हुई, तो मुझे तय करना पड़ा कि जान पर खेल कर भी मुझे स्वामी की बदकारियों में वैयक्तिक हस्तक्षेप करना पड़ेगा। उस घटना को आज तीस बरस के क़रीब बीत चुके हैं और मेरी गोद की यह कन्या उस समय एक वर्ष की थी। क्या आप सुनेंगे कि मैंने क्या किया ? आज वह बात पुरानी हो चुकी है और उसके बाद मेरी गति-विधियों पर क़ैद सी लग गई है और यदि इस पर भी मैं मौक़ा पाकर उनके बीच पहुँच जाती हूँ तो कोई नतीजा नहीं होता—सिर्फ़ मेरा अपमान होता है। लेकिन वह घटना सुनने योग्य है। सुनिए—

जब अपने कमरे की चार-दीवार में मेरा मन आत्म-हत्या करने की हद तक पहुँच चुका, तो एक दिन साहस करके मैं रात को नौ बजे केसर-बाग़ में पहुँच गई। यह केसर-बाग़ मेरे महल से आधी फ़र्लांग दूर है और बीच में कई पहरे पड़ते हैं। खुद दासियाँ जल्लाद की तरह मेरी गति-विधि पर नज़र रखती हैं। लेकिन उस दिन कोई त्यौहार था और समस्त दासियाँ त्यौहार की खुशी और व्यस्तता में परेशान थीं। मैं चुपचाप निकली और बचती-बचाती केसर महल के दरवाज़े पर पहुँची। वहाँ के पहरेदारों ने मुझे देखा और पहचाना और सबके-सब हैरान रह गए। किसी की हिम्मत न

पड़ी कि मुझे राके ! अलबत एकाध ने यह कोशिश ज़रूर की कि मुझसे आगे जाकर महाराज को खबर दे दें, लेकिन मेरी भृकुटि ने उनके पैर वहीं-के-वहीं बाँध दिए।

सीढ़ियाँ चढ़कर मैं केसर-महल के द्वार पर पहुँची। इस महल के बीचो-बीच एक सहन था और उस सहन में बे हिसाब फूलों के पौदों के बीच एक बड़ी-सी नीली छतरी बनी हुई थी। इसी छतरी के नीचे बैठकर मेरे स्वामी हाली मवालियों सहित नित्य शराब और औरतों के साथ रंग-रेलियाँ किया करते थे। मैंने ऊपर चढ़कर पहरेदारों को हुक्म दिया कि खबरदार, अगर किसी ने मेरा पीछा किया तो ! और तब मैं ज़ीना पार करती हुई नीली छतरी वाले चौक की तरफ़ पहुँच गई।

वहाँ खूब रोशनी हो रही थी और 'हा-हा-ही-ही' की आवाज़ों से आसमान गूँज रहा था।

नीली छतरी के नीचे दो-दो बालिश्त मोटे गद्दे बिछे हुए थे और गाव-तकियों के सहारे सामने ही मेरे स्वामी विराजमान थे। उनके आस-पास दो-तीन खूबसूरत औरतें वस्त्रों की अस्त-व्यस्त दशा में आसीन थीं। सामने ही महाराज के अन्तरंग ग़ुलाम नशे में बेहोश होते हुए मेरे स्वामी की हँसी के साथ-साथ हँस रहे थे। शराब की सुराहियाँ खुली हुई थीं और मेरे स्वामी की चेष्टा शराब की सुर्ख़ी से लाल-लाल हुई जा रही थी।

मैं ठिठक गई। जहाँ मैं खड़ी थी, वहाँ अँधेरा था—इस क़दर अँधेरा कि छतरी की गुल्लाल रोशनी में न्हाये हुए और शराब की सुर्ख़ी मे रँगे हुए मतवाले मुझे देख नहीं पा सकते थे। मेरा जी हुआ कि यदि हाथ में पिस्तौल हो तो मैं इन सब पापी कुत्तों को 'शूट' कर दूँ, जो मेरे स्वामी को गुनाह के इस नर्क की तरफ़ खींचे लिए जा रहे हैं। लेकिन मेरे पास हथियार न था और मैंने महसूस किया कि मैं अबला हूँ। मैंने बेबसी की नज़रों से एक बार अपने चारों तरफ़ देखा और तब पैर दबाकर मैं फूलों की एक ऐसी गुन्जान झाड़ी की आड़ में जा खड़ी हुई, जहाँ से मैं अपने स्वामी की सारी हरकतें देख सकती थी और उनके मुँह से निकला हुआ प्रत्येक शब्द सुन सकती थी।

"भई, इन्हें 'वेसलीन' दो—'वेसलीन' !" मेरे स्वामी हँसी से खिल-

पड़ते हुए अपनी दाईं बग़ल वाली स्त्री की ओर इशारा करके किसी से कह रहे थे—मुझे वाद में मालूम हुआ कि इस 'किसी' का नाम डॉक्टर 'रामलाल' था और वह मेरे स्वामी के वैयक्तिक चिकित्सक थे।

उस औरत ने गर्दन फिराकर डॉक्टर रामलाल को कोई ऐसा जवाव दिया, जिसे मैंने सुना नहीं। लेकिन सब-के-सब खिलखिला ज़रूर पड़े।

तव मेरे स्वामी ने उस औरत की तरफ़ देखा और कहा—'क्यों—ज़रूरत नहीं ?'

उस छलछन्दी नें दुनिया भर का छिनालपन वटोरकर मानो अपनी आँखों में भर लिया और कहा—'जी नहीं, सरकार !'

और फिर क़हक़हा पड़ा।

वही औरत मेरे स्वामी का गिलास शराव और सोडे से भर भर देती थी। उसके दाएँ तरफ़ गुलाव की एक झाड़ी में शायद कोई दूसरी औरत सोडें की शीशियाँ खोल खोलकर देती जाती थी। ए० डी० सी० लोग पी रहे थे, लेकिन कभी उनमें से एक-एक आदमी हटता था और झाड़ी की तरफ़ मुँह करके पूर्ण गिलास गटक जाता था। मैं इनमें से अधिकांश को पहचानती थी। मेरे स्वामी के वैयक्तिक स्टाफ़ में अधिकांश आदमी नौजवान हैं—उन्हें सिन-रसीदा आदमियों से नफ़रत-सी है। और उनके पतन का एक कारण यह भी है। अल्हड़ नौजवान, जिनमें से न किसी को तजुर्वा है, न अक़्ल, भला क्या उनकी सहायता कर सकते हैं और इतने बड़े राज्य के सञ्चालन में क्या उन्हें परामर्श दे सकते हैं ? इन्हीं लोगों की मण्डली में उनके समय का अधिकांश बीतता है और इसका क्या विष-फल उनके मस्तिष्क पर नहीं होता होगा ? मेरे स्वामी का पतन आज तो हद पार कर चुका है और दुनिया में कोई भी तो ऐसा व्यभिचार नहीं, जिसकी आदत उन्हें न हो, लेसकन जिस दिन की वात मैं कह रही हूँ, उस दिन भी औरत और लौंडों के प्रति उनकी असक्ति समान रूप धारण कर चुकी थी ! यही तो वे बदनसीब लोग हैं, जिनकी दाढ़ी-मूछें ज़वरदस्ती साफ़ करा दी गईं हैं, जिनके लिए ख़ास तरह के आकर्षक वस्त्रों की व्यवस्था की गई है और जिन्हें मेरे स्वामी की उचित-अनुचित इच्छाओं के सामने वलिदान के वकरों की तरह सर झुकाना पड़ता है। इनमें से कुछ लोग तो ऐसे ज़रूर हैं,

जिन्हें यहाँ के अलावा और कहीं ऐसे मज़े नसीव नहीं, लेकिन सभी ऐसे नहीं। कुछ तो हमारी रियासत के करोड़पति सरदारों की आँखों के तारे हैं और कुछ काफ़ी ऊँची शिक्षा प्राप्त और बारुसूख; लेकिन हमारे सरदारों की मनोवृत्ति परिस्थितियों की विषमता के कारण, इतनी विकृत हो चुकी है कि वह अपने उत्तराधिकारियों का भविष्य केवल इसी वात में सुरक्षित समझते हैं कि मेरे स्वामी की उन पर कृपा-दृष्टि बनी रहे। उनकी दृष्टि में मेरे स्वामी की आज्ञा ही उनके लिए उनके भाग्य की आज्ञा है और उन्हें बचपन से ही ऐसी तालीम दी जाती है कि मेरे स्वामी की इच्छाओं के सामने उनकी ग़ैरत, इज़्ज़त और उनका व्यक्तित्व तुच्छ है और इसी के परिणाम-स्वरूप उनका आत्म-सम्मान रसातल को चला जाता है।

कुछ देर तक उन लोगों की चुहलबाज़ियाँ चलती रहीं। शराब का दौर बराबर जारी था। रह-रहकर उन लोगों की सम्मिलित अट्टहास्यध्वनि से आकाश गूँज उठता था। जो औरत वहाँ थीं, वे गिनती में तीन थीं। सूरत-शक्ल से तीनों ही रण्डियाँ मालूम होती थीं। तीनों ही कमसिन और नख-सिख से सुन्दर थीं, लेकिन दुराचार, शराब और वेशर्मी की स्याही उनके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई देती थी।

सहसा मेरे स्वामी ने अपने एक ए० डी० सी० की तरफ़ देखा और वह इशारा समझकर आगे बढ़ा।

'बेगम !' कहकर उन्होंने दाएँ हाथ वाली सुन्दरी के गले में हाथ डाल दिया और उनके कान में कुछ फुसफुसाया।

उसने कुछ शर्माई-सी नज़रों से मेरे स्वामी की ओर देखा, लेकिन उन्होंने उसकी लाज पर मानों दृष्टि विपर्यय करके कहा—'जल्दी करो, जल्दी !'

वह मानों वेबसी के आलम में उठकर खड़ी हो गई और तब एक वे मालूम-सी अँगड़ाई लेकर उसने अपने शरीर की सारी करामात दिखाने की कोशिश की।

'जल्दी ! जल्दी !! जल्दी !!!' मेरे स्वामी ने चुटकी बजाते हुए कहा —'जल्दी।'

वह छल-छन्दी एक कदम आगे बढ़ी और उसने अपनी साड़ी उतारनी

शुरू कर दी।

मेरी हैरत का ठिकाना न रहा। हे मेरे राम ! क्या वह औरत नंगी हो जायगी ?

उसने अपनी साड़ी अलग कर दी और शरीर पर सिर्फ़ जम्फर और गुलावी रंग का 'अण्डर-वियर' रह गया।

'हाय मेरी जान, मार डाला !' मेरे स्वामी ने उसे इस रूप में देखकर बे-साख़्ता कह डाला और तब उसी दशा में उसका हाथ पकड़कर उन्होंने उसे अपनी गोद में डाल लिया !

'पहनिये, देखते क्या हैं !' सामने खड़े हुए बदनसीब निमूछिये ए० डी० सी० की तरफ़ ताककर मेरे स्वामी ने कहा—'उठाइये साड़ी।'

और उनका मतलब समझकर उनकी मण्डली के वे सारे बेवकूफ़ कह-क़हा मारकर हंस पड़े।

उसकी भला कहाँ ताब थी कि वह चूँ करता ? चुपके से साड़ी उठाई और पीछे हटा।

'हट जाइये, हट जाइये। सब लोग हट जाइये !' मेरे स्वामी ने सञ्जीदगी और मिले-जुले व्यंग में हुक्म दिया—'ज़रा आप तख़्लिये में जाकर साड़ी वदलेंगे। हट जाइये !'

सबने हटकर उसे झाड़ियों के पीछे जाने का रास्ता दे दिया। वह बेचारा गया और लौटा।

उस दु:खदायी परिस्थिति में भी मुझे हँसी आ गई, जब मैंने देखा कि वह गरीब अपनी पतलून और कोट के ऊपर साड़ी को लपेटकर लाल बुझक्कड़ बना-बनाया, सामने आ खड़ा हुआ है।

और उपस्थित मण्डली के तो हँसते-हँसते मानों पेट में बल पड़ गए। चारों रण्डियाँ भी हँसी के प्रवाह में झुक-झुककर जमीन से लगी जा रही थीं।

'हिश्त-पागल !' मेरे स्वामी ने हँसी का वेग रुकने पर कहा—'यह कोट-पतलून उतार ! चल जल्दी !—जल्दी !'

वह बेचारा अछता-पछताकर फिर वापस लौटा।

न जाने उन्हें क्या सूझा—कि उन्होंने कहा—'ऐ सुनो !'

वह ग़रीब वापस लौटा।

तब उन्होंने उस दायें हाथ वाली औरत से कहा—"अरे 'अण्डर-वियर' तो दे—इसके बग़ैर भी कहीं साड़ी पहनी जाती है ?"

'अण्डर-वियर ?' उसने एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर और लाज से लाल-लाल होते हुए कहा।

'हाँ-हाँ, दे—दे, जल्दी कर !'

और जब उसने बैठे-ही-बैठे और लाज से मानो ज़मीन में गड़ते-गड़ते अपना 'अण्डर-बियर' उतारकर ए० डी० सी० महाशय पर फेंक दिया, तो मैंने दोनों हाथों से अपनी आँखें ढाँप लीं।

और इसी हालत में उनकी यह आवाज़ मेरे कानों में पड़ी—'यह अकेली शर्मा रही है। तुम तीनों भी नंगी हो जाओ।'

माणिक सरदार की आत्म-कहानी

दुनिया मेरी निगाह में एक बहुत ही तुच्छ चीज़ है। क्या औरत, क्या मर्द—मेरी राय में—दुनिया के सभी लोग ज़लील, नालायक, पैसे पर जान देने वाले ओर कमीने हैं। मेरी राय में रुपया और ताक़त ऐसी चीज है, जिसके बल पर संसार की बड़ी-से-बड़ी आत्मा को ख़रीदा जा सकता है। अपना काम पड़ने पर भले ही मैं किसी के प्रति हमदर्दी दिखा दूँ, या उनसे हँसकर बोल लूँ या मान लीजिए, उसकी खुशामद भी कर लूँ, लेकिन उसके बाद मेरी नफ़रत उसी हद तक बरक़रार हो जाती है, जिस हद तक वह हर इन्सान के लिए मेरे जिगर में जगह किए हुए है। 'रहम' नाम का लफ़्ज़ मेरी 'डिक्शनरी' में नहीं है और मैं महसूस करता हूँ कि 'रहम' या तो पाखंडियों का एक हथकण्डा है और या उन इन्सानों की ज़िन्दगी का एक सहारा है, जिनकी ज़िन्दगी दुनिया के लिए बेकार है। जो आदमी रहम करता है, वह मेरी निगाह में घमण्डी और धूर्त है और जो रहम की भीख माँगता है, उसे पिस्तौल की गोली से उड़ा देना ही मुनासिब है। औरत की इज़्ज़त को मैं चुटकियों की चीज़ समझता हूँ और मेरा अहसास हैं कि औरत सिर्फ खाने और मसल देने की चीज़ है। जो लोग औरत को सर पर चढ़ाने की वकालत करते हैं और कहते है कि वह पुरुष की भागीदार है, स्वामिनी है, लक्ष्मी है, मैं उन्हें नपुंसक मानता हूँ। ऐसे लोग संसार में कभी ऊपर नहीं चढ़ सकते और कूप-मण्डूक की तरह जहाँ हैं, वहीं रह जाते हैं। मैं दुनिया को हिलाना चाहता हूँ और मेरे-जैसे लोगों की दृष्टि में औरत भी उसी तरह पुरुष की

दिलचस्पी का एक साधन है, जिस तरह दुनिया की दूसरी-दूसरी तफरीहें।

रुपये की मेरे पास कमी नहीं, लेकिन जो लोग महज इसलिए मुझसे रुपया लेना चाहते हैं कि मेरे पास रुपये की इफ़रात है, मैं उनके साथ इस क़दर फटकार और अपमान के साथ पेश आता हूँ कि वे जीवन में दोबारा मुझे अपना मुँह दिखाना गवारा नहीं करते। मौक़े आये और मौक़े आते रहते हैं, जब मैं लाखों रुपया देखते-देखते खर्च कर डालता हूँ, लेकिन तभी, जब मुझे उसके एवज़ में किसी चीज़ या किसी काम की तमन्ना होती है। भावुकता से तो मुझे नफ़रत है ही, लेकिन कन्वैंसिंग का भी मुझ पर कोई असर नहीं है। और 'ब्लैकमेल' तो मुझे अब तक कोई कर ही नहीं सका है। मैं जिस चीज़ का जितना मूल्य आँक दूँ, उससे आगे हर्गिज़ नहीं बढ़ता—चाहे दुनिया इधर-की-उधर हो जाय! मैं जिसका दुश्मन बन जाऊँ, उसके पीछे पड़ जाता हूँ और उसकी जड़ें पाताल तक से उखाड़कर फेंक देता हूँ, चाहे उस कोशिश में मेरी जान ही क्यों न चली जाय।

मेरी ज़िन्दगी में कमज़ोर लमहे आते हैं और अक्सर आते हैं, जबकि मुझे नीचा भी देखना पड़ता है और तबियत ऐसी घटनाओं के बाद क्रोध और बेबसी से परेशान होती है तो किसी बेकसूर को सजा देकर दिल की बेचैनी को दूर करता हूँ। मेरी राय में आदमी की मजबूती कायम रखने के लिए यह जरूरी है और इसी भावना से प्रेरित होकर दिये हुए दण्ड में कोई बुराई नहीं है।

मैं परले दर्जे का ऐयाश हूँ। बम्बई, कलकत्ता, आगरा आदि जगहों में से जहाँ कहीं, जब कभी मैं जाता हूँ, मैं घर की ही तरह दिल खोलकर ऐश करता हूँ। मैंने हर जाति, हर वर्ण, हर आयु और हर कैण्डे की औरत को चखने का मौक़ा पाया है और पाँच से लेकर पाँच हजार तक रात की तफ़रीह की फ़ीस अदा की हैं। औरतें हैं—जो मेरी दौलत से आज रईस बनी बैठी हैं और औरतें हैं, जो मेरी कोप-दृष्टि का शिकार बनकर आज दर-दर की भीख माँग रही हैं, जिनके घुटने तोड़ दिये गये हैं, आँखें फोड़ दी गईं हैं, नाक काट ली गई है, गालों का गोश्त तराश लिया गया है और जाने उनकी क्या-क्या दुर्गति कराई गई है। अपनी रियासत की तो सैकड़ों औरतों को इस जीवन में मैंने अनुगृहीत किया ही है और वे आज भी मेरी बेदाम

गुलाम हैं, लेकिन ब्रिटिश इण्डिया के भिन्न-भिन्न शहरों में भी मेरी अनेक आशनाएँ वसी हुई हैं। उनमें से कुछ तो आज भी मेरी मित्र हैं, कुछ मर-खप गई हैं, कुछ वतन छोड़कर चली गई हैं, कुछ अपनी छोटी बहनों, बेटियों और भतीजियों को मेरी नज़र करके अपने ताल्लुक़ात निभा रही हैं और कुछ ऐसी भी हैं, जिन्होंने मुझे चकमा देने की कोशिश की, जिसमें कुछ कामयाव हुईं और कुछ नाकामयाब !

एक क़िस्सा मुझे याद आ गया। गत महाराज ने मुझे नया-नया ही मिनिस्टर-खास नियुक्त किया था और किसी खास काम से कलकत्ते भेजा था। यों कलकत्ते मैं इससे पहले अनेक बार हो आया था, लेकिन इस बार मेरे ठाठ देखने ही लायक थे ! मेरे साथ नौकरों-चाकरों की क़रीव-क़रीव एक फ़ौज थी और था दिलबस्तगी का सारा सामान ! रास्ते-भर शराव के फौवारे छूटते गए और जश्न मनते गए। दो खूबसूरत, बेदाग़ लड़कियाँ मैं अपने साथ लेता गया था, जो छककर पीती थीं और दिल खोलकर हँसती थीं। जवानी की उमर, नया-नया अधिकार और रुपये की बेहिसाब इफ़रात —यह तीनों चीजें आदमी को जिस हद तक खुश रख सकती हैं, उसकी कल्पना आप कर लीजिए।

ग़र्जेकि कलकत्ता पहुँचे और वहाँ के सबसे बढ़िया होटल में अपने लिए पहले से ही सुरक्षित छ: कमरों में मैं अपने दल-बल के साथ ठहरा। इसी होटल में पहले भी ठहरता था; लेकिन उतनी शान-वान से नहीं। इस वार की लक़-दक़से जो देखता था, हैरान रह जाता था। लेकिन मैं आखिर मैं था। मैंने हर्गिज़ होटल के या दूसरे लोगों पर यह ज़ाहिर नहीं होने दिया कि उस सौभाग्य से मुझे कोई अतिरिक्त हर्ष है। पहले से अधिक गम्भीर और कम-गो बनकर मैं इस बार वहाँ टिका। साथ के बहुत-से मुसाफिरों ने मुझसे रब्त-जब्त बढ़ाने की कोशिश की, लेकिन मैंने नफरत से उनकी इस कार्यवाही को निरुत्साहित किया।

जो लोग ऐयाश हैं, वह जानते हैं कि ऐयाश की तवियत सीरी के लिए रोज़ नई औरत की ज़रूरत पड़ती है। मेरे साथ जो जो दो लड़कियाँ थीं, वे वेहद नाज़ुक, खूब-रू और तवियतदार थीं, लेकिन आखिर वे पुरानी थीं। मैंने पहले ही दिन शहर की बढ़िया-से-वढ़िया रंडी को मँगाने का

इन्तज़ाम किया। क्या कहने हैं उस औरत के! ज़ात की मुसलमान थी और क़ौम की बंगालिन। क्या उसका इखलाक़ था और क्या उसके नाज़-अन्दाज़ थे! मैंने उसे मुँह माँगा इनाम दिया और यह वादा देकर विदा किया कि एक बार उसे आलमनगर बुलाकर उसकी इज़्ज़त बढ़ाऊँगा।

जिन लोगों ने होटल में मुझसे रब्त-ज़ब्त बढ़ाने की कोशिश की, उनमें उत्तर-भारत के एक पंजाबी साहब भी थे, जो किसी बीमा-कम्पनी के मैनेजिंग-डाइरेक्टर थे और किसी व्यापार के सिलसिले में कलकत्ते आये हुए थे। 'डाइनिंग-रूम' में मेरी उनकी आँखें चार हुईं और खुद मुझे उन्होंने सलाम किया। सलाम का जवाब तो मैंने हाथ उठाकर दे दिया, लेकिन इसके बाद की उनकी तत्सम्बन्धी कोशिशों को मैंने हिकारत के साथ निरुत्साहित किया। यहाँ तक कि उन्हें दूर से आते देखकर ही मैंने मुँह फेरना शुरू कर दिया। अगले दिन तो नौबत यहाँ तक पहुँच गई कि मैंने अपना खाना भी अपने कमरे में मँगवा लिया और 'डाइनिंग-रूम' में जाकर उससे आँखें चार करने की ज़िल्लत गवारा करना पसन्द न किया।

उन हज़रत ने क्या तरकीब की कि अपना कमरा 'ट्रान्सफर' कराकर बिलकुल मेरे बराबरवाले कमरे पर अधिकार जमा लिया और निकलते-घुसते इस फिक्र में लग गए कि कब मौका मिले और कब मुझसे बातचीत का डौल लगे।

मैं देखता था और नफ़रत से हँसता था। ऐसे चपरकनाती अक्सर मुझे मिल जाया करते थे और कोशिश किया करते थे कि उनकी मुलाकात मेरे साथ गहरी हो जाय और मैं उनकी राय में ऐसा बेवकूफ था कि मुलाक़ात हुई और मैंने उनकी जेब नोटों से भरी! ऐसे लोगों के लिए मेरे दिल में सख्त हिक़ारत थी और मैं उनसे हत्तु लवसः बचता था और वह अगर जबरदस्ती मुझ पर गिरते थे तो उनका भारी अपमान करने से भी मैं बाज़ न आता था।

तो उस दिन शाम को मुझे ख़बर मिली कि कलकत्ते में किसी रशियन छोकरी की उन दिनों बड़ी धूम है और अच्छे-अच्छे नवाबज़ादे उसके दीदार के लिए कलेजा हाथ में लिए फिरते हैं। मैंने फौरन उसे तलब किया। मुझे ख्याल था कि उसका आना दूसरी-दूसरी रंडियों की ही तरह आसान है।

मुझे तो अपनी नई मर्यादा का घमण्ड था। लेकिन मुझे ताज्जुब हुआ, जब मुझे खबर लगी कि उसने होटल में आने से एकदम इंकार कर दिया है। इस होटल में आमतौर पर बाजारू औरतों को इस तरह आने या बुलाने की इजाज़त न थी, लेकिन पैसा दुनियाँ के समस्त नियमों को काटने में समर्थ है। लिहाजा मुझे उसकी खुली सहूलियत थी और जिन औरतों को इस सहूलियत का उपयोग करने का मौका पड़ जाता था, वह अपना अहोभाग्य माना करती थीं।

एक मर्तबा तो मैं सकते के आलम में आ गया, परन्तु फिर मेरी उद्दंडता मानो फूटकर बाहर निकल आई। मैंने डटकर शराब पी और दिल खोल-कर अपने साथ की लड़कियों को पिलाई। लेकिन ज्यों-ज्यों शराब की मस्ती बढ़ी, इश्क़ की तपिश भी बढ़ती ही गई और ग्यारह बजते-बजते मैं बेताब हो गया।

मैंने अपने आदमी को फिर दौड़ाया और कहा किसी भी शर्त पर उसे होटल में लाया जाय। उस ग़रीब को क्या इन्कार था—दौड़ा हुआ गया और क़रीब घण्टे-भर में लौटकर इत्तला दी कि वह इस शर्त पर आने को तैयार है कि उसकी फ़ीस होटल में घुसने के पहले उसे अदा कर दी जाय।

मैं कुछ शशो-पंज में पड़ा। सौ 'गिनी' का मामला था! अपने आदमी की परख पर मुझे एतकाद न था और खुद बग़ैर देखे कैसे इतनी बड़ी रकम चुका सकता था? उधर यह खींच और इधर यह इज्तराबी! सोच-विचार कर मैंने अपने आदमी को समझा दिया कि किसी तरह झाँसा देकर उसे मेरे कमरे तक ले आया जाय, फिर मैं देख लूँगा।

रियासतों में इस तरह का काम करनेवाले लोग इन दन्दफन्दों में बड़े उस्ताद होते हैं—उसने दस-दस रुपये के नोट मुझसे लिए और चला गया। और मेरी खुशी का ठिकाना न रहा, जब आधा घण्टा बाद निहायत क़ीमती और खुशनुमा पोशाक में मल-बूस वह औरत झलर-मलर करती हुई मेरे कमरे में आ गई। मेरा वह आदमी इशारा पाकर हट गया।

मैंने नशीली आँखों से उसके जोबन का मूल्य आँकने की कोशिश की। उमर उसकी पच्चीस बरस की होगी और एक बार सर से पैर तक देखकर मैंने पाया कि सौ 'गिनी' रात की कोई बात इसमें नहीं है। मैंने बम्बई और

कलकत्ते में इससे पहले भी अनेक विदेशी रण्डियों से भेंट की थी, लेकिन पचास-सौ रुपया से ज़्यादा देने की ज़रूरत न पड़ी थी। इसकी तारीफ़ सुनकर खयाल हुआ कि ज़रूर कुछ खास बात होगी। लेकिन इस वक्त जो देखा तो चीज़ जँची नहीं।

मैंने अधरूखे ढंग से दो-तीन मिनट उसके साथ बात की और तब अपने आदमी को आवाज़ देकर हुक्म दिया कि वह उसे उसके घर पर छोड़ आये। मैं यह हुक्म देना भी नहीं भूला कि उसकी तकलीफ़ के एवज़ में उसे दस रुपये का एक नोट मेरी तरफ से इनाम दिया जावे।

लेकिन मुझे चौंकना पड़ा, जब मेरे इशारे पर भी वह औरत उठी नहीं और घूर-घूरकर मेरी तरफ़ ताकती रही। मैंने माथे पर तेवर डालकर पूछा—'क्या है ?'

उसने मेरे तेवरों से ज़्यादे ज़हरीले तेवर डालकर जवाब दिया—'मेरी फ़ीस अदा की जाय !'

मैंने पूछा—'कैसी फ़ीस ?'

उसने कहा—'मुझे यह यक़ीन दिलाया गया था कि पहुँचते ही फ़ीस मिल जायगी !'

'लेकिन मैंने तो आपको स्पर्श भी नहीं किया !'

'इससे क्या ?—यह आपकी मर्जी है ! आप चाहें तो मैं आज की रात आपकी इच्छा पर हूँ, न चाहें तो मेरी फ़ीस दी जाय; मैं जाती हूँ।'

'मैं आपके आने-जाने का खर्चा दे रहा हूँ, मुझे आप पसन्द नहीं आईं।'

उसने ज़रा तेज़ आवाज़ में कहा—'मैं यह सब गुण्डई नहीं जानती, मैं अपनी फ़ीस चाहती हूँ।'

मेरे कान खड़े हुए। परदेश का मामला और होटल की जगह ! मुझे सहूलियत ज़रूर दे दी गई थी, लेकिन खुल्लम-खुल्ला होटल को बदनाम करने की इजाज़त हर्गिज न थी। पास के ही कमरे में वह हज़रत बीमा-कम्पनी के डायरेक्टर विराजमान थे। मैंने ओठों पर उँगली धर उसे खामोश रहने का इशारा किया।

शायद वह परिस्थिति की विषमता और मेरी कमज़ोरी को भाँप गई

और इस बार उसके स्वर में और भी अधिक तीव्रता थी—'क्या तुम एक शरीफ़ बदमाश बनकर मुझे लूटना चाहते हो ?'

मेरे पैर-तले की ज़मीन निकल गई और मेरी समझ में न आया कि मैंने उसे किस तरफ़ से लूटने की कोशिश की।

'नहीं-नहीं, हर्गिज़ नहीं,' मेरे मुँह से सिवा इसके और कुछ न निकल सका।

'क्यों नहीं, तुमने धोखा देकर मुझे मेरी मर्ज़ी के खिलाफ अपने होटल में बुला लिया और अब मेरा मेहन्ताना हज़्म करना चाहते हो।'

मैंने स्वर दबाकर कहा—'ख़ुदा के लिए चीखो मत, लोग जग जायेंगे।'

'तो शरीफ आदमी की तरह मेरी फीस अदा कर दीजिए और मुझे मेरे बँगले पर पहुँचा दीजिए।'

मैंने मनीबेग खोला और बड़ी शान से सौ रुपये का एक नोट उसके हाथ पर धर दिया।

और नोट क्या धरा, जैसे चिनगारी धर दी। उस ने नोट उठाकर फर्श पर फेंक दिया और उसे हिकारत से अपने जूते-तले मसलती हुई बोली, 'क्या तुम मुझे भिखारिन समझते हो ? मैं 'ज़ार' की पोती हूँ !'

मेरे शरीर में सन्नाहट छा गई। लेकिन सम्भलकर मैंने अपने होश-हवास दुरुस्त किये और माथे पर बल डालकर कहा—'याद रक्खो, मैं अभी तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूंगा।'

वह फौरन सीधी तनकर खड़ी हो गई और कहने लगी—'चलो, मैं अभी तैयार हूँ। देखती हूँ तुम किस तरह मेरी फ़ीस हज़म कर जाते हो !' मेरे माथे पर उस जाड़े की रात में भी पसीना आ गया और निहायत बेचैनी के साथ मैं एक-दो बार कमरे में इधर-उधर घूमा।

और सारा आगा-पीछा सोचकर आखिर कहा—'मुनासिब है कि हम लोग सुलह कर लें !'

उसने तुनककर जवाब दिया—'कैसी सुलह ? मैं अपना मेहन्ताना चाहती हूँ !'

कमरे में वह थी और मैं था। मेरे नौकर-चाकर और वह दोनों

लड़कियाँ दूसरे-दूसरे कमरों में थी। मैंने मुलायम होकर कहा—'मुझे इसका बड़ा अफ़सोस है कि मेरे आदमी ने आपको तकलीफ़ दी, लेकिन मेरा उसमें कोई क़सूर न था। वेहतर है कि यह नोट आप मंजूर फ़रमावें और फ़िलहाल आप तशरीफ़ ले जायें। मैं जिस रियासत का दीवान हूँ, वहाँ आपको किसी मौके पर आमन्त्रित करूँगा और गहरा फ़ायदा करा दूंगा।

लेकिन उस छलछन्दी पर यह रंग भी न चढ़ा। मैंने धीरे-धीरे रक़म बढ़ानी शुरू की। सौ से दौ सौं हुए, दो सौ से चार सौ, फिर क्रमशः पाँच सौ तक मामला पहुँच गया। लेकिन वह थी कि जुम्बिश न लेती थी। रात के तीन वज गये और मेरा सारा नशा हिरन हो गया।

और जब उसने एक मर्तवा खूब ज़ोर से चीखकर रोने का 'रिहर्सल' किया तो मेरे शरीर का खून सूख गया और मेरे हाथ उसकी माँग की रक़म का चेक बनाने की तरफ़ अकस्मात ही वढ़ गये।

सहसा किसी ने मेरे दरवाज़े पर दस्तक दी। मैंने समझा कोई होटल का आदमी है। आवाज़ दी—'कौन है ?'

उसने मीठी आवाज़ में जवाव दिवा—'दोस्त !'

मैंने आगे बढ़कर दरवाज़ा जरा-सा खोला और झिरी में से झांककर देखा तो वही पड़ौसी, बीमा-कम्पनी के पंजावी मैनेजिंग डाइरेक्टर थे।

डूबते को तिनके का सहारा-सा मिला। उन्होंने पूछा—'क्या माजरा है ?'

मैंने यथा-साध्य संयत स्वर में कहा—'यह औरत मुझे लूटना चाहती है !'

उसने सारा मामला भाँप लिया। मुस्कराकर पूछा—'अभी लेटे तो नहीं ?'

'नहीं वावा, मैंने तो उसे 'अप्रूव' ही नहीं किया।'

'क्या माँगती है ?'

'सौ गिनी !'

'आप क्या देने को तैयार हैं ?'

मैंने कुछ सोचकर जवाव दिया—'कुछ नहीं, मैं तो कुछ नहीं देना चाहता, मगर वहलाने की कोशिश कर रहा हूँ।'

'यह बात है !'

मैंने राजनीति से काम लिया और मोहब्बत से कहा—'क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं ?'

'ज़रूर !' कहकर उसने कुछ सोचते हुए सर हिलाया।

मैं समझता था कि पंजाबी लोग बड़े काइयाँ होते हैं; ज़रूर कुछ-न-कुछ तरकीब निकालेगा और निकालेगा इसलिए कि उसे मुझसे कुछ-न-कुछ गर्ज़ है ! फ़िलहाल तो अपना काम निकालना है, जब उसका मतलब आयेगा तो देखूँगा। /

उसने मुझसे कहा कि मैं उसके कमरे में जाकर बैठूँ। मैंने ऐसा ही किया और वह मेरे कमरे में घुस गया।

क़रीब आध घण्टे तक वहीं बैठा रहा और बराबर के मेरे कमरे से उन लोगों की बातचीत की स्पष्ट ध्वनि आती रही और इसके बाद मेरे आश्चर्य की हद न रही, जब वे दोनों दरवाज़ा खोलकर मेरे सामने आ खड़े हुए और उस छलछन्दी ने हाथ आगे बढ़ाकर प्यार-भरे स्वर में कहा—'अच्छा, अब मैं जाती हूँ; उम्मीद है, आप आपने वायदे को याद रक्खेंगे।···यह मेरा कार्ड है !'

मैंने अपने पंजाबी पड़ोसी की ओर देखा और उसका इशारा समझकर कार्ड हाथ में लेते हुए कहा—'ज़रूर ! ज़रूर !!'

और वह नीचे तक जाकर उसे छोड़ आया।

मुझे उम्मीद थी कि वह सौ रुपये का नोट ले गई होगी; बाकी रुपया सब मेरे पास मनीबैग में था। लेकिन मैंने देखा कि वह नोट ज्यों-का-त्यों मुड़ा-मुड़ाया, जहाँ-का-तहाँ पड़ा था। मेरे मन में क्षण-भर के लिए उस पंजाबी के प्रति कृतज्ञता का भाव उत्पन्न हुआ और उसके बाद तुरन्त ही यह भावना उदित हुई कि कहीं मिली-भगत का मामला तो न था !

इतने में वह आ गए। कहने लगे—'मुबारक' !

मैंने चेहरे की घबराहट छिपाकर पूछा—'कैसे पीछा छुड़ाया ?'

उसने कहा—'अब यह जानकर क्या कीजिएगा; खुदा का शुक्र कीजिये कि ऐसी खतरनाक औरत के पंजे से निकल गये।'

मैंने पूछा—'क्या इतनी खतरनाक है ?'

'वेशक, उसने दुनिया-भर में तिजारत की है और वड़े-से-वड़े जौहरियों और पारखियों का शिकार खेला है।'

मैं हैरान रह गया। पूछा—'लेकिन आपने कैसे उसे कब्जे में किया?'

'वताऊँ?'

'जी हाँ!'

'किसी से कहिएगा तो नहीं?'

'हर्गिज़ नहीं!'

'वह रूस की एक जासूस है और मैं उसका यह भेद जानता हूँ।'

वह तो अपने कमरे में चले गए और मुझे रात-भर इसी विचार में नींद नहीं आई कि उनकी बात सच थी या सब मिली-भगत का गोरख-धंधा था, जो मुझसे परिचय प्राप्त करने और गहरा फ़ायदा उठाने के लिए इन पंजावी महाशय ने खेला हो।

लेकिन वक्त ने मुझे बता दिया कि मेरा शक वेकार था। हुआ करो, मेरा फ़र्ज़ तो यही है कि सारी दुनिया पर शक करूँ—तभी तो दुनिया की ठगाई से वच सकता हूँ।

हिज़-हाइनेस की आत्म-कहानी

बम्बई की वह गोरी रात-भर तफ़रीह कर गई और चली गई। और मैं, उसकी उस बात को सब पहलुओं से सोचता-विचारता, रात-भर के ऐश की खुमारी में लहालोट होता हुआ बैठा रह गया।

क्या शमीम वास्तव में इतनी महान् है? वह आखिर एक रण्डी है और सिनेमा की एक्ट्रेस भी। क्या रण्डी कभी इतना त्याग करने की कल्पना कर सकती है? क्या उसके हृदय में मेरी महारानी के लिए इतनी हमदर्दी है? क्या वह एक बे-जान-पहचान की औरत के लिए ऐसे बड़प्पन-भरे जज़्बात रख सकती है? मैंने मन-ही-मन उसका अभिनन्दन किया।

मैं राजा हूँ और मुझे घुट्टी में शक और शुबहा घोलकर पिलाया जाता है। मैं जिस वातावरण में पला हूँ, उसमें विश्वास और नेकी नाम की चीजें पागलों की कल्पनाएँ और बेवकूफों की अनुभूतियाँ समझी जाती हैं। लेकिन मोहब्बत की आग में शक और शुबहा पिघलकर पानी बन जाता है। मैं कल्पना भी न कर सका कि उस भोली-भाली शमीम की बात में किसी तरह का छल-कपट छिपा हुआ था।

उसके बाद वह फिर आई और फिर आई और फिर आई। मैंने फिर शराब पी, उसे पिलाई और ख़ुश हो-होकर उसके साथ ऐश किया। लेकिन अपना वह प्रस्ताव दोबारा उसके सामने दोहराने की मेरी हिम्मत न पड़ी। मैं कहूँ कि—उसकी खूबसूरती में एक अजब रुआब था, जिसने मुझे, एक राजा को, ऐसे राजा को जिसके इशारे पर हज़ारों सर तस्लीम-ख़म हो

जाते हैं—भी स्तम्भित कर दिया था।

वह आती थी और चली जाती थी और उस ज़ालिम में न-जाने क्या मोहिनी थी, कि मेरी दिलचस्पी में हर बार कुछ-न-कुछ इजाफ़ा करके ही जाती थी।

लेकिन इस सारी ऐयाशी, इस उच्छृंखलता और वेहोशी की तह में न-जाने वह क्या चीज़ थी, जो रह-रह-कर मेरे कलेजे के सारे पर्दे फाड़कर बाहर निकल पड़ने को होती थी। वह क्या मनोभाव थे, जो शराब की वेहोशी और मस्ती और खुमार के आख़िर में मेरे मन और मस्तिष्क को घेर लेते थे और मुझे कभी-कभी इस क़दर अनमना और दुःखी बना देते थे कि मुझे फिर शराब और औरत की मदद की ज़रूरत पड़ती थी।

आख़िर यह ज़िन्दगी क्या है। क्या सिर्फ़ वक्त गुजारने और मर जाने, शराब पीने और पिलाने, व्यभिचार के सनसनी-भरे काण्ड रचने या रचाने, औरत को खेलने और खाने की चीज़ समझने और समझने देने, 'मूड' की तरंग में भले-बुरे का विचार किये विना होनी-अनहोनी हर्कतें करने और करने देने, ज़रूरत के वक्त घबराकर परेशान हो जाने और जरूरत निकल जाने पर अकड़कर सीना तानते हुए चलने; दुनिया को नफ़रत और ईर्ष्या का शिकार वनने और दुनियाँ-भर को ज़लील करने के सपने देखने के लिए ही मैं पैदा हुआ हूँ? मैंने वचपन में हिन्दुओं के और दीगर मज़हबों के धर्म-शास्त्र का कुछ अध्ययन किया था। सभी मज़हबों के धर्म-शास्त्र अपने जाहिरा भेद के बावजूद यह उपदेश देते हैं कि इन्सानी चोला एक अलभ्य चीज़ है; एक ऐसी चीज़, जहाँ से खुदा तक पहुँचने का रास्ता सबसे नज़दीक हो जाता है। और खुदा के पास पहुँचने के रास्ते पर आने के लिए प्रकृति आत्मा को इन्सान बनाती है। गोया इन्सानी ज़िन्दगी एक सुनहरा मौक़ा है, जिसे एक बार खो देने के बाद आत्मा न-जाने कितने युगों के लिए फिर गन्दगी के दौरे में पड़ जाता है। सभी धर्म-शास्त्रों का यह उपदेश था कि इन्सान की ज़िन्दगी एक इम्तहान है और जो थोड़े-से साल हमें इस इम्तहान को पास करने के लिए मिलते हैं, उसका एक-एक क्षण अमूल्य है; हम चाहें तो इन क्षणों को वर्बाद कर सकते हैं और हम चाहें तो उनकी सदुपयोग कर सकते हैं। क्या मैं उन क्षणों का सदुपयोग कर रहा हूँ?

जब से ऐयाशी के इस दौर-दौरे का प्रकोप मुझ पर हुआ, मैंने धर्म-शास्त्रों की इन बातों पर कभी ध्यान देने की ज़रूरत महसूस न की थी। लेकिन अब, जबकि औरत और शराब के इस दरिया में मैं ग़रक़ाब हो चुका हूँ, और महसूस करता हूँ, कि इससे निकलने का कोई उपाय बाकी नहीं रहा है तो मुझे रह-रहकर बचपन के संस्कारों का वह उभाड़ मन के एक कोने में महसूस होता है। मैं महसूस करता हूँ कि धर्म-शास्त्रों में वर्णित सतयुग के राजाओं की तरह मैं नहीं रह सकता। पर मेरा दिल यह कहता है कि राजा होने पर भी मुझे हर्गिज़ यह अधिकार नहीं है कि मैं अपने ऐमालों में शोहदापन आने दूँ। मैंने माना कि मेरे दूसरे-दूसरे भाई मुझसे भी पतित हैं, लेकिन यह ऐसी वजह नहीं कि मैं खुद भी अपने-आपको भूल जाऊँ। मैं भी आख़िर उसी तरह का मनुष्य हूँ, जैसा मेरे राज्य का कोई नाचीज़ मज़दूर। उसको भी मेरी तरह हाथ, पैर, आँख, नाक, मुँह, जीभ, दिल, दिमाग़—सभी कुछ मौजूद हैं। और ईश्वर हर्गिज़-हर्गिज़ इतना क्रूर नहीं हो सकता, कि मनुष्य-मनुष्य में इस हद तक समानता का अस्तित्व रखकर भी वह मनुष्य-मनुष्य की लौकिक स्थिति में इस क़दर अन्तर और क़दर विषमता पैदा कर दे। बेशक, उसने एक आदमी को भंगी के घर पैदा किया और दूसरे को राजा के। बेशक, राजा को प्रजा पर हुक्मरानी करने का एक हक़ है और भंगी को प्रजा का मैला साफ़ करना चाहिए। लेकिन ज़रूर ही राजा पर कुछ ऐसी ज़िम्मेदारियाँ हैं, कुछ ऐसी कठिनाइयाँ हैं, कुछ ऐसी कर्त्तव्य-भावनाएँ हैं, जिनकी तुलना में उसका मान, वैभव, ऐश्वर्य और अधिकार उसे सर्वसाधारण की सेवा करनेवाले भंगी के बराबर ला बैठाता है। भंगी का हक है वह दिन-भर लोगों का पाख़ाना साफ़ करता रहे और उसके बाद अच्छे कपड़े पहनकर आज़ादी के तराने गाता हुआ चाहे जहाँ फिरे, लेकिन राजा हर वक़्त राजा है। उसे कोई हक़ नहीं कि वह लाखों प्राणियों के झुके हुए सरों पर नज़र डालकर गौरवान्वित भी हो और फिर अकेले में ऐसी हर्कतें करे, जिसे करने का हक़ सिर्फ साधारण प्रजा-जन को ही प्राप्त है।

लेकिन मेरी इन भावनाओं में कोई आदमी किसी सुन्दरी का कोई आकर्षक समाचार लाकर ख़लल डाल देता है, या मेरी ख़ूबसूरत परि-

चारिका अपने रोज़ाना के अदले-बदले भड़कीले वस्त्रों में और अपने मुलायम हाथों में शराब का पैक लगाकर विघ्न मचा देती है, या कोई परिचित दामिनी नये तरह के वस्त्रों में सजी-सजाई, आकर तूफ़ान खड़ा कर देती है और फिर हफ़्तों तक इन विचारों को उभड़ने का अवसर नहीं मिल पाता।

मैं बम्बई से लौटकर अपनी राजधानी चला आया। मैंने सोचा काम की ज़्यादिती और ज़िम्मेदारियों का बोझ शायद दुराचार की तरफ़ बढ़ती हुई मेरी प्रवृत्ति पर कुछ रोकथाम कर सके। आकर मैं अपनी रानी से मिला। कोशिश की कि उजड़े हुए दिल फिर से बस जायें। लेकिन दिलों की दुनियाँ अजीब है। मेरी रानी ने मेरा यह रुख देखा तो बहुत प्रसन्न हुई। मगर बम्बई की गोरी की वह भड़क अब उसमें कहाँ थी? उस बेचारी ने अपने सूखे हुए दिल को हँसी के फ़व्वारों से सींचने की कोशिश की, बीते दिनों के उस सौभाग्य को अकस्मात् लौटा हुआ देखकर अपना धन्य भाग्य माना, चेहरे की झुर्रियाँ दूर करने के लिए दुनिया-भर के पाउडर और पोमेड मँगाकर चुपड़ डाले, लेकिन वह आखिर गृहस्थिन थी और रानी थी और दुखिया थी। दुनियाँ की कोई ताकत उसकी खुश्क सुन्दरता को हरा-भरा न कर सकती थी। उस ग़रीब ने अपनी कीमती-से-कीमती पोशाकें निकालकर पहनी, मेरे मनोरंजन के लिए अपना आपा तक भुलाने की कोशिश की, लेकिन मैं था कि रह-रहकर उसकी तरफ़ देखता था और हसरत की आहें भरता था। हाय, उसके कुछ ही बरस पहले के वे रसीले दिन!

मेरा जी काम में न लगता था। नींद में रह-रहकर चौंक उठता था। दिन-भर आँखें किसी को खोजती रहती थीं। रोज़ शराब के दरिया बहते थे, लेकिन नशे का खुमार उतरते ही मेरे सामने शमीम की वह भोली-भाली सूरत आ खड़ी होती थी।

आखिर मैंने प्रजा की निन्दा की पर्वाह छोड़कर और अपनी नेकनामी को बालाए-ताक रखकर एक दिन भास्कर को हुक्म दिया कि शमीम को बम्बई से बुलाया जाय।

भास्करदेव की आत्म-कहानी

कभी-कभी तो हिज़ हाइनेस की बातें और हरकतें इतनी गर्हित हो उठती हैं कि देख-देखकर तबियत नफ़रत से बेकाबू होने लगती है—मगर पेट का डर मजबूर किए रहता है। लेकिन कभी-कभी वे ऐसी बातें मुँह से कह बैठते हैं, जो आम तौर पर राजा-महाराजाओं और रईसों-अमीरों के मुँह से सुनने को नहीं मिलतीं और दिनों-रात ऐश-परस्ती में मदहोश आदमी के मुँह पर जो बातें एकदम अनहोनी लगती हैं। आप ही अन्दाज़ा कीजिए, कि शराब का जाम सामने धरकर और सुन्दरियों को बग़ल में बैठाकर अगर कोई राजा लोक-परलोक और पाप-पुण्य की बातें करे तो कितना आश्चर्य सुनने वालों को होगा ! हम लोग उनकी इन दूसरी तरह की बातों को सुन-सुनकर यह समझने लगे हैं कि उनके दिमाग़ का कोई पेंच ढीला है और इसीलिए कभी-कभी उन्हें यह दौरा हो जाता है।

मैंने अक्सर इस बात पर विचार किया है कि हिज हाइनेस के दुश्मनों की तादाद दिनों-दिन बढ़ती क्यों जा रही है—और मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इसका कारण उनका अविवेक और उनकी जल्दबाजी है। मैं अक्सर सोचा करता हूँ कि क्या हिन्दुस्तान के दूसरे-दूसरे नरेश वह तमाम हर्कतें नहीं करते, जो कि हिज़ हाइनेस करते हैं, लेकिन उनके कारनामों पर अंगुश्तनुमाई करने की हिम्मत किसी की नहीं होती; जब कि हमारे महाराज की हर्कतों की चर्चा देश-भर में नफ़रत के साथ होती है। मेरा यह ख़्याल है कि अगर हमारे महाराज जरा ज़्यादे समझदारी से काम लें,

शराव कम पियें और ज़बान पर काबू रक्खें तो कोई वजह नहीं कि उनकी तफ़रीह की कहानियाँ ढंकी-दवी न रह जावें, लेकिन उन्हें न जाने क्या मर्ज है कि वे अपनी हर्कतों को छुपी रखने की उतनी परवाह नहीं करना चाहते, जितनी एक वालिये-मुल्क को करनी चाहिए। वम्बई, कलकत्ता और दिल्ली में रियासत के नम्बर की मोटर में मामूली बाज़ारी रण्डियों को बैठाये-वैठाये घूमना, सिनेमा-अभिनेत्रियों के साथ सिनेमा के 'वॉक्सेज' में जा बैठना, होटलों के कमरों में आवारा विलायती पुतलियों के साथ 'शेम्पेन' के सुरूर में 'हाहा-हुहू' करना तो उनके लिए साधारण-सी बात है !

मेरी क्या मजाल जो उनकी हर्कतों पर उन्हें टोकूं ? और मुझे ग़र्ज क्या पड़ी कि मैं खाँ-म-खाँ उनके रास्ते में पड़कर अपना भविष्य बर्बाद करूँ ? मुझे तो अपने हलवे-माँडे और अपनी इज़्ज़त-हुर्मत से मतलब है। मेरी क़ावलियत ही क्या और मेरा दिमाग ही क्या—लेकिन मैं आज सल्तनत की नाक का बाल बना हुआ हूँ, अगर किसी दिन हिज़ हाइनेस ने नाराज़ होकर निकाल दिया तो किसी दफ़्तर में तीस रुपये महीने की नौकरी भी न मिलेगी। यहाँ डेढ़ सौ तो तनख़्वाह मिलती है, रोटी, कपड़ा और शराब महल के भण्डारे से मिल जाते हैं। और रिश्वत में जो आमदनी हो जाती है, उसकी तफ़सील आपको हर्गिज न बताऊँगा। न, यह बात नहीं, मैं मानता हूँ कि अपना राज़ आपको बताने का मैं वादा कर चुका हूँ, लेकिन जिस राज़ के साथ दूसरे आदमियों का ताल्लुक हो, उसे भला कैसे आप पर जाहिर कर सकता हूँ।

बहरहाल, जिक्र इस वक्त हिज़ हाइनेस और उनके दुश्मनों का था। हालत यहाँ तक पहुँच गई है कि उनके 'पर्सनल स्टाफ' तक में—मेरे अलावः—सब उनसे नफ़रत करते हैं और मुँह फेर-फेरकर अक्सर उनकी हर्कतों पर गुस्सा जाहिर करते हैं। सच पूछिये तो इसमें उन बेचारों का कोई अपराध नहीं है; यह सब हिज़ हाइनेस की अपनी हर्कतों का नतीजा है। मुझ में अगर हद दर्जे की बर्दाश्त न होती और मेरे सर पर बाप की राय न होती तो अब तक मैं भी उनका दुश्मन हो चुका होता। लेकिन मैं···

आपको मिसाल के तौर एक घटना का विवरण सुनाता हूँ।

मि० भान नाम के एक काश्मीरी पण्डित भी हिज़ हाइनेस के 'पर्सनल स्टॉफ़' में पल रहे थे। निहायत खूबसूरत और निहायत क़द्दावर जवान थे, लेकिन बेचारे खूबसूरत बीवी और उसकी फैशनपरस्ती से मजबूर थे। यों एक बड़े ख़ान्दान से ताल्लुक रखते थे, लेकिन होश सम्भाला तो खानदान के बड़प्पन के अलावः कुछ न बचा था। लिहाजा, किसी सिफारिश के बल पर हिज़हाइनेस के स्टाफ में आ फँसे थे। वैसे तबियत के संजीदा और साफ़गो थे। कई महीने की कोशिश के बाद उनकी साठ रु० माहवार तनख्वाह मुकर्रर हुई थी। उनका काम कभी-कभी शाम की तफ़रीहों में शामिल होना और दिन-भर महल की शोभा बढ़ाते रहना था। धीरे-धीरे उनकी बीवी की खूबसूरती की शोहरत हिज़ हाइनेस के कानों तक पहुँचाई गई—सच पूछिये तो यह खबर हिज़ हाइनेस के पास शुरू में ही पहुँच चुकी थी, और यही तो खास वजह उन्हें नौकरी मिलने की थी ? लेकिन हमारे महाराज इन बातों में बड़े चंट हैं। उन्होंने मिस्टर भान पर यह जाहिर तक न होने दिया कि उनकी किस्मत का पासा पलटने की जिम्मेदारी वास्तव में किस पर है। बेचारे नातजुर्बेकार और सीधे-सादे आदमी थे। सिर्फ मैं और मेरे कुछ तजुर्बेकार संगी-साथी हिज़ हाइनेस की इस गुनाह-भरी इच्छा को इशारे-मात्र में समझ गये थे, लेकिन हम चुप थे।

एक दिन मुझे इशारा किया गया। मेरी आत्मा इस नौकरी में प्रवेश करने के पेश्तर ही मर चुकी थी। मैंने भी मि० भान को अपने पास बैठाया और घुमा-फिराकर उन्हें पटाना शुरू किया।

वह बेचारा बिल्कुल गऊ आदमी था। उसकी समझ में मेरा दिली मतलब आखिर तक न आया। बात शुरू करने की भूमिका मैंने यों बाँधी—'यार, मुझे तुमसे बहुत-ही हमदर्दी हो गई है !'

उसने अपनी उज्ज्वल आँखें उठाकर मेरी तरफ़ देखा और कहा—'मैं आपका मशकूर हूँ।'

'हिज़ हाइनेस भी तुम पर बहुत मेहरबान हैं।'

उसकी आँखें चमक उठीं। खुश होकर बोला, 'सच ?'

मैंने सञ्जीदा सूरत बनाकर जवाब दिया—'भला मैं तुमसे ग़लत-

बयानी क्यों करता ?'

उसने शर्माकर गर्दन नीची कर ली और लम्वी साँस लेकर कहा—'भाई, यह मेरी खुश-क़िस्मती है कि हिज़ हाइनेस का मुझ पर इतना अनुग्रह हुआ कि उन्होंने मुझे अपने ज़ेर-साये ले लिया। अव अगर उनकी और इनायत होगी तो बाक़ी मुसीबतों के बादल भी उड़ जायेंगे !

'बाक़ी मुसीवतें ?' मैंने हैरानी-भरी आवाज़ में पूछा—'भले आदमी, अब भी क्या मुसीबतें बाक़ी रह गईं ?'

वह चुप रह गया।

'क्या तुम्हें और भी कुछ तक़लीफें हैं ?' मैंने दोहराया।

उसने इधर-उधर देखकर कह दिया—'भाई, मुझे तनख़्वाह इतनी कम मिलती है, जिसमें गुज़र नहीं होती !'

मैं गम्भीर बनकर किसी और काम में लग गया; गोया उसकी बात मैंने सुनी तो है, लेकिन उसका कोई जवाब मेरे पास नहीं है।

वह कुछ खिसियाना-सा होकर मेरे पास से उठना ही चाहता था। लेकिन मैंने कहा—'बैठो यार, बैठो।'

वह बेचारा वैठ गया। मैंने ज़ाहिरा काम, में मसरूफ़ रहते हुए कहा—'यार, तुमने हमें कभी दावत तो दी नहीं, वर्ना हम तुम्हें कुछ तरक़ीब बताते ।'

उसने खुश्क हँसी के साथ बेतकल्लुफ़ी से जवाब दिया—'अरे भाई, क्यों मज़ाक़ उड़ाते हो, तुम्हें और मैं दावत दूंगा ?'

'क्यों ? क्या मैं इस क़ाबिल नहीं ?'

उसने कहा—'नहीं भाई, मेरा मतलब यह है कि तुम इतने मसरूफ़ आदमी हो कि भला मेरे यहाँ दावत खाने की तुम्हें फ़ुर्सत कहाँ हैं ?'

मैंने उसका क़तः क़लाम करके कहा—'अच्छा, एक बात तो बताओ !'

'क्या ?'

'बुरा तो न मानोगे ?'

'नहीं भाई; बुरा क्या मानना है !'

'मैंने सुना है, ज़नाने शिक्षा-विभाग में कुछ जगहें खाली हुई हैं, तुम

कोशिश क्यों नहीं करते ?'

'क्या मतलब ?'

मैंने यथा-साध्य गम्भीर होकर कहा—मैंने सुना है, आपकी धर्म-पत्नी तो काफ़ी तालीम-याफ़्ता हैं···।'

अब उसकी समझ में मेरी बात आई। खुशी की हड़बड़ाहट में कह उठा —'हाँ, हैं तो; मैट्रिक पास हैं, यों एफ़्० में भी पढ़ी थीं, मगर पास न कर सकी थीं—शादी हो गई थी।'

'बस, तो काफ़ी है। हिज़ हाइनेस तुम पर खुश हैं ही, किसी दिन उन्हें लाकर पेश कर दो···'

मैंने एक ही सपाटे में इतनी बात कहने को कह दीं, लेकिन उसने जैसे मेरी ज़बान पकड़ ली। कहने लगा पेश-पेश करने का क्या मतलब ? क्या तुमने मुझे···?'

मैंने स्थिति भाँप ली और उसे आगे बोलने का मौक़ा न देकर कहा—'भाई, उन्हें लेडी-सुप्रिण्टेण्डेण्ट से तो मिलना ही होगा; जाकर पेश कर दो और एक अर्ज़ी हिज़ हाइनेस के हुज़ूर में दाखिल कर दो। जो कुछ मुझसे हो सकेगा, मैं ज़ोर लगा दूँगा। और क्या चाहिए ?'

अब उसकी समझ में बात आई, कहने लगा—'हाँ, बात तो मुनासिब है !'

वह बेचारा अगले ही दिन एक अर्ज़ी हिज़ हाइनेस के नाम और दूसरी शिक्षा-विभाग की लेडी-सुप्रिण्टेण्डेण्ट के नाम लिखकर ले आया। मैंने अलट-पलटकर दोनों अर्जियाँ देखीं और वापिस लौटा दीं। कहा—'तुम तो गधे ही रहे !'

'क्यों ?'

'अरे, इन पर तुम्हारे दस्तख़तों से क्या बन सकता है, अपनी पत्नी के कराओ।'

उसने फ़ौरन अपनी भूल स्वीकार कर ली और अर्ज़ियाँ जेब में रखने लगा।

'और देखो अक़्लमन्ददास, ज़रा हिज़ हाइनेस के नाम की अर्ज़ी ठीक-ठीक ढंग पर लिखना।'

'यानी ?'

'अरे भई, तुम तो खुद हिज़ हाइनेस के 'स्टाफ़ के आदमी हो; जरा क़ायदे-क़रीने की लिखावट होनी चाहिए।···मुनासिव समझो, तो यह भी लिखवा देना कि अगर वन्दी को रू-ब-रू हाजिर होकर अपनी दर्ख़्वास्त के सिलसिले में कुछ अर्ज़ करने का मौक़ा दिया जाय तो वेहतर होगा।'

उसका चेहरा क्षण-भर को ज़र्द पड़ा, लेकिन फिर उसने सम्हलकर कहा—'क्या मुझे ऐसा लिखना चाहिए ?'

मैंने वेरुख़ी दिखाते हुए कहा—"अव अगर खुद सरकार तक के बारे में तुम्हारे ऐसे खयालात हैं तो इस बारे में कुछ वात-ही करना वेकार है।"

वह डर गया। कहने लगा—'नहीं भाई, मेरे ख़यालात सरकार के वारे में ख़राब होते तो मैं उनकी नौकरी में ही क्यों आता ? खैर इन वातों को जाने दो, मैं जैसे तुम कहते हो, वैसे ही अर्जी लिखवा दूंगा।'

मैंने अपनी सारी मक्कारी कलेजे की आखिरी तह में छिपाकर जाहिरा लापरवाही से कहा—'अच्छी बात है, जाओ, जहां तक बनेगा, तुम्हारा काम सिद्ध करा दूंगा। खुदा से दुआ करो कि सरकार उन्हें अपने सामने आने की इजाजत दे दें। बस, फिर तुम्हारी क़िस्मत हमेशा के लिए खुल जायेगी।'

माँ-महारानी की आत्म-कहानी

उस दिन मेरी नौकरानी ने आकर मुझे सूचना दी कि माणिक सरदार मुझसे भेंट करना चाहता है। वह अकसर इसी तरह सूचना देकर मुझसे मिलने आया करता था। यों रिश्ते में वह मुझसे बड़ा था, लेकिन राज-परिवार पर से रिश्ते के बन्धन दूर हो जाया करते हैं। इसलिए वह भी मेरी प्रजा ही था। अलबत, उसकी राजकीय मर्यादा बड़ी थी। और इसलिए उसके वास्ते ख़बर कर देना ही काफ़ी होता था।

माणिक सरदार आया और मेरे सामने, फ़र्श के गद्दे पर बैठ गया। दो-चार रस्मी बातों के बाद उसने कमरे के द्वार पर खड़ी हुई दासी की ओर आँख तरेरकर देख दिया और वह वहाँ से हट गई।

'माँ साहेब, कुछ और सुना ?'

माणिक सरदार का यही पहला फ़िकरा था।

मैं बेचारी, औरत ज़ात—मैं भला उसके सुनाए बग़ैर कुछ कैसे सुन सकती थी ?

लिहाज़ा यही मैंने उससे कह दिया।

'आजकल हमारे हुज़ूर एक नये रंग मे बहे जा रहे हैं।'

मैंने जिज्ञासापूर्ण मुद्रा बनाकर पूरी बात जानने की कोशिश की।

'आपको मालूम ही है कि हाल ही में हुज़ूर साहेब बम्बई तशरीफ़ ले गये थे ?'

'हाँ।'

'वहाँ से एक नई बला अपने सर लगा लाये हैं !'

मैंने फिर उसी जिज्ञासु मुद्रा से मुकम्मिल बात जाननी चाही। माणिक सरदार सदा मुझसे सर झुकाकर बात करता था। लेकिन आज पहले-पहल सर ऊपर उठाकर उसने मेरी तरफ़ ताका और कह दिया—'वह एक रण्डी के दाम-फ़रेब के शिकार होकर लौटे हैं !'

यह बात अनहोनी न थी, लेकिन मैं चौंक पड़ी और मेरे कण्ठ से तदनुकूल ही कोई आवाज़ निकल गई।

'जी हाँ, सुनता हूँ, उसी पिशाचिनी के जाल में फँसकर उनकी पिछली बम्बई-यात्रा इस क़दर लम्बी हो गई थी। ख़बर तो यहाँ तक मिली है कि वह कई लाख रुपया उसे दे आये हैं।'

'कई लाख ?'

'जी हाँ, कई लाख ! मैंने वम्बई के खर्च का ब्यौरा जानने की कोशिश की थी, लेकिन मुझे मालूम हुआ कि हुज़ूर की हिदायत के मुताविक़ 'प्रिवी-पर्स' के वम्बई के इखराजात जुदा रक्खे गये हैं। क्या यह चीज़ शक़ बढ़ाने वाली नहीं ?'

'वेशक !

'अगर यहीं तक बस होती तो ग़नीमत थी···'

उसने अपनी बात-चीत बीच में रोककर मेरी उत्सुकता को बढ़ने का अवसर दिया।

'अब हुज़ूर का हुक्म है कि उसे आलमनगर बुलाया जाय।'

'हाँ ?'

'जी हाँ, हुज़ूर की तबियत उसके विरह में परेशान रहती है, काम में जी नहीं लगता, रात में चौंक-चौंक पड़ते हैं, बैठे-बैठे रोने लगते हैं, तफ़रीह के इन्तज़ामों में दिलचस्पी नहीं रही है।··· क्या पूछती हैं आप, माँ साहेब, हुज़ूर ने उसे अपनी महारानी बनाने का पुख़्ता इरादा कर लिया है।'

इस खबर पर तो मेरा कलेजा मुँह को आ गया और मैं एक बार अपने आसन से उठ पड़ने को हुई।

कुछ क्षण तक हम दोनों ख़ामोश रहे।

इसके बाद माणिक सरदार ने फिर कहा—'माँ साहेब, वह एक

निहायत नाचीज़ मुसलमान रण्डी है, जो बम्बई की किसी फ़िल्म-कम्पनी में काम करती है।'

'यह बात ?'

'जी हाँ, कहा जाता है कि औरत बहुत खूबसूरत है और हमारे हुज़ूर उस पर दिलो-जान से फ़रेफ़्ता हैं। अगर उसने एक मर्तबा आलमनगर का रास्ता देख लिया तो फिर इस रियासत का ईश्वर ही मालिक है !'

मुझे गम्भीर विचार में डूब जाना पड़ा।

माणिक सरदार ने कुछ देर खामोश रहकर मेरी फ़िक्र को पकने का मौक़ा दिया।

'सुनते हैं, सब बातें बम्बई में तय हो चुकी हैं और उसने हुज़ूर के साथ चन्द शरायत के साथ शादी करना मञ्ज़ूर कर लिया है।'

'तो क्या शादी चुपचाप हो जायगी ?'

'कोशिश तो यही है, लेकिन मेरा नाम माणिक सरदार है माँ साहेब !' कहकर माणिक सरदार ने अपनी छाती ठोंकी।

'···जब तक मैं जीता हूँ, रियासत की इज्ज़त पर धब्बा न लगने दूंगा।

मैं अब भी खामोश थी।

'मेरा दम-में-दम है तो मैं मरता न मर जाऊंगा, पर हुज़ूर साहेब की हर्कतों की पूरी रोकथाम करूँगा।···अब हद हो चुकी है।'

'·········।'

'भला ग़ौर तो कीजिये, एक नाचीज़ रण्डी हम लोगों के सर पर चढ़ कर बैठे। नहीं, हर्गिज़ नहीं ?'

मेरे मुँह से भी अकस्मात् निकल गया—'नहीं, हर्गिज़ नहीं !'

'लेकिन मुझे आपकी ज़रा-सी मदद की ज़रूरत है !'

'कहिए !'

'यह देखिये !' माणिक सरदार ने अपनी जेब से एक सफ़ेद रंग का लिफ़ाफ़ा निकाला और तर्जनी और मध्यमा की मदद से एक फ़ोटो निकाल कर मेरे सामने रख दिया। 'मेरी गुस्ताखी मुआफ़ कीजिएगा, लेकिन मैं मजबूर था···।'

मैंने एक नज़र फोटो पर डाली और उसे पलटकर धर दिया।

इस चित्र में मेरे साहबज़ादे एक नव-युवती के साथ अस्त-व्यस्त दशा में चित्रित थे।

सम्भवतः यह नव-युवती वही मुसलमान रण्डी थी, जिसका उल्लेख माणिक सरदार ने किया था।

'एक नहीं, अनेकों इस तरह के चित्र मेरे क़ब्ज़े में आ चुके हैं और आपको मालूम हो कि ये चित्र अखबारों में छपने जा रहे थे, लेकिन मैंने हज़ारों रुपया खर्च करके मय 'निगेटिव' उन्हें खरीद लिया है!'

मैं माणिक सरदार को जानती थी, इसलिए मैंने घबराकर कहा—'आखिर तुम्हारा इरादा क्या है?'

'मेरा इरादा?—मेरा इरादा माँ साहेब, वही है, जो आपका इरशाद हो।'

'यानी?'

'मुझे किसी चीज़ की तवक़्क़ो नहीं है माँ साहेब, हश्मत, दौलत, इज़्ज़त और तन्दुरुस्ती सभी कुछ-मुझे हासिल है। राजाओं और बादशाहों से ज़्यादे आज़ादी का लुत्फ़ मैं ले सकता हूँ। मैं तो जो कुछ करूँगा, अपने प्यारे गत महाराज और अपनी रियासत के राज-सिंहासन को कलंक से बचाने के लिए करूँगा।'

मैं विचार में पड़ गई कि उसके इन भावों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करूँ या न करूँ!

माणिक सरदार उसी सिल्सिले में कहता चला गया—'जब मैं हुज़ूर की इन हर्कतों को देखता हूँ तो अफ़सोस से मेरी छाती फटने लगती है। गत महाराज मुझे राज्य की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी दे गये थे और मैंने बरसों तक अपना ख़ून-पसीना एक करके रियासत की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रक्खा। अब हुज़ूर गद्दी पर आये हैं और क़ानूनन् मैं उनका सेवक हूँ—मुझे कोई हक़ नहीं कि मैं उनकी हर्कतों की आलोचना करूँ, या उनके कर्त्तव्यों पर अंगुश्तनुमाई करूँ। बल्कि आजकल के नौकर तो अपनी तरक़्क़ी का राज़ इसी में समझते हैं कि मालिक की तबियत का रुझान जिधर देखें, उधर ही उसे प्रोत्साहन दें। लेकिन माँ साहेब, मैं अपनी आदत से लाचार हूँ। जब

तक मैं जीता हूँ, मुझे गत महाराज के प्रति अपने कर्त्तव्य का ध्यान है और ध्यान है अपने प्रति उनके स्वर्गीय स्नेह का। जब आप ख़ुद मौजूद हैं, तो मैं आप ही को गत महाराज की जगह मानता हूँ और आप ही इस राज्य की प्रतिष्ठा और गौरव की मूर्तिमान् प्रतीक हैं। आप अगर मुझे आदेश न देंगी तो और कौन देगा?'

मैंने उसकी रंगारँगी वातों में उलझकर कह दिया—'मुझे क्या करना चाहिए?'

'आपको—क्या करना चाहिए? यह क्या मेरे वताने की बात है? क्या अनेक बार हम लोग इस प्रश्न पर निर्णय नहीं कर चुके? क्या आप अपने निश्चय और वादे को भूल गईं, जो आपने समय-समय पर मुझसे दुहराया है? क्या आपके उस महान् स्थैर्य्य में स्खलन आरम्भ हो गया है?".

माणिक सरदार ने टकटकी बाँधकर क्षण-भर के लिए मेरी तरफ़ ताक़ दिया।

मैं अकसर महसूस करती रही हूँ कि इस आदमी की आँखों में एक नाशकारी जादू है। अगर्चे आज तक हमेशा उसने मुझसे आँखें नीची करके वातें की हैं, लेकिन दूसरों की तरफ़ घूरकर ताकते हुए मुझे अनेकों बार उसे देखने का अवसर मिला है। दूसरी तरफ़ देखते हुए मैंने उसकी आँखों में एक अजीब बिजली की ज्योति देखी है, जिसने मुझे सर से पैर तक हिला दिया है। सच तो यह है कि आज तक इस आदमी के सामने जितनी बातें की हैं, जितने निश्चय मैंने किये हैं, जितने काग़ज़ों, मस्विदों और दस्तावेज़ों पर मुझे दस्तखत करने पड़े हैं, हमेशा इन्हीं खतरनाक आँखों के तावे होकर किये हैं। आप विश्वास न करेंगे, लेकिन कभी तो मेरा साहस यह नहीं हुआ कि मैं उसकी आँखों से अपनी आँखें भिड़ा सकूँ। कैसा विचित्र आदमी वह है!

'आखिर फ़िल्हाल मुझे करना क्या चाहिए?'

मेरे इस प्रश्न पर माणिक सरदार ने दोबारा तर्जनी और मध्यमा उस सफ़ेद लिफ़ाफ़े में डाली और मेरे नाम के छपे हुए 'लैटर-हेड' पर खूब वढ़िया टाइप किया हुआ एक काग़ज़ निकाला। तब उसने दाँये हाथ से अपना फ़ाउण्टेन-पेन मेरे हाथ में थमा दिया और वाएँ हाथ से वह कागज़

मेरी आँखों के सम्मुख फैला दिया।

'इस पर दस्तख़त कर दीजिए।'

मैंने उसे पढ़ा वह एक पत्र था, जो वॉयसरॉय के नाम लिखा गया था। इस पत्र में कुछ नत्थीशुदा काग़ज़ों और चित्रों की कॉपियों का हवाला देते हुए मेरे पुत्र की कार्रवाइयों का वर्णन किया था और वॉयसरॉय से प्रार्थना की गई थी कि उसे गद्दी से उतारकर राज्य का शासन एक कार्यकारिणी समिति के सुपुर्द कर दिया जाय और मेरा उसकी अध्यक्षा होना मंजूर कर लिया जाय।

इस पत्र की बाँई तरफ़ मेरी रियासत के तमाम मन्त्रियों के दस्तखत थे।

'सिर्फ़ आपके दस्तखतों की देर है और समझ लीजिए कि रियासत की इज़्ज़त हमेशा के लिए बच जायेगी।'

मैंने क़लम उठाया और क्षण-भर को मेरा हाथ काँपकर रह गया!

रानी त्रिपुरी की आत्म-कहानी

रियासतों का भीतरी अनुभव रखने वाले आदमी जानते हैं कि वहाँ राजा के अलग, रानी के अलग, मन्त्रियों के अलग, अफ़सरों के अलग निजी आदमी बन जाते हैं और उपरोल्लिखित प्रत्येक व्यक्ति इस बात की कोशिश करता है कि उसकी पार्टी के आदमियों में उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जाये, जिससे रियासत में उसकी जड़ें जमती चली जायें और वक़्त आने पर उसे राजकीय कोप का शिकार न बनना पड़े। वास्तव में रियासती ज़िन्दगी, रियासत के बाहर रहने वालों के लिए तो एक अभिशाप ही मालूम पड़ती होगी; क्योंकि कोई नहीं जानता कि कब, किस पर, किस वजह से राजा कुपित हो जाय और कब उसकी जन्म-भर की कमाई दौलत, हश्मत, जायदाद और प्रतिष्ठा का अपहरण कर लिया जाय? कब उसे कुत्ते की तरह दुरदुराकर रियासत-बदर कर दिया जाय? कब उसे जेलख़ाने में सड़ा-सड़ाकर मार डालने का हुक्म दे दिया जाय? राजा के निश्चयों के विरुद्ध किसी अदालत में कोई अपील नहीं है। इसलिए उन लोगों की नज़रों में रियासत के निवासियों की ज़िन्दगी कितनी दयनीय होगी, जो रियासतों का भीतरी अनुभव नहीं रखते! वास्तव में बात कुछ है तो ऐसी ही, लेकिन रियासतों में रहने वाले लोगों की मनोवृत्ति कुछ अजीब प्रकार की बन जाती है। उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता का अनुपात बाहरी लोगों की अपेक्षा कम नहीं होता, परन्तु उनकी तीक्ष्णता का विकास दूसरी-दूसरी तरफ़ हो जाता है। न तो उनकी भावनाओं का राष्ट्रीयकरण हो पाता है,

न उन का देवत्व विकास पाकर त्याग और बलिदान की अभिलाषाओं को पल्लवित कर पाता है और न उनमें वह वीरोचित साहस और ओज उत्पन्न हो पाता है, जो एक स्वतन्त्र भूमि के स्वतन्त्र निवासियों में देखने को मिलता है। उनकी सारी बुद्धि तो इसी बात में खर्च होती रहती है कि वे धीरे-धीरे राज्य में अपनी स्थिति को अधिकाधिक मज़बूत बनाते चले जायें और झूठ, सच, छल, कपट चुग़ली, षड्यन्त्र से या जिस तरह भी हो—अपने से ऊँची शक्तियों की नज़रों में अपना सम्मान बढ़ाते जायें और ऊँची शक्तियों की यह कोशिश होती है कि उनसे नीचे के जितने ओहदेदार उनके भक्त बन सकें, उतना ही अच्छा।

मैं आख़िर राज्य की महारानी थी, लेकिन औरत थी। इसलिए मेरे हमदर्दों और मददगारों की तो कमी न थी, लेकिन इन मददगारों में ज़्यादा तादाद औरतों की थी। इन लोगों की मदद मुझे सबसे ज़्यादे यह होती थी कि रियासत को मुख्य-मुख्य शक्तियों के जो चक्र चलते रहते थे, उनकी प्रगति का हाल मुझे बराबर मिलता रहता था। इन्हीं अपनी मददगार औरतों की कृपा से—जिनमें से प्रायः सभी मेरी दासियाँ या सवैतनिक सहेलियाँ थीं, मुझे बराबर पता रहता था कि मेरी सास मरे पति को सिंहासन से हटवाकर खुद सल्तनत का संचालन करना चाहती हैं, रियासत के चीफ़ मिनिस्टर दीवानबहादुर अमरदास अपनी बुजुर्गी और इज़्ज़त की खैर मना रहे हैं और मिनिस्टर खास माणिक सरदार—जो मेरे स्वामी के चचाज़ाद भाई भी हैं--इस जुगत में हैं कि किसी तरह एक बार मेरे स्वामी यमलोक को पहुँच जायें तो वह गद्दी पर क़ब्ज़ा जमाकर खुद राज्य के मालिक बन जायें। मुझे अपने स्वामी के चरित्र की प्रगति का भी क्षण-क्षण पर पता चलता रहता था। यहाँ तक कि किस दिन, किस जगह की, कौन औरत उनके पास, उनके किस गुनहगार ए० डी० सी० ने पहुँचाई, किस दिन, किस तर्कीब से उनकी तबियत का रुझान किस खास औरत की तरफ़ किया गया, किस दिन किस सौभाग्यशालिनी के साथ मेरे स्वामी ने नशे की मदहोशी में अपने स्टाफ़ के आदमियों के सामने नृत्य किया—यह सारे समाचार रह-रहकर मेरे कानों में आ पड़ते थे। मैं सुनती थी और सर धुनती थी।

पिछले चार बरसों से मैं बराबर इस बात का उद्योग करती रही थी कि अपने स्वामी के फ़ेलों का अपनी पूरी ताक़त लगाकर विरोध करूँ। उन्होंने अपने निजी नौकरों को हुक्म देकर अपने तफ़रीह के घण्टों में मेरा अपने नज़दीक आना बन्द कर दिया था। लेकिन मुझे जब, जहाँ, जिस तरह मौक़ा मिलता था मैं अपनी कोशिशों से बाज़ न रहती थी। वह जहाँ भी मुझे दिखाई दे जाते मैं हाथ जोड़कर और हा-हा खाकर उनसे विनती करती कि वह मुझ दुखिया की भी कुछ खबर लें। लेकिन 'मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की' का मस्ला था। हालत यहाँ तक पहुँच गई कि मेरे रहने के लिए महल का एक अलग हिस्सा दे दिया गया और मुझे हफ़्तों तक उनकी सूरत देखने तक के लिए भटकना पड़ने लगा। मैं थी और मेरी वह अबोध कन्या थी, जिसे देख-देखकर ही मेरी ज़िन्दगी के वह बदनसीब दिन कटे जा रहे थे। मैंने उन्हें बहुत-से खत लिखे। शुरू-शुरू में तो कुछ प्रभाव होता था, लेकिन बाद में वह भी जाता रहा। न खत का जवाब मिलता था और न उनके दर्शन होते थे। हारकर मैंने खत लिखना भी बन्द कर दिया। वह गाहे-बगाहे कभी नज़र पड़ जाते, या शराब के नशे में किसी दिन मेरे पास आने की उन्हें फ़ुर्सत मिल जाती तो उन्हें मेरी दुःख-भरी कहानी सुनने की इच्छा न होती थी।

आप ताज्जुब करेंगे कि उनकी इन हर्कतों के बावजूद भी मुझे उन पर न तो क्रोध आता था और न उनसे नफ़रत होती थी। मुझे उन पर दया आती थी और अपने भाग्य पर अफ़सोस होता था। मैंने इन चार वर्षों के सहवास में महसूस किया था कि मेरे स्वामी का हृदय एक देवता का हृदय है। उनके पापी सलाहकारों की कृपा और मेरे दुर्भाग्य से उनके चरित्र में कुछ ऐसी दुर्बलताएँ घर कर गई थीं, जिन्हें निकाल सकना खुद उनके लिए भी असम्भव था। इन चार वर्षों में अनेक अवसर ऐसे आये, जब शराब के घनघोर नशे में मेरे सामने आकर उन्होंने अपनी ग़लतियों की माफ़ी मुझसे माँगी, अपने गुनाहों पर शर्मिन्दगी ज़ाहिर की, एकाध बार यह भी कहा कि वह अपनी इस कृत्रिम ज़िन्दगी से ऊब-ऊब से उठते हैं और उनकी इच्छा किसी एकान्त और स्वच्छन्द स्थान पर विचरण करने की होती है। मैं उनकी यह सारी बातें सुनती थी और मन-ही-मन रोती थी। मैंने उनके

जीवन की धारा स्थायी रूप से बदलने के लिए उनकी प्रत्येक उचित और अनुचित इच्छा को पूरी करने का उद्योग किया, लेकिन वह थे, जो रह-रहकर विखर जाते थे।

एक बार वह दो महीने तक बम्बई रहे। मैंने बहुत कोशिश की कि मैं भी उनके साथ वम्वई जाऊँ। लेकिन मुझे इसकी इजाज़त न मिली। मैं दुखियारी अपनी मासूम बच्ची को कलेजे से चिपटाकर और मन मसोसकर रह गई। वह दो महीने मेरे किस प्रकार तड़पते हुए कटे, इसका हाल मैं ही जानती हूँ। यहाँ थे तो दूसरे-चौथे उनके दर्शन तो मुझे हो जाया करते थे, लेकिन अब वह भी दुर्लभ हो गया।

लेकिन मेरी हैरानी की हद न रही, जब बम्बई से लौटते ही मुझे उनमें एक अजीब परिवर्तन दिखाई पड़ा। मैं न तो उन्हें संन्यासी बनाना चाहती थी और न उनकी आज़ादी में बन्धन डालना चाहती थी। मैं तो सिर्फ़ यह चाहती थी कि चौबीस घण्टे में कुछ क्षण के लिए मुझे भी उनकी सेवा करने का अवसर मिले। लेकिन बम्बई से लौटे तो उन्होंने जैसे मेरे गले का हार बन जाने की कोशिश की। न-जाने दिन में कै-कै वार मेरे पास उनका आना होता था। अपने राज-काज से लगाकर अपने दिल की छोटी-से-छोटी बातों का वर्णन उन्होंने हसरतनाक शब्दों में मुझसे किया और कहा—'त्रिपुरी, मैं एक सीधे-सादे ग़रीब गृहस्थ की तरह अपनी ज़िन्दगी बिताना चाहता हूँ। में शराव पीता हूँ या पर स्त्री के पास जाता हूँ, या किसी के साथ भूलकर भी अन्याय करता हूँ तो मेरी आत्मा थर्रा उठती है। मैं यह सब आत्म-प्रवंचना सहन नहीं कर सकता, मुझे अपने पापों पर शर्म आती है, मेरी आत्मा चीत्कार कर-कर उठती है। मैं अब तुम्हारी शरण हूँ; तुम्हीं मेरी रक्षा कर सकती हो।'

यद्यपि इससे मिलती-जुलती बातें मैं उनके मुँह से अनेक बार सुन चुकी थी, लेकिन कभी उनका यह भाव चिरस्थायी न रहा। फिर भी मैंने उक्त शब्द सुने तो मैं मानों निहाल हो गई—मानों स्वर्ग का राज्य मुझे मिल गया मैंने दोनों हाथों से अपना यह सौभाग्य बटोरकर रखने की कोशिश की।

लेकिन हाय मेरा दुर्भाग्य ! दस दिन भी नहीं बीते कि उनकी उदा-

सीनता फिर शुरू हो गई। उनका आना-जाना फिर बन्द हो गया। उनकी तफ़रीहों के समाचार फिर मुझे मिलने शुरू हो गये। मेरा छिना हुआ स्वर्ग फिर मुझसे छिन गया। मेरा जलता हुआ चिराग फिर टिमटिमाने लगा। मैं अपनी छाती दबाकर फिर उन्हीं यातनामयी भावनाओं में बहने लगी। हाय मेरे सौभाग्य के वह दस दिन !

मेरी परिचारिकाओं में से पार्वती ऐसी थी, जिस पर मेरा अगाध विश्वास था। उसके व्यवहार से कभी मुझे उस पर यह शक करने का मौक़ा न मिला था कि मुझमें उसकी भक्ति वनावटी है। इसीलिए जो कोई भी नाज़ुक मामला होता था, उसी के जरिये मुझे उनकी तमाम खबरें मिला करती थीं। लिहाज़ा उस दिन जब उसने आकर मुझे यह हैबतनाक खबर सुनाई तो मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा गया।

वह खबर यह थी कि मेरे स्वामी बम्बई की एक फ़िल्म-एक्ट्रेस को अपनी महारानी बनाना चाहते हैं।

दीवान बहादुर की आत्म-कहानी

बेशक, मैं वर्तमान महाराज की हर्कतों से और अपने प्रति उनके व्यवहारों से नाराज हूँ, लेकिन मैं हर्गिज़-हर्गिज़ उनका सर्वनाश करना नहीं चाहता। मैंने उस कागज़ पर दस्तखत कर तो दिये, लेकिन उसके बाद से ही मैंने अपनी इस हर्कत पर पछताना आरम्भ कर दिया। सच तो यह है कि माणिक सरदार की आँख में कुछ ऐसा जादू है, जिसने मुझे एकदम बे-काबू-सा बना दिया।

मैं पहले कह चुका हूँ कि माणिक सरदार एक ऐसी हस्ती है, जिससे मैं मन-ही-मन डरता तो हूँ—ही, नफ़रत भी कम नहीं करता हूँ। मुझसे जहाँ तक बनता है, उससे बचता रहता हूँ। राज्य की प्रबन्धकारिणी समिति के जलसों में, तक़रीबात के मौक़ों पर, कलबघर या जुलूस आदि में भी मेरी यही कोशिश रहती है कि मैं उसकी आँख-से-आँख न मिलाऊँ, उससे बात न करूँ, उससे मिलूँ-जुलूँ नहीं। लेकिन वह है, कि जब उसका मतलब पड़ता है तो मेरा पास आ जाता है और निहायत ग़ैर-रस्मी ढंग से अपने मन की बात कहकर जो चाहता है, मुझसे करा ले जाता है। यों अक्सर वह मुझसे यह कहता रहता है कि उसकी नज़र में मैं उसके बाप के समान हूँ, यह कि वह मेरी बेहद इज्जत करता है और यह कि और वह ज़रूरत पड़ने पर मेरे लिए जान तक दे देगा। मैं अपने मन की सबसे आखिरी तह में यह अनुभव करता हूँ कि यह सब उसकी बनावट और उसका पाखंड हैं, मैं यह भी जानता हूँ कि उसके कलेजे में इस विशाल राज्य का राजा बनने की महत्त्वाकांक्षा खलबली मचा

रही हैं। मुझे यह भी अनुमान हो चुका है कि उसका षड्यन्त्र किसी दिन इस राज्य का तख़्ता पलट देगा और मुझे यह भी अहसास है कि उसकी कोशिश उसी दिन से यह रही है कि वह मेरी जड़ें इस राज्य से उखाड़ दे लेकिन फिर भी मैं खुल्लमखुल्ला उससे लड़ाई मोल लेने की जुरअत नहीं कर सकता। एक तो उसकी जाहिरा लल्लो-पत्तो से, दूसरे उसकी चमकीली आँखों से और तीसरे उसके सामने खुद महाराज के झुके रहने की वजह से।

आख़िर महाराज माणिक सरदार के समस्त उपद्रवों का ज्ञान रखते हुए भी क्यों उसके आगे अवनत रहते हैं? क्यों नहीं उनमें इतना आत्मिक बल है कि वे इसका काला मुँह करके और गधे पर चढ़ाकर उसे रियासत-बदर कर देते? क्यों नहीं वे अपनी रियासत के सरदारों और अमीर-उमराओं की मन्त्रणा करके और उनके सहयोग से माणिक सरदार का नाम-निशान मिटा देने का निश्चय कर डालते? क्यों नहीं वे माणिक सरदार की जागीर-जायदाद ज़ब्त करके होश ठिकाने कर देते? मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आज प्रजा का बच्चा-बच्चा इस शख्स के अत्याचारों से पीड़ित है और रियासत का अदने से आला नौकर तक उसकी सूरत से नफ़रत करता है। बेशक माँ—महारानी उसकी मदद करती हैं, लेकिन राजा की इच्छा के सामने विधवा राजमाता की क्या हस्ती है? वह तो अपने स्वामी के निधन के बाद से ही राजा की प्रजा बन गई हैं! वह बेचारी···!

मुझे वह पुराना इतिहास भूला नहीं। किस तरह राज्य के सबसे खतरनाक बाग़ी माणिक सरदार को मेरे सर पर बैठा दिया गया था, वह सारी घटनाएँ आज भी मेरे बूढ़े मन की आँखों के आगे नाच जाती हैं। किस तरह महाराज ने खुद आकर मेरा इस्तीफ़ा मेरी जेब में ठूंस दिया और किस तरह मुझे मजबूर करके गत महाराज ने सौभाग्य का यह सेहरा मेरे सर पर बाँधे रक्खा, वह सारी बातें भी मुझे याद हैं। और यह भी मैं भूला नहीं हूँ कि किस प्रकार बड़ी माँ महारानी की सलाह पर गत महाराज को माणिक सरदार के सम्बन्ध में रातों रात अपना विचार-परिवर्तन करने पर विवश होना पड़ा था। मेरा अनुमान यह कहता है कि या तो गत महाराज अपने गुप्त वसीयतनामे में साणिक सरदार के सम्बन्ध में वर्तमान

महाराज को कोई निश्चित आदेश दे गये हैं, अन्यथा माणिक सरदार अवश्य महाराज पर भी अपनी आँखों के उस जादू का प्रयोग करता है, जिसके प्रभाव से मुझे भी उसके सम्मुख पड़ने पर मन-ही-मन थर्राना पड़ता है।

मैंने दस्तखत कर तो दिये, लेकिन तबियत बराबर परेशान रहती थी। जिस वक्त मुझसे दस्तखत लिए गए, मैं जाहिरा अपने पूरे होश-हवास में था, लेकिन जब मुझे यह पता लगा कि मस्विदा लेकर माणिक सरदार का एक निजी आदमी वॉयसरॉय की सेवा में भेज दिया गया तो मेरे कलेजे पर जैसे किसी ने पत्थर-सा रख दिया।

सात दिन के बाद ही उस नाशकारी चिट्ठी की प्रतिक्रिया नजर आनी शुरू हो गई। भारत सरकार के एक अंग्रेज़ प्रतिनिधि उसी सप्ताह में दो-तीन बार महाराज से मिले। इसके बाद महाराज को स्वयं दिल्ली जाना पड़ा और स्वयं उन्होंने आते ही सम्बद्ध व्यक्तियों को अपने राज-कोप का शिकार बनाना शुरू किया।

उन्हें सारी बात का पता लग गया था।

सबसे पहले जो खबर मेरे कान में पड़ी, वह यह थी कि राजमाता को राजमहल से निकालकर किसी एकाकी बगीचे में रखवा दिया गया है तथा उनकी उन दासियों को भी वहीं प्रायः नजरबन्द कर दिया गया है। इसके दूसरे ही दिन खबर मिली कि मेरे और माणिक सरदार के अतिरिक्त तमाम मन्त्रियों को अपने पास बुला-बुलाकर महाराज ने उन्हें खूब ज़लील किया और इसके बाद जो झुक गये, उन्हें तो माफ़ कर दिया और जो न झुके, उन्हें उसी दिन नौकरी से बर्तरफ़ कर दिया।

इस सब क्रिया में कई दिन बीत गये। मुझे यह उम्मीद हो चली कि शायद मुझे और माणिक सरदार को बिना तलबी किए ही मुआफ़ कर दिया गया है। लेकिन नहीं, यह खयाल मेरा ग़लत था।

मैं जब उस दिन क्लब में बैठा हुआ माणिक सरदार से बातचीत कर रहा था तो सहसा महल का एक सिपाही मेरे सामने आ खड़ा हुआ। इस क्लब में सिपाहियों को इस तरह आने को इजाजत न थी, इसलिए हम दोनों ने निहायत हैरानी के साथ उसकी तरफ़ ताक दिया।

उसने बारी-बारी से हम दोनों को सलाम किया और एक मोहरबन्द

लिफ़ाफ़ा मेरे हाथ में रख दिया।

मैंने एक बार छिपी नज़रों से माणिक सरदार की ओर देखा और तब वहीं बैठे-बैठे लिफ़ाफ़ा खोला।

क्या आप सुनेंगे कि इस खत में क्या लिखा था? लीजिए, मैं यहाँ उसकी सच्ची प्रतिलिपि देता हूँ :—

'प्रिय महोदय,

आपके विषय में हमें कुछ ऐसी सूचनायें प्राप्त हुई हैं जिनके आधार पर यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि आपने हमारे प्रति विश्वासघात व विद्रोह से भरी हर्कतें की हैं। आपके सम्बन्ध में जो-कुछ शिकायतें प्रजा की तरफ़ से प्राप्त हुई हैं, उन पर प्रकाश डालना इस समय उचित नहीं समझा गया और फ़िलहाल आपको यही आज्ञा देनी काफ़ी समझी गई कि आप कल की तारीख़ से अपनी सेवा से बर्तरफ़ किये गये तथा आपको हुक्म दिया जाता है कि चौबीस घण्टे के भीतर इस रियासत को हुदूद से बाहर हो जायें ओर तब तक आप इस हद में दोबारा घुसने का साहस न करें, जब तक कि आपको एसा करने की लिखित इजाज़त न मिल जाय।

इस पत्र के नीचे खुद महाराज के दस्तखत थे।

मेरे पाठक, आखिर अपनी सेवाओं का यह पुरस्कार मुझे मिला?

माणिक सरदार की आत्म-कहानी

कौन कहता है कि मेरा बुढ़ापा नज़दीक आ गया है? कौन कहता है कि मेरी ज़िन्दगी-भर की कोशिशें रायगाँ गयीं? किसे यह कहने की जुरअत है कि आलमनगर के ताज़ और तख्त पर कब्ज़ा जमाने की मेरी अभिलाषाएँ हास्यास्पद थीं? कौन है वह, जो आज मेरी आँख-से-मिलाकर कह सके कि ईश्वर की इच्छा के वग़ैर कोई काम नहीं हो सकता?

मैं आज सीने पर हाथ मार कर कह सकता हूँ कि मेरी उम्मीद वर आने का वक्त अब आ गया और इस वक्त को लाने की ज़िम्मेदारी मुझ पर और सिर्फ मुझ पर ही है।

मेरे एक ही सड़ाके में मेरे तमाम दुश्मनों का खात्मा हो गया। अगर्चे अमरदास ने मुझे बताया नहीं कि महल के आदमी के हाथों आये हुए उस लिफ़ाफ़े में क्या था—लेकिन मैं खूब जानता था कि वह उनकी रवानगी का परवाना है। दूसरे ही दिन सुबह उठकर लोगों के सुना कि दीवानबहादुर अमरदास कुत्ते की तरह आलमनगर की सरहद से वाहर निकाल दिये गए।

मुझे शुरू में शक था कि शायद मुझे भी राज-कोप का शिकार होना पड़ जाय। और मैंने तदनुकूल इन्तज़ामात भी कर लिए थे। पोलिटिकल डिपार्टमेंट से मुझे पूरी मदद की उम्मीद थी। मेरी जागीर में लड़ैत लोगों की संख्या पहले से तीन गुनी थी। फ़ौज के सिपहसलार को मैंने अच्छी तरह गाँठ लिया था और मुझे विश्वास था कि महाराज का परवाना मेरे लिए

न—सिर्फ बे-असर होगा, बल्कि खुद उनके लिए मौत का परवाना बन सकता था। लेकिन साथ ही मुझे अपनी क़िस्मत, अपने दबदबे और अपनी आँखों पर भरोसा था। साथ ही मुझे गत महाराज के उस गुप्त उपदेश का भी ज्ञान था, जो वे मरने से पहले अपने पुत्र के नाम छोड़ गये थे। उसमें उन्होंने स्पष्ट उल्लेख कर दिया था कि उनका उत्तराधिकारी किसी भी दशा में मेरे साथ बिगाड़ पैदा न करें। इसके बावजूद भी, चूँकि मुझे आशंका थी कि महाराज का अपना व्यक्तित्व है, इसलिए मुमकिन है कि पिता का आदेश क्रोध के आवेश में लाँघ दिया जाय और मुझ पर भी उनके क्रोध-कटाक्ष अपना असर डाल जायें।

लेकिन हफ़्ता बीत गया और मेरे पास परवाना न आया। हुआ यह कि उन आठ दिनों में मेरी कोई पेशी महाराज के सामने न हुई। मुझे अपने काम-से-काम था। तमाम मन्त्रियों की बर्खास्तगी, माँ-महारानी की नज़रबन्दी तथा वॉयसरॉय के पास भेजी हुई दरख़्वास्त ने तरह-तरह के रूप धारण करके प्रजा को आलोड़ित करना आरम्भ कर दिया। लोगों के ठट्ठ के ठट्ठ मेरे घर पर और ऑफिस में मिलने के लिए आने लगे। मैंने कुछ को टालकर, कुछ को हँसकर और कुछ को मीठी ज़बान से सन्तुष्ट करके विदा किया। सरकारी मुलाज़िमान भी तरह-तरह के बहाने लेकर घबराये हुए दिल को दबा-दबूकर मेरे सामने आते थे, लेकिन मैं उनको किसी-न-किसी बहाने से शान्त करके वापिस भेज देता था। मुझे मालूम था कि मेरा एक-एक शब्द महाराज के कानों तक पहुँच रहा है। इसलिए मैं इस बात का खास खयाल रखता था कि मुझे क्या करना चाहिए।

मैंने अगर्चे अपने जाहिरा कर्तवों में बहुत-कुछ तब्दीली कर ली थी पर मुझे महाराज की क्षण-क्षण की गति-विधि का नियमपूर्वक पता चलता रहता था। चौबीस घण्टे की उनकी दिनचर्या की रिपोर्ट हर रोज सुबह-गजरदम मुझे मिल जाती थी। उन्होंने किससे भेंट की, किससे बातें कीं, किसे सजा दी, किस पर खुश हुए तहां तक कि कितनी और किस क़िस्म की शराब की बोतलें किस दिन इस्तेमाल हुईं और कौन-कौन औरत किस-किस दिन रात को उनके साथ सोई, इसकी मुक़म्मिल फेहरिस्त भी मेरे क़ब्जे में नित्य आ जाती थी।

वह बम्बई की फिल्म-एक्ट्रेस ! मुझे पता चल चुका था कि मेरे रंगीले महाराज उसकी जुल्फों के पेंच में उलझ चुके हैं और यह उलझन बेहोशी की हद तक पहुँच चुकी है। मुझे यह भी पता चल गया था कि महाराज उसे आलमनगर में भी कई मर्तबा बुला चुके हैं। वह काला बुर्क़ा पहनकर आती थी और राज्य के सरकारी क्लब में रात-भर ठहराई जाती थी। उस रात को क्लब में किसी ग़ैर को आने की इजाजत न मिलती थी—रियासत के बड़े-से-बड़े सरदारों को भी उस दिन किसी दूसरी जगह अपनी तफ़रीह का इन्तज़ाम करना पड़ता था। मेरे पास इस औरत के फोटो आ चुके थे और मेरे चरों ने उसका साक्षात् दर्शन भी किया था। क्या कहना है उसकी खूबसूरती का ! लेकिन मैं—मैं औरत को कभी—औरत से आगे कुछ नहीं समझता और औरत के लिए मेरे दिल में कोई मुलायम कोना नहीं है। उसकी भोली सूरत तबियत में लालच जरूर पैदा करती थी, लेकिन मेरी राय में वह हर्गिज़ इस क़ाबिल न थी कि उसके क़दमों पर एक राजा अपना ताज और अपनी इज़्ज़त रख दे। मेरी राय में जो चीज रुपये से खरीदी जा सकती है, उसकी क़ीमत में हर्गिज़ इज़्ज़त हुर्मत का दाँव नहीं लगाना चाहिये।

लेकिन यही औरत किसी दिन महाराज के सर्वनाश का कारण होगी —ऐसा मेरा विश्वास था और मैं इस कोशिश में था कि यह आग बराबर भड़कती चली जाय और मौक़ा लगे कि मैं अपना हाथ साफ करूँ।

आखिर नवें दिन मेरी पेशी हुई—। मैंने अपने तमाम इन्तज़ामात मुक़म्मिल किये और मैं उनके सामने पेश हुआ। मुझे सभी तरह की उम्मीद थी। बर्खास्तगी भी हो सकती थी, गिरफ़्तारी भी और क़त्ल कराने की धमकी भी दी सकती जा थी।

लेकिन जो कुछ हुआ, वह मेरी इन सभी आशाओं के प्रतिकूल था।

मैंने उनका मुजरा किया और उनके रू-ब-रू सर-तस्लीम-खम करके खड़ा हो गया।

'माणिक सरदार !'

वह मुझे इसी नाम से पुकारा करते थे।

मुझे यह देखकर हैरानी हुई कि उनकी आंखें आंसुओं से डबडबा रही थीं।

मैंने हैरान होकर उनकी तरफ ताका।

'तुमने भी दस्तखत किये थे ?'

उनका गला भरा आ गहा था।

मैं भौंचक-सा रह गया और मेरी आँखें अनायास ही उनकी आँखों से मिल गयीं।

वह आँखें सुर्ख हो रही थीं और उनके भीतर से उनकी आन्तरिक वेदना झाँक रही थी।

'हुजूर···!'

मेरे मुँह से इसके आगे कोई शब्द न निकल सका।

'तुमने भी दस्तखत किए थे ?'

उन्होंने फिर अपनी बात दोहराई। इस मर्तबा उनके गले की भर्राहट में राजकीय दर्प का भाव था।

मुझे स्वीकार करना चाहिये कि क्षण-भर के लिए मैं चौकड़ी भूल गया। लेकिन फिर तुरत ही मैंने अपना कलेजा पक्का किया।

आखिर बाज़ी मैंने जीत ली थी !

मैंने सर नीचा करके कहा—'मैं सरकार की बात का मतलब समझ नहीं सका !'

वह क्षण-भर को चुप हुए और तब नैराश्यपूर्ण स्वर में बोले :—

—'माणिक सरदार, तुम सब कुछ समझ गये हो बताओ, तुमने भी उस मनहूस खत पर दस्तखत क्यों किये ? क्या मैंने तुम्हारा कुछ बिगाड़ा था ? या किसी ने तुम्हारा अपमान किया था ? या तुम्हें मुझसे किसी और वजह से दुश्मनी थी ? या तुम्हारे अधिकारों में किसी तरह की कमी है ? या तुम्हें ज़्यादे दौलत या हश्मत की ख़्वाहिश है ? बोलो—माणिक सरदार, तुम क्या चाहते हो ?'

क्षण-भर को मैं फिर हतप्रभ-सा खड़ा रह गया।

हिज़-हाइनेस की आत्म-कहानी

आखिर माणिक सरदार ने मेरे सामने—मुआफ़ी माँगी और मैंने उसे मुआफ़ कर दिया। मैं खुद नहीं जानता कि मैं उस आदमी से इस क़दर नफ़रत करते हुए भी क्यों उसे मुआफ़ करने के लिए मजबूर हो गया। बेशक, मेरे पिताजी मुझे वसीयत कर गये थे कि इस आदमी के साथ मुझे अपने जाहिरा सम्बन्ध कभी न बिगाड़ने चाहियें, लेकिन मेरे जीवन, व्यक्तित्व और स्वभाव का विकास जिस ढंग पर हुआ है, उसके कारण मैंने सभी बातों में पिताजी की आज्ञा के अनुसार आचरण किया हो, ऐसा कदापि नहीं है। मैंने जब से होश सम्भाला, हरेक कार्य अपनी स्वतन्त्र बुद्धि के अनुसार किया। अगर किसी मामले में मेरी कार्य-पद्धति पिताजी के आदेश से मिलान खा गई तो आप निश्चय जानिये, यह कोरा संयोग ही है। लेकिन माणिक सरदार के मामले में क्यों मुझे अपनी अन्तरात्मा की आवाज के विरुद्ध आचरण करना पड़ता है. इसका उत्तर स्वयं मुझे अपने भीतर ढूंढ़े नहीं मिलता। मुझे इस आदमी के नेत्रों में सदा शैतानियत का एक भूत नाचता हुआ दिखाई देता है और मैं सदा यह महसूस—करता हूँ कि वह एक कमीना और धूर्त व्यक्ति है, जो न केवल मेरी मान-मर्यादा, बल्कि मेरी जान तक का दुश्मन है। लेकिन वह है कि ज्यों-ही मेरे सामने आता है, मेरी सुध-बुध-सी भूल जाती है। इसका रुआब-सा मुझ पर ग़ालिब हो जाता है। उसकी वह शैतानियत-भरी आँखें मेरे औसान खता कर देती हैं और मुझे उसके समक्ष आत्मसमर्पण करने पर मजबूर हो जाना पड़ता है।

मैंने इस घटना के बाद यह तय कर लिया था कि मैं उसे गली-गली का भिखारी बनाकर राजधानी से निकाल दूंगा। मैं जानता था कि इस आदमी की पीठ पर मेरे राज्य की बहुत बड़ी-बड़ी शक्तियों का हाथ है और मुझे यह भी ज्ञात था कि इसे नापैद करने के लिए मुझे खुद उसके तैयार किये हुए भयंकर कुचक्रों का सामना तो करना पड़ेगा ही, उसके संगी-साथियों के उन उपद्रवी और उत्पातों के निराकरण के झञ्झट में भी पड़ना होगा, जो उसने अपने जीवन के पिछले अनेक वर्षों में मेरे राज्य के भीतर उत्पन्न किये हैं। लेकिन वॉयसरॉय को लिखे हुए उसके पत्र की जो प्रतिलिपि मेरे पास आई थी, उसने मुझे यह निश्चय कर लेने पर विवश कर दिया था कि अब इस जहरीले जानवर से मुझे सदा के लिए छुट्टी पा लेनी होगी।

मैंने उसे बुलाया और जब तक वह मेरे कमरे के भीतर आ गया, मैं क्रोध की साक्षात् मूर्ति बन बैठा रहा। लेकिन मैं कह नहीं सकता कि किस भावावेश ने उसकी सूरत सामने आते ही मुझे द्रवित कर दिया—कि मैं फिर उसके सम्मुख समर्पण कर बैठा।

मुझे मालूम हो गया था कि बम्बई की वह गोरी मेरी सख्त बदनामी का कारण हुई है और उसी की घटना का ताना-बाना बुनकर मेरे खिलाफ उपरोक्त षड्यन्त्र रचा गया था और जिसमें मेरी माँ तो शामिल थी ही, मेरे तमाम मंत्री भी शामिल कर लिए गये थे। मुझे मालूम हुआ था कि इन पापियों ने मेरी अनुचित स्थिति के फोटो तैयार किए और उनकी मदद से मेरा सर्वनाश करने की कोशिश की। लेकिन ब्रिटिश-सरकार बड़ी चतुर और बड़ी दोस्त-नवाज़ है। आफ़रीं है उसके बड़प्पन पर कि वॉयसरॉय ने इन तमाम चित्रों को जाली और मेरे खिलाफ़ तमाम शिकायतों को फ़र्जी बताया। इसीलिए तो इस खत का मज़बून मेरे क़ब्जे में आ गया और इसीलिए तो मैंने तुरन्त ही अपने तमाम नमक-हराम मन्त्रियों को रफ़ै-दफ़ै कर दिया और इसीलिए तो मुझे अपने इस कार्य में भारत-सरकार की दख्ल-अन्दाजी का भय न रहा।

लेकिन उस गोरी का इश्क अब भी न छूटा। मैंने सचमुच गम्भीरतापूर्वक इस बात पर ग़ौर किया कि जो चीज़ मेरी मर्यादा और महत्ता के लिए इस क़दर खतरनाक साबित हो रही है, उसे एकबारगी त्याग ही

क्यों न दिया जाय ? लेकिन अपने दिल में मोहब्बत के तमाम कोनों को टटोलने के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि यह मुमकिन न था। उन कोनों में इस गोरी के इश्क के सिवा और कोई चीज़ थी ही नहीं। और उसका ध्यान निकालने के वाद इसमें सूनेपन के अतिरिक्त और कुछ बाकी नहीं बचता। मैंने उसकी-सी सुन्दरी, उस-सी साथिन, उस-सी सह-धर्मिणी और उस-सी सुख-शान्तिमयी स्त्री कहीं नहीं देखी। यों मुझे सभी जाति और सभी वर्ण की स्त्रियों के सहवास का अवसर मिल चुका था और मुझे यह भी अनुभव हो चुका था कि किस-किस में, किन-किन गुणों का किस-किस हद तक विकास हो चुका है, लेकिन आप विश्वास रखिये कि शमीम मेरी दृष्टि में एक सर्वगुण-सम्पन्न रमणी थी।

वह ज्यों-ज्यों मेरे सम्पर्क में आती गई, त्यों-त्यों मुझ पर उसके प्रेम का रंग गहरा होता गया। यों वह एक मामूली रण्डी थी, लेकिन उसकी जिस वात ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया, वह उसके व्यक्तित्त्व का दर्प था। हो सकता है, यह दर्प उसकी बनावट ही हो, लेकिन मेरे जीवन के वर्तमान परिवर्तन के अन्तिम छोर तक उसने अपने चरित्र के इस गुण को अक्षुण्ण रखा। मेरे साथ उसे रातों और दिनों रहने का अवकाश मिलता था, लेकिन कभी क्षण-भर के लिए भी मैंने उसकी किसी हर्कत, किसी बात, किसी संकेत में हल्कापन नहीं पाया। वह देवियों की तरह बोलती थी, रानियों की तरह हर्कत करती थी और महान् आत्माओं की-सी उसकी विचार-धारायें थीं। यद्यपि उमकी इस बात पर विश्वास करने को मेरा मन न चाहता था, लेकिन उसने अपने शब्दों, अपनी भाव-भंगियों, अपने व्यवहार से मुझ पर यह विश्वास जमाने का हमेशा यत्न किया कि मुझसे पहले जीवन में कभी किसी पुरुष का मुँह देखने का अवसर उसे नहीं मिला था। उसने मुझे यह भी वताया कि उसने मेरी बहुत-बहुत तारीफ़ सुनी थी और यह भी कि वह मेरे सम्पर्क में आने से पहले ही मुझ पर हज़ार जान से फ़िदा हो चुकी थी। मैंने मोह के अन्धेरे से अन्धा बनकर उसकी इन सारी बातों पर विश्वास किया और मेरे हृदय में उस रमणी के प्रति आसक्ति दिनों-दिन बढ़ती ही चली गई।

बम्बई के उस हठ के बाद भी मैंने कई बार उससे यह आग्रह किया था

कि वह मेरी रानी बनना स्वीकार कर ले। वह कभी तो टालकर, कभी चुप रहकर, कभी अपना वही पुराना तर्क पेश करके, कभी मज़ाक में अपनी आज़ादी नष्ट हो जाने का भय दिखाकर मेरी बात नामंजूर कर देती थी। जितनी मर्तबा उसने मेरा प्रस्ताव अस्वीकार किया, उतना ही ज्यादा और मेरा उस मोह पर बढ़ता चला गया और आखिर एक दिन शराब के नशे में चूर होकर मैंने उसका पल्ला थाम लिया और कहा—

'बस, आज मैं निश्चय कर चुका हूँ !'

अब मैं उसे क्लब में नहीं, अपने नए रंग-महल में बुलाया करता हूँ। वह बम्बई से आती है और दो-दो, चार-चार दिन और कभी-कभी हफ्ते-हफ्ते तक मेरी तफ़रीह करके वापिस लौट जाती है। उसकी एक यात्रा में मुझे कई हज़ार रुपया नकद बहुत-से जेवरात और दीगर तोहफे उसकी नज़र करने पड़ते हैं। उसके आगे मेरी सारी कन्जूसी हवा हो जाती है। सच्ची बात तो यह है कि उसके लिए मेरी दृष्टि में वसुधा का राज्य भी सर्वथा तुच्छ है।

उसने अपनी रतनारी आँखें मेरी आँखों में डालकर कहा—'सरकार ने क्या 'निश्चय' फरमाया है ?'

मैंने बेहोशी की उनींदी आँखें उस पर झुकाकर जवाब दिया—'अब तुम्हें मेरी इस्तदुआ क़ुबूल करनी ही पड़ेगी !'

वह अपनी झल-मल करती हुई पोशाक को फटकारकर खड़ी हो गई और झुककर बड़े अन्दाज से उसने मेरा मुजरा किया। कहने लगी—'ऐ मेरे ख़ुदा, कनीज़ की इतनी इज्जत···?'

मेरा दिल बाग-बाग हो गया और मैंने उसका दामन चूम लिया।

इसके बाद उसने मेरे गले से लगकर कहा—'मेरे सरताज भला हुज़ूर और मुझ नाचीज़ से इस्तदुआ करें ? मैं तो यों ही हुज़ूर की लौंडी हूँ। बार बार हुज़ूर ऐसा हुक्म सादिर फ़र्माकर मुझ नाचीज़ को क्यों शर्मिन्दा करते हैं।

मैंने कहा—'नहीं, अब मैं न मानूंगा।'

उसने मुझे नशे में जानकर बहलाते हुए-सा जवाब दिया—'मानने की बात नहीं मेरे लिए हुज़ूर का हुक्म ही काफ़ी है।'

लेकिन मैंने उसका रुख भाँप लिया। मुझमें यही ख़ूबी है कि मैं ज़्यादे-से-ज़्यादे शराब पीकर भी बेहोश नहीं होता हूँ। उसके इस भाव पर मैं नाराज़ हो गया और गम्भीर होकर बोला—'शमीम, क्या तुम मुझे बेहोश समझती हो?'

उसने दस्तबस्ता अर्ज़ की—'हर्गिज़ नहीं, सरकार!'

'क्या तुम मेरी बात को एक मदहोश शराबी की बहक समझती हो?'

उसने उसी भाव से जवाब दिया—'हर्गिज़ नहीं, सरकार!'

मैं महसूस कर रहा था कि उसके स्वर की गम्भीरता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है।

'अब इसके क्या मानी हैं कि तुम एक तरफ़ तो मेरी कनीज़ और लौंडी बनती हो, और दूसरी तरफ़ मेरी वह बात मानने से इन्कार करती हो, जिसे मानने में दुनिया की कोई भी औरत अपनी खुशकिस्मती समझेगी? क्या मैं जवान नहीं? क्या मैं ख़ूबसूरत नहीं? क्या मेरे पास किसी चीज़ की कमी···?'

'बस, बस कीजिये—' उसने मानों आहत कण्ठ और दुखित हृदय से जवाब दिया—'मैं ज्यादा बरदाश्त नहीं कर सकती।'

मैं ख़ामोश हो गया। वह रोने लगी और रोते-रोते उसने मेरी गोद में अपना मुँह छिपा लिया। मेरा वह गुस्सा जाने कहाँ काफ़ूर हो गया और सब-कुछ भूलकर उसे शान्त करने की कोशिश में मसरूफ़ हो गया।

आखिर वह शान्त हुई और मैंने उसे अपना यह निश्चय बताया कि आज या तो उसे मुझसे विवाह करने की स्वीकृति देनी होगी, अन्यथा हमारे सम्बन्ध यहीं समाप्त हो जाने चाहियें।

उसने बहुत हुज्जत की और वे अन्तिम शब्द देर तक मेरे कानों में गूँजते रहे, जो उसने क्रोधित होकर कहे। उसका कहना था—'महाराज, एक म्यान में दो तलवारें रहना नामुमकिन हैं।'

भास्करदेव की आत्म-कहानी

मिसेज़ भान को सरकार के हुज़ूर में पेश करने के लिए मुझे जो कौशल रचना पड़ा और उसका जो परिणाम हुआ, वह एक ऐसी घटना थी जिसकी प्रतिक्रिया का दाग़ आज तक मेरी तबियत पर है और रहेगा।

मेरी उतार-चढ़ाव की बातचीत का नतीजा यह हुआ कि मि० भान ने एक दूसरे दिन ख़ुद अपनी स्त्री के हाथ से दरख़्वास्त लिखवाकर हिज़ हाइनेस के सामने पेश करने के लिए मुझे भेज दी। इसी दरख़्वास्त पर उस बेचारे ने मेरे कहे मुताबिक़ यह भी लिखवा दिया कि अगर बन्दी को हुज़ूर के दर्शनों का अवसर प्राप्त हो जाय तो वह अपना परम सौभाग्य समझेगी। यों तो सारी लगी-बँधी बात थी, लेकिन फिर भी मि० भान को तीसरे दिन जवाब मिला कि अभी तो सरकार को फ़ुर्सत नहीं है, लेकिन अगले हफ़्ते में अगर 'इण्टरव्यू' का इन्तज़ाम हो सकेगा तो इत्तला दे दी जायेगी।

मैंने अजीब मुँह बनाकर यह सूचना मि० भान को दे दी। बेचारे का मुँह सूख गया। उसकी 'ट्रेनिंग' इस हद तक मुक़म्मिल हो चुकी थी कि मेरे मुँह बनाने पर उसे यह महसूस हो गया कि हिज़ हाइनेस का रुख उसकी दरख़्वास्त के प्रति क्या है।

एक हफ़्ते बाद मि० भान को इत्तला दी गई कि 'इण्टरव्यू' का समय तो नहीं है, लेकिन उनकी दरख़्वास्त 'एजूकेशन डिपार्टमेंट' में भेज दी गई है। मैंने मि० भान को मुबारकबाद दी और विश्वास दिलाया कि उसकी उम्मीदें बर आने का मौक़ा आ गया। साथ ही मैंने उसके चेहरे के बदलते

हुए रंग को परखने की कोशिश की। मैंने हिज़ हाइनेस को बता दिया था कि उसने 'इण्टरव्यू' की दरख़्वास्त मेरे कहने पर कराई है और इसीलिए 'इण्टरव्यू' नामञ्जूर कर दिया गया था। जो लोग राजे-महाराजों की नौकरी करते हैं, उन्हें मालूम रहता है कि किस बात पर मालिक का रुख क्या रहेगा, और उनकी किसी इच्छा को किस तरीक़े पर पूरी किया जाना चाहिए। आमतौर पर राजे-महाराजे अपने मन की बात साफ़-साफ़ हम लोगों से नहीं कहते। कभी-कभी कहते कुछ हैं, और हमें करना कुछ पड़ता है। कभी-कभी उनके बिना कहे ही हमें ऐसे ख़तरनाक काम कर डालने पड़ते हैं, जितनी सफलता और असफलता, ज़िन्दगी और मौत का पैग़ाम साथ लेकर आती है। इसीलिए मैं समझ गया कि 'इण्टरव्यू' की इन्कारी और दरख़्वास्त का 'एजूकेशनल डिपार्टमेण्ट' में भेजा जाना क्या अर्थ रखता है?

क़िस्सा मुख्तसिर यह कि दस दिन के बाद मिसेज़ भान की नियुक्ति अभीष्ट पद पर हो गई। मि० भान को चारों तरफ़ से बधाइयाँ मिलनी आरम्भ हो गईं। मैंने भी हँसती हुई आँखों से उसे मुबारकबाद दी। मि० भान मुझे धन्यवाद देते-देते न हारते थे। लेकिन मैं उनके धन्यवाद को निहायत लापरवाही से सुनता था और सर हिला देता था।

मि० भान के कान में यह बात डलवाई गई कि उन्हें हिज़ हाइनेस की दयालुता के लिए वास्तव में उनका कृतज्ञ होना चाहिए। वह ग़रीब भागा-भागा मेरे पास आया।

आकर उसने कहा—"भाई, मैं सरकार का बहुत ही मशकूर हूँ?"

मैंने एक सिगरेट उसके हाथ में देकर और दूसरी का कश लगाते हुए नीमबाज़ आँखों से उसकी ओर देखा और कहा—'तुम क्या पागल हो?'

उसने हक्का-बक्का होकर पूछा—'यानी?'

'आखिर उनका कृतज्ञ है कौन नहीं? भई, वह तो हम सबके मालिक ठहरे—उनकी तो सभी पर मेहरबानी है।'

उसने क्षण-भर मेरी तरफ़ ताककर मेरी बात का अर्थ निकालने की कोशिश की।

मैंने कहा—'मैं तुम्हारे दिल की बात समझता हूँ और मुझे इस बात में

कोई एतराज़ नहीं कि तुम सरकार की मेहरबानी के लिए उनकी इज्ज़त करो।'

इस दुरंगी बात ने मि० भान को चक्कर में डाल दिया और उसने हड़बड़ाकर पूछा—'हाँ, मैं यही पूछने आया हूँ।'

'क्या ?'

'यही कि मैं उनके प्रति अपने भाव किस प्रकार प्रकट करूँ ?'

'एक चिट्ठी लिख दो।'

उसने गिड़गिड़ाकर कहा—'यार, मज़मून बना दो।'

मैंने काग़ज़ात के फ़ाइल पलटते हुए कहा—'न भाई, मुझे इतनी फ़ुरसत नहीं है।'

उसने और खुशामदाना लहज़े में कहा—'नहीं भैया, इतना काम तो तुम्हें करना ही होगा।'

मैंने बड़ी अनिच्छा प्रकट करते हुए, उसकी बात मंज़ूर कर ली। पूछा—'क्या लिखूँ ?'

"जो तुम चाहो !"

मैंने झुँझलाहट दिखाते हुए कहा—'कुछ बताओ तो सही !'

मैंने सिरनामा बताया। उसने लिख लिया।

तब उसने एक और फ़िकरा लिखवाया।

मैंने परेशानी का भाव दिखाकर क़लम छोड़ दी।

और उसके कलेजे पर जैसे किसी ने छुरी मार दी।

'क्या हुआ ?'

'हुआ खाक !'

'आखिर !'

'क्या तुम बिल्कुल गधे हो ?'

'क्यों ?'

'अरे बेवकूफ़दास, नौकरी मिली है बीवी को, शुक्रिया तुम अदा कर रहे हो ! वाह रे तुम्हारी अक्ल !'

उसने डरते-डरते कहा—'भई, तो उनकी तरफ से लिख दो।'

मैंने तुनककर कहा—'मैं क्यों लिख दूँ ? तुम लिखवाओगे तो लिख दूँगा।'

उसने जवाब दिया—'हाँ, भाई, मैं ही कहता हूँ, लिख दो, मेहरबानी होगी।'

मैंने सिगरेट का कश खींचकर कुछ सोचा और क़लम फिर उठाई।

उसने सिर्फ़ दो-एक फ़िकरे बताये, बाक़ी खत मैंने खुद लिख दिया। इसके बाद मज़मून उसके हाथ में थमा दिया।

आखिर में आकर वह रुका।

'क्यों—क्या है?'

'कुछ नहीं!'

मैंने आगे झुककर कहा—'इण्टरव्यू···?'

'हाँ; मैं यह सोचता हूँ, कहीं नाराज न हो जायें।'

'क्यों?'

'इण्टरव्यू तो पिछली मर्तबा भी नामञ्जूर हो गया था!'

मैंने कुछ चिन्ता का भाव प्रकट करते हुए कहा—'बात तो ठीक है··· लेकिन कुछ हर्ज नहीं, मैं कोशिश करूँगा · कि इस मर्तबा मञ्जूरी मिल जाय।'

इस पर उसने एक शब्द भी न कहा।

नियत समय पर दरख़्वास्त पेश हो गई और इण्टरव्यू मंजूर हो गया। हिज़ हाइनेस के मिलने का ढँग बड़ा आकर्षक है। जो कोई उनसे मिलने आता है, उसे हम सबसे पहले राजमहल के आलीशान कमरों में से घुमाते हैं और काफ़ी इन्तज़ार के बाद उसे हिज़ हाइनेस के सामने पेश किया जाता है। इस इन्तज़ार और इस चमक-दमक में आने वाले की आधी जान निकल जाती है और हिज़ हाइनेस एक ही मिनट में अपनी बात खत्म करके उसे विदा कर देते हैं। इसके बाद हम उसकी खबर लेते हैं और जो कुछ चाहते हैं, वह करा लेते हैं। इस तरह का फन्देदार जाल बिछाया जाता है, जिसे हम सब मिलकर बिछाते और शिकार को फँसाते हैं और हिज़ हाइनेस इस क्रिया में हमारे सरग़ना रहते हैं।

यही हुआ। मिसेज भान आईं और नज़र देकर चली गईं, मिस्टर भान पर दोबारा बधाइयों की बौछार हुई और मिसेज भान ने अपनी नौकरी पर जाना शुरू कर दिया।

जिस सस्था में मिसेज़ भान को जगह मिली थी, वहाँ पर सब इंतज़ामात मुकम्मिल थे। आठ दिन में उन्हें अभीष्ट रंग में रंग लिया गया। मि० भान का महत्व भी बढ़ने लगा। और उन पर भी रंग चढ़ाने में हम लोगों ने कोई कसर न रक्खी। किसी आदमी की आत्मा की हत्या कर देने को ही हम लोग 'रंग चढ़ाना' कहते हैं। मि० भान की आत्मा भी धीरे-धीरे मर रही थी। उन्हें हिज़ हाइनेस के 'डिनर्स' में शरीक होने की इजाज़त थी। सफ़र और शिकार के वक्त भी कभी-कभी साथ ले लिया जाया करता था। कभी-कभी सरकार के सामने जाने की इजाज़त भी मिलने लगी। छोटा-मोटा काम भी लिया जाने लगा। ग़र्जे कि वह वक्त नज़दीक से नज़दीक लाया जाने लगा, जबकि शिकार पर टूट पड़ने का इन्तज़ाम सोचा गया था।

आखिर हमने रिपोर्ट दी कि वह दिन आ गया। मिसेज़ भान पक चुकी थीं और अकेली आने को तैयार थीं। उन्हें शराब की लत डाल दी गई थी और बादशाहत के ख्वाब दिखाये जाने शुरू हो गये थे। उनके खून में इस बात का इंजेक्शन दे दिया गया था कि राजा ईश्वर है और उसकी चित्तर-सारी में सोना राज्य की किसी भी औरत का सबसे बड़ा सौभाग्य है।

वह एक दिन रात को, क़ीमती-से-कीमती और आकर्षक-से-आकर्षक वस्त्र पहनकर रंगमहल में आई और सुबह तक ठहरी, और उसके बाद···

लेकिन उसके बाद की कहानी में कोई नवीनता इसीलिए नहीं है कि ऐसा सभी के साथ होता है। जिसमें हिज़ हाइनेस ने ज़्यादे दिलचस्पी ली, वह हफ़्तों, महीनों या बरसों उनके काम आती रहती है और जिसे पहली मुलाकात में ही 'अनफ़िट' कर दिया गया, उसके सौभाग्य का चिराग़ उसी दिन बुझ जाता है। मिसेज़ भान आज तक हिज़ हाइनेस की दिलचस्पी क़ायम रक्खे हुए हैं, लेकिन इसके दौरान में जो घटना हुई, वही कहता हूँ।

बजाहिर, पहले दिन का उसका रंगमहल प्रवेश मि० भान की जानकारी में नहीं किया गया था। लेकिन हम लोगों को यह अहसास था कि हम उस पर रंग चढ़ाने में कामयाब हो चुके हैं और उस दिन जब एक ए० डी० सी० को हुक्म दिया गया कि उन्हें किसी हीले से रात के बारह बजे तक घर से गैरहाजिर रक्खा जाय और जब वह उक्त ए० डी० सी० के कथनानुसार उसके साथ बीबी को घर अकेली छोड़कर चले आये तो

हम समझ गये कि उन्होंने सारी बात समझ ली है। यही स्थिति आत्मा के मर जाने की है और हमारे राज्य में आज अधिकांश अफ़सर-अहलकारों की आत्मा इस सम्बन्ध में मर चुकी है।

लेकिन अगले दिन जब हमें यह खबर मिली कि मिसेज़ भान के घर पर एक भयानक काण्ड हो गया है तो आप सच जानिये, दो दिन तक भय, दहशत और आत्म-ग्लानि के मारे मुझसे खाना तक न खाया गया।

और वह भयानक काण्ड यह था कि सुबह जब मिसेज़ भान अपने घर पहुंची तो उन्होंने अपने स्वामी को मकान की कड़ी में फन्दा डालकर फाँसी पर लटकते हुए पाया !!

माँ-महारानी की आत्म-कहानी

उस घटना का परिणाम सुनकर मेरा कलेजा मुँह को आ गया। मुझे सूचना मिली कि दीवान बहादुर को कुत्तों की तरह रातों-रात रियासत की हुदूद से वाहर निकल जाने पर मजबूर किया गया। मुझे यह भी सूचना मिली कि रवाना होने के पहले उन्होंने एक बार मुझ से भेंट करने की भरसक चेष्टा की, लेकिन उन्हें इस प्रयत्न में कामयावी न मिली। दूसरे दिन उनकी एक चिट्ठी चुपचाप मेरे पास पहुँचाई गई। उसका मज़मून यह था—

माँ-महारानी, 'मैं जा रहा हूँ, सम्भवतः सदा के लिए आलम नगर का परित्याग करके जा रहा हूँ। आपको सूचना मिल गई होगी कि हुज़ूर साहेव के आदेशानुसार मुझे तुरन्त रियासत की सीमा से बाहर होने को मजबूर होना पड़ा है। उनकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

'मैंने अपने जीवन का सबसे बड़ा हिस्सा आलमनगर के राज-परिवार के श्री चरणों में व्यतीत किया है। मेरी अभिलाषा थी कि बुढ़ापे के बाक़ी जर्जर दिन भी इन्हीं चरणों की सेवा में बीत जायें; या प्रतिष्ठा के साथ मुझे विदा करके यह अवसर दिया जाय कि मैं बाक़ी जीवन को सार्थक करने की चेष्टा में प्रवृत्त हो सकूँ। मेरी पहली अभिलाषा पूरी नहीं हो सकी; नहीं जानता कि दूसरी इच्छा सफल होगी या नहीं।

मैंने आजीवन इस राज्य और राज-परिवार की शुभकामना की है और मरते-दम तक मेरी यही कामना चिरस्थायी रहेगी। यदि कभी सेवक से महारानी के प्रति कोई ज्ञाताज्ञात अपराध बन पड़ा हो तो क्षमा किया जाये।

अन्तिम बार महारानी जी के श्री चरणों में मेरा एक निवेदन है। और वह यह कि अपने तेजोमय व्यक्तित्व द्वारा महारानीजी पवित्र राज-सिंहासन की श्री-रक्षा का प्रयत्न करती रहें और श्री हुजूर साहेब की प्रत्येक प्रकार के अनिष्टों से रक्षा करने का यत्न करती रहें।

जीवन में जब, जहाँ जो कुछ सेवा सेवक से हो सकेगी, उसमें सेवक अपना परम सौभाग्य मानेगा।

'श्री महारानी का तुच्छ सेवक,—अमरदास।'

मैंने इस पत्र को पढ़ा तो मेरी आँखें आँसुओं से भर आईं। मैंने मन-ही-मन सोचा कि मैं धन्य थी, जिसके स्वामी और पुत्र को ऐसे स्वामि-भक्त सेवक की सेवायें प्राप्त थीं और मुझे धिक्कार है कि ऐसी महान् आत्मा की प्रतिष्ठा-रक्षा के लिए मैं कुछ भी न कर पाई! हायरी स्त्री जाति! मेरा बचपन का वह सारा दर्प और अहंकार दूर खड़ा विद्रूप करता था। जवानी के वे उमंग भरे दिन मेरी छाती में शूल की तरह चुभते थे, जब क्षण भर के कोप-नाटक की मदद से मैं अपने स्वामी से बड़े-से-बड़ा कार्य करा लेती थी। और अन्त में वैधव्य की वह बेबस घड़ी मेरे सामने दैत्य का रूप धारण करके खड़ी हो गई, जिसने मेरे हाथ-पैरों और शरीर पर लाचारी की हथकड़ियाँ डाल दी थीं।

इससे पहले ही खबर आ चुकी थी कि शेष सभी मन्त्रियों को सरकारी आज्ञा के अनुसार तलब किया गया था और कुछ को तो माफ़ी दे दी गई थी और बाक़ी सबको अपमानित करके रियासत बदर कर दिया गया। मैं इन तमाम समाचारों को सुन-सुनकर परेशान थी, लेकिन मुझे आशा थी कि दीवानबहादुर की गत सेवाओं और उनकी बुजुर्गी का लिहाज़ रक्खा जायेगा। माणिक सरदार के बारे में मैं क़रीब-करीब निश्चिन्त थी। वह हमारी रियासत का एक मुख्य जागीरदार था और उसके पीछे तमाम जागीरदारों और ठिकानेदारों का बल था। इसके अतिरिक्त राज्य कर्मचारियों का भी एक बड़ा भारी दल उसके पीछे था। यों उसकी जादू भरी आँखें भी कम ग़ज़ब ढाने वाली न थीं। मुझे विश्वास था कि उस पर हाथ डालने का दुस्साहस न किया जायगा। लेकिन मेरे पाठक जानते हैं कि माणिक सरदार के हिताहित में मेरी ज्यादे दिलचस्पी नहीं है। मैं तो उसे

सहायता देने और उसकी सहायता लेने को विवश हो जाती हूँ। कह चुकी हूँ कि एक अजब तरह की बिजली उसे देखते ही मेरे शरीर में उत्पन्न हो जाती है और वह जो चाहता है, मुझसे करा ले जाता है। इसलिए अन्य मन्त्रियों का निष्कासन मुझे साफ़-साफ़ उसके बल का आभास देता था। मैं प्रत्यक्ष देख रही थी कि परिणामतः माणिक सरदार का वैभव मुझे और समस्त राज्य को अधिकाधिक ग्रसित करके छोड़ेगा। लेकिन भावी को कौन मेट सकता है ?

मुझे महमूस होने लगा कि मुझ पर भी राज कोप हुआ है। मेरा निवास-स्थान बदल दिया गया। मेरे नौकर-चाकरों में बेहद कमी कर दी गई। घूमने जाने पर रोक तो न लगी, लेकिन सतर्कता बढ़ गई। पहरेदार सब बदल दिए गये। मिलने-जुलने के लिए आने वालों पर पाबन्दियाँ आयद कर दी गईं। चिट्ठी-पत्री पर सेन्सर बैठ गया। मेरे पर्सनल सेक्रेटरी साहब तक का रुख बदल गया। मैंने यह सारे तौर देखे तो एक बार सर पीट लिया।

मुझे खबर मिली कि माणिक सरदार पर कोई 'एक्शन' नहीं लिया गया और उनके तमाम हक़ूक बदस्तूर क़ायम रहे। मुझे यही आशा थी। लेकिन इस खबर से मुझे कोई खुशी न हुई।

पन्द्रह दिन बाद एक दिन मुझे खबर मिली कि माणिक-सरदार मुझे मुजरा अर्ज़ करने आने वाले हैं। मैं आदमी की सूरत के लिए भटकने लगी थी। मैंने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

माणिक-सरदार आया। उसके चेहरे की भाव भंगी और शरीर के लिबास में कोई परिवर्तन न था। मैंने ठण्डे भाव से उसका अभिवादन ग्रहण किया। उसने आगे बढ़कर नियमानुसार मेरा चरण स्पर्श करने की चेष्टा की और सर झुकाकर बैठ गया।

'मुझे खेद है कि मैं इससे पूर्व माँ-महारानी का स्वास्थ्य-समाचार जानने के लिए हाजिर न हो सका।'

मैंने उसकी कैफ़ियत पर सन्तोष प्रकट क़रने का भाव दिखाया।

'परिवर्तित हालत में मेरी मसरूफ़ियतें किस क़दर बढ़ गई हैं, इसका अन्दाज़ा महारानीजी ने किया होगा !'

कहते-कहते उसके ओठों के किनारों से फूटती हुई मुस्कराहट पर मेरी नज़र पड़ गई। उसके इस अहंकार पर मेरी आत्मा कराह उठी।

'श्री हुजूर साहेब की आज्ञानुसार तमाम 'पोर्ट-फ़ोलियो' बदल दिये गये हैं। यह सब काम मेरी ही मदद से हुआ है। महारानीजी तो जानती ही हैं कि इन कार्यों में किस क़दर परिश्रम और समय व्यतीत होता है !'

मैंने स्वीकृति-सूचक सर हिलाया !

'अब कहीं छुट्टी मिली है !' माणिक सरदार ने दर्प के साथ लम्बी साँस ली और कहा—'महारानीजी को यह जानकर खुशी होगी कि तमाम नये मन्त्री भी पूर्ववत् महारानीजी के चरणों के फ़र्माबर्दार दास बना लिये गये हैं।'

मैंने चिहुँककर कहा—'क्या कहा ?'

माणिक सरदार ने अधिक उत्साह के साथ बयान किया—'नये मन्त्री-मण्डल के तमाम सदस्य यों हुजूर साहेब के विश्वस्त आदमी हैं, लेकिन मेरा ऐसा विश्वास है कि उन सभी की भक्ति पहले राज-सिंहासन और तब उनके प्रति है।'

मैंने अब भी यह प्रकट किया कि मैं उसकी बात का अभिप्राय समझ न सकी।

उसने फिर कहा—'हुजूर साहेब की हर्कतों पर रोक-थाम करने वाला कोई नहीं है, माँ-महारानी, इसलिये अब उनकी दिनचर्या एतराज की हदें पार करती जा रही है। मैं उनके इस पतन पर किस क़दर दुःखी हूँ, यह माँ-महारानी से छिपा नहीं हैं। पिछले मन्त्रिमण्डल पर हुजूर साहेब की खफ़गी का यही कारण तो था कि हुज़ूर साहेब अपनी नुक्ता-चीनी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उन्हें उम्मीद थी कि नये लोग उनके कारनामों पर कान-पूँछ न हिलायेंगे—अपने भरसक उन्होंने नये चुनाव में हद से ज़्यादे बारीकी बरती है, लेकिन···मेरा नाम माणिक-सरदार हैं माँ-महारानी, और मुझे आपके श्री चरणों का आशीर्वाद प्राप्त है।'

मैं उसकी उन जादू-भरी आँखों और इन लच्छेदार बातों में उलझकर उत्साहित हो उठी।

'मैंने सबको अपने पक्ष में गाँठ लिया है माँ-महारानी', माणिक-सरदार

ने कहा—'और आपको यह विश्वास दिलाने का मेरे पास पर्याप्त प्रमाण है कि नये मन्त्रि-मण्डल के सदस्य पहले से भी अधिक आपके मददगार हैं।'

और इसके साथ-ही-साथ साँप की तरह पलटा खाकर माणिक-सरदार ने कहा—'महारानीजी ने कुछ और भी सुना ?'

मैंने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर ताक दिया।

'एक बहुत बड़ी दुर्घटना घटने की तैयारियाँ हो रही हैं ?'

मैंने चिहुँककर पूछा—'वह क्या ?'

वह क्षण-भर को ठिठक गया।

मेरा कौतूहल और बढ़ा।

'महारानी त्रिपुरी को विष देने की कोशिशें की जा रही हैं !'

'क्या कहा ???' मेरा सारा मन प्रश्नसूचक बनकर पूछ बैठा।

'जी हाँ, राज-सिंहासन पर एक बदकार रण्डी को बैठाने की तैयारियाँ हैं !!"

'सच ?' उसी साँस में और उसी भाव में मैं पूछ बैठी।

'जी हाँ, सच !'

उस ग़रीब और मासूम लड़की का भोला-भाला मुखड़ा मेरे मन की आँखों के आगे नाच गया।

'यह लीलायें हैं हमारे हुजूर साहेब की !' माणिक-सरदार ने कलेजे का सारा क्रोध जैसे संजीदगी के पत्थर के नीचे दबाकर कहा—'कहा जाता है कि जब उस चाण्डालिनी ने शादी करने की यह शर्त रक्खी, तो हुजूर साहेब इस महा-पातक के लिए तैयार हो गए हैं।'

मेरा ऊपर का दम ऊपर और नीचे-का-नीचे रह गया।

हे मेरे भगवान् ! इस महान् वैभवशाली साम्राज्य का क्या अन्त होने जा रहा है !!!

रानी त्रिपुरी की आत्म-कहानी

धीरे-धीरे उस ख़बर की पुष्टि हो गई। पार्वती की मदद से मैंने तत्सम्बन्धी समाचार का समस्त भेद जान लिया। जब मुझे यह जान पड़ा कि मेरे स्वामी उस नाचीज़ मुसलमान रण्डी पर अपना तन-मन-धन सभी कुछ वार बैठे हैं तो मेरे शोक और दुःख की सीमा न रही। मुझे यह भी समाचार मिलता था कि बम्बई से अकसर उसे मेरे स्वामी की तफ़रीह के लिए आलमनगर तलब किया जाता है और मेरे स्वामी दो-चार दिन के ऐश के एवज़ में हजारों रुपया उसकी नज़र कर देते हैं। मुझे यह भी पता लगा कि औरत यों सुन्दर है, लेकिन बेहद मक्कार और भयंकर। आखिर पार्वती ने एक दिन आकर मुझे यह खबर भी दी कि उस रण्डी ने मेरे स्वामी की महारानी बनना इस शर्त पर स्वीकार किया है कि मेरा ख़ात्मा कर दिया जाय और यह भी कि मेरे स्वामी अब मौक़ा पाते ही मुझे या तो ज़हर देकर अथवा मोटर की भिड़न्त में या और किसी निरापद उपाय से खत्म करा देना चाहते हैं।

मैंने यह खबर सुनी तो अपनी अबोध कन्या को छाती से लगाकर मैं सर से पैर तक सिहर उठी। मुझे मरने का क़तई भय नहीं था, बल्कि मैं तो खुद दिन-रात मौत की भीख माँगा करती थी—लेकिन अपनी फूल-सी सुकुमारी कन्या का मुँह देख-देखकर अभी तक जीती थी। मैं जानती थी कि मेरे बाद इस कन्या का कोई पुरसाँ-हाल न रहेगा और मैं मर गई तो उसे भी अल्पआयु में ही मौत के मुँह में पड़ जाने को लाचार होना पड़ेगा।

मैंने मन-ही-मन कहा—'हाय मेरे राम, क्या हम माँ-बेटियों का आखिर यह अन्त होने जा रहा है!'

और इसके साथ ही जब मुझे यह खयाल आया कि किस नाचीज के

इशारे पर मेरी मौत का खेल खेलने की तैयारी की जा रही है तो मेरा मर्यादा-जनित दर्प सिहरकर खड़ा हो गया और मैंने यह निश्चय किया कि मुझे अपनी पूरी शक्ति लगाकर उस चाण्डालिनी के इरादों को निष्फल करना होगा।

मेरे पाठक, क्या आप मेरी बेचारगी का अहसास कर सकते हैं और क्या उस असमर्थता की कल्पना करने की शक्ति आप में है, जो एक देशी राज्य के निवासी को अनुभव करनी पड़ती है ? देशी राज्यों में महज एक शक्ति की इच्छा ही क़ानून है और स्थिति की विचित्रता देखिए कि इस शक्ति के आगे कहीं किसी तरह की कोई अपील नहीं है। राजा चाहे तो किसी को बेक़ुसूर फाँसी की सज़ा तक देदे, लेकिन संसार का कोई न्यायालय उसकी इस हर्कत से उसे नहीं रोक सकता। और राजा के अतिरिक्त राज्य के प्रत्येक प्राणी की हैसियत केवल राजा की प्रसन्नता पर निर्भर है। वह चाहे तो क्षण-के-क्षण में उसी व्यक्ति को रसातल में पहुँचा दे सकता है, जिसकी मर्यादा राज्य में आज हिमालय-सी ऊँची है। अपने वैवाहिक जीवन के गत वर्षों में ही मैंने अनेक ऐसी घटनायें देखीं, जिनमें राज्य के बड़े-से-बड़े अधिकारी को केवल मेरे स्वामी की कोप-दृष्टि के कारण पल-भर में धूल-धूसरित हो जाना पड़ा। अभी हाल ही में दीवानबहादुर अमरदास की घटना एक ऐसी नज़ीर है । उन्होंने आजीवन हमारे राज-परिवार की सेवा की, मेरे स्वामी के प्राणों की रक्षा अपने प्राणों को खतरे में डाल-डालकर की, बेईमानी के पैसे को हराम समझा, दोस्त-दुश्मन सब उनकी वाह-वाह करते थे, लेकिन दुश्मनों ने मेरे स्वामी के कान भर-भरकर कुछ ऐसी पट्टी पढ़ाई कि रातों-रार उन्हें कुत्ते की तरह हमारी रियासत से बाहर हो जाना पड़ा। मुझे खबर मिली थी कि मेरे स्वामी के कुलक्षण देख-देखकर राजमाता ने वॉयसरॉय के पास एक खत भेजा था, जिस पर राज्य के तमाम मन्त्रियों के हस्ताक्षर थे और जिसमें प्रार्थना की गई थी कि मेरे स्वामी को सिंहासन-च्युत करके कुछ वर्षों के लिए राजमाता को सिंहासनारूढ़ किया जाय। इस खत का पता मेरे स्वामी को लग गया और फल-स्वरूप राज्य के प्रायः तमाम मन्त्रियों और राज-माता को ज़लील किया गया और बहुत-से आदमियों को रियासत-बदर कर दिया गया, जिनमें से दीवानबहादुर अमरदास और उनकी पार्टी के कुछ छोटे-मोटे व्यक्ति उल्लेखनीय हैं।

तो मैं एक देशी राज्य के एक निवासी की बेचारगी की चर्चा कर रही

थी। आम तौर पर राज्य-शासन में लगे हुए लोगों की स्थिति की सारी मजबूती का दार-मदार उनके आस-पास के लोगों की भक्ति पर ही होता है और उनकी स्थिति की मजबूती कुछ हद तक इस बात पर भी निर्भर होती है कि राजा के निजी तथा पारिवारिक भेद किस हद तक उन्हें मालूम हैं। यही एक ऐसी बात है, जिसके कारण राजा अपने सहकारियों की मनो-भावनाओं की थोड़ी-बहुत क़द्र करता है, अन्यथा कर्मचारी का कोई गुण राज-कोप के समय उसकी इम्दाद नहीं कर सकता।

मैं अबला ठहरी। मुझे सिवाय अपने माँ-बाप के और किसी का सहारा न था। मैं न तो भारत-सरकार तक ही पहुँच सकती थी और न राज्य में ही मेरा कोई सहारा था। देशी राज्यों में इन्सानियत नाम की चीज आम तौर पर देखने को नहीं मिलती। लोगों की मनोवृत्ति कुछ इस ढंग पर विकृत हो जाती है कि हरेक आदमी अपने-अपने स्वार्थ की बात सोचता है। हरेक व्यक्ति को अपने अस्तित्व की चिन्ता इस क़दर भयानक रूप से खाये जाती है कि उनके दिल और दिमाग़ की सारी काबिलियत अपनी हस्ती को अक्षुण्ण बनाये रखने में खर्च हो जाती है। आप अगर यह आशा रक्खें कि देशी राज्य का कोई व्यक्ति महज आपकी दयार्द्रता से द्रवित होकर आपके लिए कोई प्रयत्न या कोई त्याग करने को कभी भी तैयार हो सकेगा तो यह असम्भव है। यहाँ तो प्रत्येक प्राणी अपनी ग़र्ज़ का दीवाना है। लोगों के मनोभाव इतने पतित हो जाते हैं कि जीवन की महानताओं का उनमें प्रायः लोप हो जाता है। यही कारण है कि आप देशी राज्यों के निवासियों को अन्य आजाद देशों तथा अन्य ब्रिटिश-प्रान्तीय क्षेत्रों के निवासियों की निस्वत अधिक कमीने और ओछे पायेंगे। और उनकी प्रकृति के इस कमीनेपन और ओछेपन के फलस्वरूप उनमें जिन-जिन दोषों का प्रादुर्भाव हो जाना अनिवार्य है, वे पैदा हो जाते हैं।

मुझ से, महज उन दास-दासियों को छोड़कर जो थोड़े-बहुत इनाम पर ही अपना ईमान बेचने को तैयार हैं, और किसी का कोई स्वार्थ न सधता था; क्योंकि यह बात सर्व-विदित हो चुकी थी कि मुझे अपने स्वामी का प्रेम प्राप्त नहीं है और यह भी कि मेरे स्वामी मुझे एक बलाये-नागहानी समझते हैं। इसीलिए इस राज्य में मेरा कोई मजबूत सहारा न था।

अतएव जब मुझे अपने स्वामी के निश्चय का पता लगा तो एक बार

मैं छटपटाकर रह गई और अपनी सुकुमारी का मुख देखकर मुझे चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। और जब मुझे यह ध्यान आया कि एक कमीनी कुतिया के इशारे पर मुझे मेरी जान से हाथ धोने के लिए मजबूर किया जा रहा है तो अपमान से मेरा हृदय दग्ध हो उठा।

मैंने कोई उपाय न देखकर अपने पिताजी को पत्र लिख दिया, जिसमें यह सारी दास्तान बयान की। यह पत्र मैंने अपने एक अत्यन्त विश्वस्त कर्मचारी द्वारा भेजा और उसे आदेश दिया कि वह पिताजी का उत्तर अपने साथ ही लेता आवे।

उसने कोई लिखित उत्तर लाकर नहीं दिया। केवल एक मौखिक सन्देश था और वह यह कि वे शीघ्र ही स्वयं यहाँ पधार रहे हैं और यह कि तब तक मुझे धैर्य्यपूर्वक अपने प्राणों की रक्षा करते रहना चाहिए।

इस सन्देश से मुझे कुछ साहस बँधा। मुझे प्राणों का मोह न था, लेकिन अपनी बच्ची और अपने आत्म-गौरव का ख्याल था। मैं एक हिन्दू-नारी हूँ और पति के कल्याणार्थ सदा बड़े-से-बड़ा त्याग करने के लिए तैयार हूँ। लेकिन हर्गिज यह बर्दाशत नहीं कर सकती कि एक पापिष्ठा के कुचक्रों के फल-स्वरूप मेरी मर्यादा का अपमान किया जाय। मैं एक रानी हूँ।

दस दिन बाद पिताजी आये। उनके आने की खबर ने राजमहल में एक हल्की-सी हलचल पैदा करदी थी। मेरे दास-दासियों की संख्या में वृद्धि कर दी गई थी और मेरी खातिर-तवाज; भी बढ़ गई थी। जिस दिन पिताजी आने वाले थे, उससे दो दिन पहले खुद मेरे स्वामी भी मुझे दर्शन देने आये।

जब वे आये तो मैंने आहत अभिमान के साथ उनका स्वागत किया। उनका चेहरा शराब के अनियमित प्रयोग के कारण स्याह पड़ गया था और आँखें निरन्तर दुराचार-वृत्ति के कारण गढ़ों में धँसने लगी थीं। विवाह से पहले मैंने बम्बई में उनके जिस देव-रूप के दर्शन किए थे, उसके साथ उनकी वर्तमात चेष्टा का मिलान करके मैं शोक व परिताप से भर गई! उनकी सूरत एक महापतित दुराचारी की सूरत थी और उनकी भाव-भंगी से शोहदापन टपकता था। मैंने भर-नजर उन्हें ताका और सर झुका लिया। मैंने महसूस किया कि मेरे सुख की दुनिया वीरान हो चुकी है।

मैंने उन्हें बैठाया और मैं उनके चरणों के पास बैठ गई।

'आप अच्छी हैं ?' पहले उन्होंने ही प्रश्न किया।

मैं उत्तर न दे सकी। मेरा कलेजा मुँह को आ रहा था।

उन्होंने अपने रूखे कण्ठ-स्वर को यथा-साध्य कोमल बनाकर पूछा—'आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं ?'

मेरी आँखों से आँसू की दो बूँदें टपक गईं।

उनकी नज़र से यह छुपा न रहा। शायद मेरी इस हर्कत ने उनके मन की परेशानी को और भी बढ़ा दिया। मैंने महसूस किया कि वे उठने का उपक्रम कर रहे हैं, लेकिन उठ नहीं पा रहे हैं।

'क्या आपको कोई कष्ट है !' उन्होंने फिर प्रश्न किया।

'जी नहीं !' रुँधे हुए कण्ठ से मैंने जवाब दिया।

'तब क्यों रोती हो ?'

मेरी हिड़की बँध गई और मेरी आंखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई।

उन्होंने कुर्सी से उठकर मेरा हाथ पकड़ा और मुझे उठाकर एक सोफ़े पर बैठाया। तब खुद भी मेरे बराबर बैठ गये।

मैंने बरबस उनके कन्धे पर सर रख दिया और मेरी आँखों का पानी अनवरत गति से उनके वस्त्रों को भिगोने लगा।

उन्होंने कठपुतली की तरह मेरा सर पकड़कर अपने सीने पर धर लिया और धीरे-धीरे अपना हाथ मेरे बालों में फेरने लगे।

मैं अपनी महीनों और वर्षों की वेदना को क्षण-भर के लिए भूलकर इस नवोदित आनन्द में विभोर हो गई।

जब स्वस्थ हुई तो उन्होंने पूछा—'क्या तुम्हें बहुत कष्ट है ?'

मेरे मुँह से फिर निकला—'नहीं।'

उन्होंने कहा—'तब क्यों रोती हो ?'

मैंने अपनी आँखें पोंछ लीं और कहा—'यह मेरी ग़लती है।'

वे क्षण-भर कुछ सोचते रहे और तब भावावेश में आकर बोल उठे—'त्रिपुरी, मैं बड़ा पापिष्ठ हूँ।'

मैंने चौंककर सर उठाया। उनकी आँखें आँसुओं से भर रही थीं।

माणिक सरदार की आत्म-कहानी

मेरे पिछले बयान से कहीं आप यह तो नहीं समझ बैठे कि हिज़ हाइनेस की आँखों के उन आंसुओं में मैंने किसी महानता का आभास पाया या इस ग़लत-फ़हमी ने मेरे मन पर कोई असर डाला। हर्गिज नहीं, मैं ऐसी कच्ची गोलियां खेला हुआ आदमी नहीं हूँ। मैं इस लड़के की कमज़ोरी से अच्छी तरह वाकिफ़ हूँ और सच तो यह है कि बहुत कम इन्सान दुनिया में ऐसे हैं, जो शराब का इस क़दर प्रयोग करके कायरता से वच सकें। हमारे तमाम वे नरेश, जो शराब में डूबे रहते हैं, कायरता की प्रतिमूर्ति हैं। न तो वे कोई बड़ा भारी आघात सह सकते हैं और न ही उनमें साहस या पुरुषार्थ शेष रहता है। इसीलिए तो राजे-महा-राजे आम तौर पर बाहरी आदमियों से मिलने में घबराते हैं। इसे उनका बड़प्पन समझा जाता है। और अगर वे किसी मजबूत शख्सियत के सामने पड़ गये तो किसी काम के लिए उनसे 'हाँ' करा लेना कोई वड़ी बात नहीं है। इसे वे लोग बड़प्पन या 'ग्रेस' के नाम से पुकारते हैं।

इसीलिए तो मैं चाहता हूँ कि इस विशाल राज्य का सिंहासन इस तरह के आदमी के हाथों से निकालकर किसी ऐसी हस्ती के तहत में आ जाये, जिसकी नसों में नया खून बहता है, जो कायरों की लड़ी की कड़ी नहीं है, जिसने अपने बाहु-बल और पुरुषार्थ से दुनिया में अपने लिए स्थान बनाया है और जो अपने प्रताप से एक बार—इन राजनैतिक जटिलताओं की मौजूदगी में भी—दिग्दगन्त को कम्पायमान् कर देने की अभिलाषा और

क्षमता रखता है। मैं महसूस करता हूँ कि मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ।

बम्बई का मेरा चर उस फिल्म एक्ट्रेस के साथ अपने गहरे ताल्लुक़ात कर चुका है, जिसे महारानी बनाने का हमारे महाराज तहय्या किए बैठे हैं। मुझे यह भी पता चल चुका है कि रानी त्रिपुरी को ज़हर दिए जाने की मुकम्मिल तैयारी हो चुकी है। बेचारी ग़रीब औरत ! उस पर मुझे तरस तो आता है, लेकिन बेहतर है कि उसके ख़ून में मुझे खुद अपने हाथ न रँगने पड़ें। मुझे यह भी खबर मिली थी कि उसने खत लिखकर अपने बाप को बुलाया है और वह आने ही वाला है। लेकिन वह बेचारा क्या खाकर उसकी जान बचाएगा ?

मुझे एक व्यक्ति का डर है। और वह माँ-महारानी है। वह ग़रीब यों बराबर मेरी मदद किए जा रही है और मैंने उससे जब जो चाहा, करा लिया, लेकिन मैं खूब जानता हूँ कि उसके कलेजे की आखिरी तह में मेरे प्रति कितनी भयानक शंका चुपचाप जगह जमाये बैठी है। मैं यह भी जानता हूँ कि मेरी इम्दाद करने में उसका उद्देश्य क्या है। वह बड़ी मज़बूत शख़्सियत और ज़बर्दस्त क़ाबिलियत की औरत है। अपने पुत्र के दुर्व्यवहार और अपमान की ज्वाला उसे दग्ध किए दे रही है और वह नहीं चाहती कि जिस राज्य पर वह रानी बनकर रही है, वहीं उसे अब नौकरानियों और आश्रितों की नापाक न्दिगी ज़िबताने की जरूरत पड़े। वह इस तख़्त पर अपने जीते-जी किसी और का अधिकार नहीं देख सकती।

लेकिन वह खूब समझती है कि मैं जो उसकी मदद कर रहा हूँ, तो मेरा क्या मतलब आखिर इस तमाम दर्देसिरी में हो सकता है ! देशी रियासतों के जिन तबक़ों की बात आप सुन रहे हैं, वहाँ 'परोपकार' नाम की तो कोई चीज है ही नहीं। वहाँ जो कुछ किया जाता है, किसी मतलब से, किसी खास ग़र्ज से, किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर किया जाता है। जो अपने असली उद्देश्य को जितना छुपाकर पेश कर सकता है, वह उतना ही चतुर समझा जाता है। यह आदत हम लोगों में अँग्रेजों से आई है। यह जाति संसार की सबसे अधिक मक्कार जाति है और उसकी सबसे बड़ी खूबी है कि वह न सिर्फ़ दुनिया-भर से मक्कारी का व्यवहार करती है, बल्कि खुद अपने दोस्तों, सम्बन्धियों, स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से, यहाँ

तक कि खुद अपने-आपसे भी मक्कारी का व्यवहार करती है। हम रियासती लोगों ने अंग्रेज जाति के तमाम दुर्गुण अपने भीतर भर लिए हैं। इसलिये हम लोग एक-दूसरे को धोखा देते रहते हैं और इस धोखे की तह में पहुँचने की कोशिश भी करते रहते हैं।

लेकिन आप यक़ीन रखिये कि मैं ऐसा आदमी नहीं हूँ। मैं एक खरा, स्पष्टवादी व्यक्ति हूँ, लेकिन परिस्थितियों के कारण, जिस तरह के आदमी से मेरा वास्ता पड़ता है; उसी तरह पर उसे निभा देने के लिए मजबूर होता हूँ।

उस दिन मेरे एक चर ने सहसा मुझे आकर सूचना दी कि महारानी को जहर दिये जाने का कार्य महाराज ने अपने एक अत्यन्त विश्वस्त गुप्तचर को सौंपा है। मैं इस खबर की भनक तो बहुत दिनों से सुन ही रहा था। आज की पुष्टि ने मेरे हृदय में एक हल्की गुदगुदी उठा दी।

मैंने अपने बम्बई-स्थित चर को तार देकर अपने पास बुलाया और उसे आवश्यक निर्देश दे दिये। उसने मुझे बताया कि बम्बई की उस गोरी को क़रीब-क़रीब यह निश्चय हो चुका है कि वह शीघ्र ही आलमनगर की महारानी बनने वाली है। उसने मुझे यह भी बताया कि वह महाराज से इस बात पर अपनी रज़ामन्दी जाहिर कर चुकी है कि शादी के पहले वह अपने-आपको हिन्दू-धर्म में दीक्षित कर लेगी। मुझे यह भी ज्ञात था कि महाराज इस बात की पूरी कोशिश कर रहे हैं कि पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट की ओर से इस विवाह पर कोई एतराज़ न उठाया जाय। मुझे महाराज के तमाम प्रयत्नों का रत्ती-रत्ती पता मिलता रहता था।

लेकिन एक दिन सुबह-सुबह मुझे जब खबर मिली कि हमारे महाराज के विचारों और व्यवहार में एकदम ज़मीन-आसमान का अन्तर आ गया है और यह भी कि कहाँ तो महारानी को जहर दिये जाने की तैयारी थी और कहाँ महाराज ने उनकी खातिरदारी इस क़दर बढ़ा दी, जितनी शादी होने के बाद भी न हुई थी, तो मैं हैरान रह गया। पहले तो मुझे खयाल हुआ कि चूँकि महारानी का बाप शीघ्र ही आने वाला है, इसलिए उनको धोखा देने के लिए ही यह तमाम कार्रवाई की गई है, लेकिन जब दो-तीन दिन के बाद वह आया भी और चला भी गया, लेकिन खातिर-तवाज में किसी

तरह का फ़र्क़ न पड़ा तो मेरी हैरानी बढ़ती ही गई। मैंने यह भी सुना कि महाराज ने न-सिर्फ शराब पीना और औरतों के साथ रास-लीला रचना एकदम बन्द कर दिया है, बल्कि अब उनका अधिकांश वक्त धर्म-ध्यान में कटने लगा है—तो मैं इस परिवर्तन का ठीक-ठीक अन्दाजा लगा न सका। मैंने यह भी सुना कि महाराज के आमन्त्रण पर देश-भर के प्रसिद्ध संन्यासी, विद्वान् और धर्म-गुरु आने लगे हैं और उनका काफ़ी समय इन लोगों के साथ धर्म-चर्चा करने में बीत जाता है।

मैंने गहराई से इस मामले की छानबीन की। जब पता लगा कि इस मामले में और किसी के हाथ ने काम नहीं किया, बल्कि खुद महाराज की तबियत की प्रतिक्रिया के कारण यह परिवर्तन अमल में आया है तो मैं इतना हँसा—इतना हँसा—इतना हँसा कि कुछ न पूछिये! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इस तरह के परिवर्तनों की मियाद कितनी होती है और इस मियाद को कम-से-कम तर बनाना कितना आसान है!

मैंने निश्चय किया कि मेरे पास समय खोने के लिए नहीं है और मुझे इस नशे का असर जल्द-से-जल्द मिटाकर महाराज को फिर उसी रास्ते पर लाने की जरूरत है।

महाराज के 'पर्सनल स्टाफ़' के कुछ लोग मेरे विश्वस्त थे। कभी-कभी मेरे बहुत-से काम उन लोगों की मदद से निकलते थे। मैंने पहले तो अपने इन्हीं सूत्रों द्वारा महाराज की वर्तमान दिनचर्या मालूम की, इसके बाद यह पता लगाया कि आजकल उनके पास 'पर्सनल स्टाफ़' के किन-किन लोगों की पहुँच है और सबके बाद मैंने यह जानने की कोशिश की कि बम्बई की गोरी के प्रति महाराज की भावनायें आजकल क्या हैं!

मुझे पता लगा कि पिछले कई सप्ताहों के 'मूड' में महाराज शराब को तो तिलांजलि दे ही बैठे हैं, अपनी दिल्ली, मेरठ पूना और आगरा की तमाम चहेतियों को भी भूल गये हैं बम्बई की उस गोरी के खतों का कोई जवाब जब इधर से नहीं गया तो उसका एक आदमी हफ़्ता भर से आकर यहाँ पड़ा हुआ है?

बस, इतना समाचार मेरे मतलब के लिए काफ़ी था!

हिज़-हाइनेस की आत्म-कहानी

उसका आदमी हफ़्तों से आकर आलमनगर में पड़ा है और भास्कर ने कई बार उसकी अर्जी मेरे सामने पेश की है। वह खुद मेरे हुजूर में पेश होकर 'उसका' खत मुझे देना चाहता है। भास्कर ने हरचन्द कोशिश की कि वह ख़त उसे दे दे, लेकिन वह आदमी शमीम का सबसे पक्का आदमी है। दुनिया की नज़रों में तो वह उसका भाई है, लेकिन वास्तव में संरक्षक है। रण्डियों की दुनिया के जीव जानते हैं कि उनकी जिन्दगी एक बड़ी बदनसीब कहानी है, जिसमें, दुनिया उनकी इज़्जत को कुँजड़े की दूकान पर बिकने वाली शाक-भाजी से ज़्यादे महत्व नहीं देती। यों उनकी रक्षा के लिए भी नागरिक क़ानून बनाया गया है, लेकिन दुनिया के सफ़ेदपोश गुण्डों से उनकी रक्षा करने का कोई साधन नहीं है। इसीलिए उन्हें अपनी रक्षा का इन्तज़ाम खुद करना पड़ता है और अपने साथ कुछ ऐसे आदमी रखने पड़ते हैं, जो जाहिरा तो तबला या सारंगी बजाते हैं, परन्तु वास्तव में खूँख़्वार-से खूँख़्वार व्यक्ति से भी उनकी रक्षा करने की सामर्थ्य रखते हैं। वह आदमी एक ऐसा ही आदमी था और शमीम उसे 'बड़ा उस्ताद' कहा करती थी।

मुझ पर अभी तक धार्मिकता के इस भाव का असर था और अब मैं नित्य अपनी रानी के साथ कुछ समय बिताया करता था। शराब तो छूट ही गई थी, परस्त्री-गमन भी छुट गया था। मेरा नया रंगमहल अब हफ़्तों से सूना पड़ा था। राज-काज में भी मेरी रुचि बढ़ गई थी। हरामख़ोर

लोगों को डाँटने-फटकारने भी लगा था। लेकिन मैं महसूस करता था कि मेरे इस परिवर्तन पर मेरी रानी और भास्कर को छोड़कर और कोई प्रसन्न नहीं है।

हाल ही में कुछ दिन से मेरे हाली-मवाली अधिक सजग-से हो गये हैं। उनकी चैतन्यता ने मुझे प्रसन्न ही किया। क्योंकि मैंने अनुमान किया कि मेरी अपनी सजगता और चैतन्यता का प्रभाव मेरे सहकारियों पर भी पड़ा है। मैंने अपने राज्य के तमाम महकमों के प्रधानों को बुला-बुलाकर रिपोर्ट तलव करनी शुरू कीं, कभी-कभी खुद भी अपने राज्य के ज़िलों और तहसीलों का दौरा शुरू किया, किसी भी कर्मचारी के खिलाफ़ प्रजा की शिकायतें आने पर सख़्त कार्रवाई का हुक्म दिया और प्रजा की भलाई के लिये नये-नये क़ानून और अहकाम जारी करने शुरू किए।

मेरी सीधी-सादी प्रजा के कानों में मेरे इस परिवर्तन की खबर पहुँची तो वह बहुत प्रसन्न हुई। उसके साधुवाद के समाचार समय-समय पर मुझे मिलने लगे। मैं इस परिस्थिति पर मन-ही-मन प्रसन्न था।

लेकिन मेरे कानों में रह-रहकर 'शराब' का नाम क्यों पड़ने लगा? मेरे टेवुल पर अँग्रेज़ी के नग्न चित्रों वाले अखबारात क्यों आने लगे? मेरे पास इश्क़िया किताबों के बण्डल कौन भेजने लगा? मेरा मन लम्बे एकान्त से ऊबने-सा लगा था। मैंने इन अख़बारों और किताबों के पन्ने पलटने शुरू किए। मेरा मन कुछ अजीब लहरें-सी लेने लगा। मैं फिर बदल रहा था।

एक दिन मैंने भास्कर से कहा—"मैं बम्बई जाना चाहता हूँ।"

उस ग़रीब को क्या एजराज़ था? सर झुकाया और बम्बई की तैयारियाँ शुरू हुईं।

शाम को लौटकर भास्कर ने मुझे याद दिलाया कि शमीम का वह आदमी अभी तक मुझसे भेंट करके शमीम का खत मुझे देने की इन्तजार में आलमनगर में पड़ा हुआ है। बम्बई के साथ ही मुझे शमीम की याद भी आई थी। अगर्चे मैं अपने ससुर साहेब से यह वादा कर चुका कि आइन्दा कभी बाहर जाने पर रानी त्रिपुरी को अपने साथ अवश्य ले जाऊँगा, और मैं इस वम्बई यात्रा में उसे साथ ले जाने का तहय्या भी कर चुका था, लेकिन बम्बई में पहुँचकर शमीम से मिले बग़ैर रहना मेरे लिए असम्भव था।

उसी दिन से मेरी धर्म-चर्चा कम होने लगी। बम्बई की ठण्डी रातों की स्मृति-मात्र ने मेरे शरीर के रोम-रोम में उत्साह की बिजली भर दी और मैंने अपने पास आने वाले पण्डितों और संन्यासियों का सिलसिला स्थगित कराकर बम्बई चलने की तैयारी शुरू की।

मेरे हुक्म पर शमीम का वह आदमी मेरे रू-ब-रू पेश किया गया। वह झुक-झुककर सलामें करता हुआ आया और उसने मेरी बलैयाँ लेकर उसका वह खूबसूरत ख़त पेश कर दिया।

उसमें लिखा था—

'मेरे सरताज बहादुर,

मेरे लिए क्या इरशाद है? मेरे खुतूत का जवाब तक देने की इज़्ज़त नहीं बख़्शी जाती। कनीज़ से आख़िर ऐसी क्या ग़लती सरज़द हुई है? मैं इस मौक़े पर खुद क़दम-बोसी के लिए हाज़िर होती, लेकिन मैं मजबूर थी। आखिर सरकार मेरे लिए कोई ऐसी सज़ा क्यों नहीं तजवीज़ कर देते कि इस ज़िन्दगी-नागहानी से पीछा छुटे!

मैं हूँ,
हुज़ूर की ख़िदमतगार
शमीम,

इस छोटे-से मुख़तसर ख़त ने मेरे चेहरे पर तरह-तरह के असर पैदा किए। शमीम का वह मक्कार आदमी इस तमाम उतार-चढ़ाव को बहुत ग़ौर से भाँप रहा था। इसलिए मैंने फुर्ती से अपने आपको संयत किया और उससे कहा—'तुम जा सकते हो।'

'जो हुक्म अन्नदाता!' कहकर वह आदमी लम्बी-लम्बी सलामें झुकाता हुआ कमरे से बाहर हो गया।

इस ख़त ने तो मुझे पर लगाकर बम्बई पहुँचने के लिए बेताब कर दिया। मैंने अपनी रानी को आलमनगर ही छोड़ा और दूसरे ही दिन सदल-बल बम्बई के लिए रवाना हो गया।

दीवान बहादुर की आत्म-कहानी

माताजी का तार पाकर मुझे अकस्मात् बम्बई से लौटना पड़ा। पिता जी मृत्यु-शय्या पर थे। यों तो वे मुद्दत से बीमार चले आते थे लेकिन यह उम्मीद न थी ! मैंने आते ही उनके लिए दौड़-धूप की लेकिन सब बेकार; कोई डॉक्टर-वैद्य उन्हें मृत्यु के मुँह से न बचा सका ! रात में उनका देहान्त हो गया।

मरते वक्त मेरे पिताजी ने मुझसे दो-दो बातें कीं। वास्तव में यह बातें और कुछ नहीं, उनके जीवन भर के उपदेशों का निचोड़ ही थीं। उन्होंने मुझे बताया कि अपनी तरक्की का राज मुझे जीवन-भर अपने स्वामी की जायज़ और नाजायज़ आज्ञाओं का पालन करने में ही समझना होगा। साथ ही उन्होंने मुझे ईमानदारी, नेकनीयती, बुजुर्गों के प्रति सम्मान और अपने से गरीबों के प्रति दया का उपदेश भी दिया। दुनियाँकी मक्कारियों और चालाकियों से पृथक् रहने की प्रेरणा भी उन्होंने की और ईश्वर का नाम लेते हुए उन्होंने अन्तिम साँस ली।

मैं उनकी मृत्यु पर जी भरकर रोया। मुझे उन पर वास्तविक श्रद्धा थी और उनके वियोग ने मुझे मानों बे-सहारे छोड़ दिया। मैंने उनकी अंत्येष्टि-क्रिया की और उदास मन से काम-काज में लग गया। मेरे पास स्वयं हिज़ हाइनेस ने हमदर्दी का तार बम्बई से भेजा। रियासत के अन्य बड़े-से-बड़े कर्मचारी ने भी मेरे प्रति समवेदना प्रकट की। कई दिन तक लोगों की भीड़ मुझे घेरे रही और इस भीड़-भाड़ में मैंने अपना शोक भुलान की कोशिश की।

हिज़ हाइनेस अभी तक बम्बई ही थे। उन्होंने अपने एक ए०डी०सी० को मेरी खोज-खबर लेने के लिए भेजा था और मुझे और मेरे परिजनों के प्रति बहुत हमदर्दी का सन्देश भी। उसी ए० डी० सी० की जबानी मुझे ज्ञात हुआ कि शीघ्र ही मेरे वेतन में तरक्की भी की जायेगी और सम्भवत: मेरा रुतबा भी बढ़ाया जायगा।

लेकिन मुझे इन समस्त समाचारों से हर्ष क्यों नहीं हुआ ? मेरे कान में रह-रहकर पिताजी के अन्तिम उपदेश के शब्द गूंज रहे थे। चिता पर रक्खे हुए उनके शरीर की स्मृति रह-रहकर मुझे आलोड़ित किये डालती थी। मौत वास्तव में वैराग्य की जननी है। मुरदा देखकर अकस्मात् मनुष्य अपने जीवन की अच्छाई-बुराइयों के चित्र अपने मन की आँख के आगे खींचने लगता है। आखिर, इसी दिन के लिए हम समस्त कल्पित-अकल्पित छल, कपट, झूठ, पाखण्ड और प्रतिहिंसा की भावनाओं से जीवन-भर प्रताड़ित होते रहते हैं ? मौत ही तो एक ऐसी चीज है, जहाँ मनुष्य को अपनी असहायता और क्षुद्रता का ज्ञान होता है। आखिर दुनिया-भर का ऐश्वर्य मौत के आने पर किस तरह छोड़ने को आदमी मजबूर हो जाता है? जीवन-भर हम अपने मोह-बन्धनों को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए किस प्रकार छटपटाते हैं ! हमारे किसी प्रिय का अनिष्ट समाचार हमें एकबारगी सर से पैर तक थर्रा देता है। क्यों हमें यह अज्ञात शक्ति देखते-देखते इन समस्त आसक्तियों, मोहों और समस्त बन्धनों से पृथक् कर देती है।

आप विश्वास कीजिये कि पिताजी की मौत के दर्दनाक दृश्य ने मुझे अपने जीवन की समस्त माया-मरीचिका और व्यर्थता का अनुभव करा दिया। मैंने पाया कि एक नितान्त थोथे सांसारिक यश और प्रतिष्ठा की तलाश में धीरे-धीरे मुझे एक मनुष्य की जगह राक्षस का जीवन बिताने पर मजबूर होना पड़ रहा है। मैंने माना कि सभी आदमी दुनिया में स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं रह सकते और मैं यह भी मानता हूँ कि मेरे मालिक मुझ पर अपार दया रखते हैं। लेकिन उस दया का क्या मूल्य है, जो केवल मेरी उस मूक सेवा के बदले में मुझे प्राप्त होती है, जिसमें तर्क को और विवेक को स्थान बिल्कुल भी नहीं, जहाँ केवल मालिक की इच्छा ही सर्वोपरि है और वह इच्छा भी अक्सर बेईमानी और विवेकहीनता से परिपूर्ण रहती है। मैंने

माना कि मेरी योग्यता से अधिक आय और यश मुझे इस जगह मिलता है, लेकिन जिस आय और यश को प्राप्त करने के लिए मुझे धीरे-धीरे अपनी आत्मा की जान निकालनी पड़ती हो, उसकी क्या क़ीमत मेरे निकट हो सकती है ? क्या इससे अच्छा यह नहीं कि मैं किसी दफ़तर की तीस रुपये की नौकरी करके अपना पेट भरूँ और अपनी आत्मा को स्वतन्त्र रक्खूं ? आख़िर इस माया-भरे यश और इस झूठी प्रतिष्ठा का क्या असर मेरी आत्मा पर पड़ेगा ? जिस प्रकार के जघन्य कामों में मुझे अपने स्वामी के साथ सहयोग करना पड़ता है, क्या मरते वक़्त वे मेरे स्मृति-पटल से मिट सकते हैं और क्या मुझे एक सीधे-सादे ग़रीव किसान की-सी शान्तिमयी मृत्यु प्राप्त हो सकती है ?

क्या आप मेरी इन भावनाओं को कृतघ्नता समझते हैं ? नहीं, मैं खूब समझता हूँ कि मेरे स्वामी मेरा कितना ख़याल रखते हैं ? सिर्फ़ इसीलिए कि धीरे-धीरे मैं उनके इतने विश्वास में आ गया हूँ और मेरी आत्मा धीरे-धीरे इतनी मर चुकी है कि मैं उनके नीच-से-नीच कारनामों में भी नफ़रत ज़ाहिर नहीं करता, बल्कि उनमें सहयोग देता हूँ और अपने हरेक कार्य से अपने स्वामी को प्रसन्न रखने की कोशिश करता हूँ। और लोगों के प्रति भी हिज़ हाइनेस का व्यवहार मैं देखता हूँ। खुद उनकी माँ के प्रति, उनके स्वामिभक्त सेवकों के प्रति, उनकी गाय-जैसी प्रजा के प्रति और उनकी देवी स्वरूपा रानी के प्रति भी ! क्या कोई व्यक्ति, जिसके भीतर एक मानव-हृदय छिपा हुआ हो, कभी इस प्रकार की असम्वद्ध नीति पर चलकर मनुष्य कहलाने का अधिकारी है ? हर्गिज़ नहीं।

पन्द्रह दिन वाद मुझे अपनी 'ड्यूटी' पर बम्बई जाना पड़ा। हिज़ हाइनेस ने बड़े प्रेम से मुझे लिया और दस मिनट तक मुझे सांत्वना देते रहे। आप विश्वास कीजिए कि और किसी समय उनके इस व्यवहार पर मैं अपना महान् सौभाग्य मानता, लेकिन इस समय मेरा हृदय उनकी एक-एक बात पर बैठा-सा जाता था। मैं वास्तव में अपनी नौकरी से इस्तीफ़ा देने आया था, और मेरी इच्छा थी कि महाराज या तो मुझे सर्वथा मुक्त कर दें, अन्यथा अपने ही राज्य में शिक्षा आदि किसी अन्य विभाग में मेरा तबादला कर दें। मेरी निर्वल आत्मा अपने निकट के भयानक पापाचार के प्रति

विद्रोह कर उठी थी। हिज़ हाइनेस के सान्त्वना के शब्द मानों जलते तवे पर तेल की बूँदों की तरह पड़ते थे।

'अच्छा, अब जाओ और कुछ देर आराम करो !'

हिज़ हाइनेस के हुक्म पर मुझे उठना पड़ा और मेरे मन की बात मन ही में रह गई।

बाहर आया, तो तमाम ए० डी० सी० और अमलों ने घेर लिया। सभी ने मेरे साथ हमदर्दी का इज़हार किया। लेकिन मैं अच्छी तरह जानता था कि इस हमदर्दी में कितनी सचाई है !

जब नहा-धोकर मैं अपने दफ़्तर में बैठा तो धीरे-धीरे मुझे पिछले पन्द्रह दिनों के सारे हालात मालूम होने शुरू हुए। हिज़ हाइनेस के गुलछर्रे बराबर जारी थे। वहाँ रोज़ नई औरतें आती थीं और नाच-रंग होते थे। अकसर कुछ मेहमान लोग भी इन जल्सों में शरीक हुआ करते थे। शमीम की ख़ातिर-तवाज़: बढ़ गई थी। हिज़ हाइनेस प्राय: हर रोज़ उसे बुलाने लगे थे और बम्बई-भर में यह ख़बर फैल गई थी कि इस नाचीज़ औरत के सर पर किस सौभाग्य का ताज रक्खा जाने वाला है ! उसके नख़रे-तिल्लों के समाचार भी मुझे मिले। किस तरह उसने महाराज के नौकर-चाकरों और अमलों पर हुकूमत करनी शुरू कर दी थी और किस तरह धीरे-धीरे उसका रुआब लोगों पर ग़ालिब होने लगा था, इस सबका वृत्तान्त जानकर तो मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और मेरा मन ग़ैरत से भर गया।

माँ-महारानी की आत्म-कहानी

उस दिन माणिक सरदार बदहवास सूरत बनाये, मेरे पास आ खड़ा हुआ, कहने लगा—'माँ-महारानी, ग़ज़ब हो गया !'

मैंने पूछा—'क्या हुआ ?'

'हमारे राज्य में ग़दर की तैयारियाँ की जा रही हैं !'

मुझे चौंकना पड़ा। मैंने पूछा—'इसका क्या मतलब ?'

'आपको शायद मालूम नहीं कि पिछले तीन बरसों से लगातार हमारे राज्य में कहर पड़ रहा है। उधर इन्हीं बरसों में हमारे राज्य में शिक्षा की प्रगति भी काफ़ी हुई है, लेकिन जो लोग पढ़कर वाहर निकलते हैं, उनकी नौकरी की कोई चिन्ता राज्य की ओर से नहीं की जाती। इसके अतिरिक्त रजय के आस-पास के ब्रिटिश-इलाकों की जनता में जो जागृति हुई है, उसने भी हमारे राज्य में अशान्ति फैलाई है। इन्हीं सब कारणों से हमारे राज्य में भीतर-ही-भीतर एक भयंकर षड्यन्त्र जन्म ले चुका है।'

मेरा आश्चर्य धीरे-धीरे भय की शक्ल अख्तियार करता जा रहा था।

'मुझे पक्की ख़बर मिली है कि हमारे राज्य में ऐसे कुछ नौजवानों का गिरोह तैयार हो चुका है, जो शीघ्र ही राज्य के कुछ उच्चपदस्थ कर्म-चारियों को गोली और बमों का शिकार बना देना चाहते हैं और इस राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था पर कब्ज़ा कर लेना चाहते हैं।'

मैं भौचक् होकर सुनती रही, लेकिन संयत होकर मैंने कहा—'लेकिन भारत-सरकार ऐसा किस प्रकार होने देगी ?'

'बेशक, भारत-सरकार दख़ल देगी, लेकिन मान लीजिए कि राज्य की तमाम प्रजा एक स्वर से यह कह दे कि वे परिवर्तित व्यवस्था को पसन्द करते हैं और मान लीजिए हिज़ हाइनेस, उनके तमाम परिजन और राज्य के तमाम दूर और नज़दीक के दावेदार 'शूट' कर दिए जायें, तो भारत-सरकार की क्या स्थिति रहेगी ?'

इस पर मुझे चुप रह जाना पड़ा।

'मुझे यह भी पता लगा है कि रियासत की प्रजा के सामाजिक और राजनैतिक नेताओं को भीतर-ही-भीतर पक्का कर लिया गया है। गाँव-गाँव में किसानों की पंचायतों के मन में हमारे महाराज के प्रति बग़ावत और नफ़रत की भावनायें भर दी गई हैं और इस बात का पूरा उद्योग किया जा रहा है कि जिस दिन महाराज और उनके निकट सम्बन्धियों की हत्या की जाय, उसी दिन राज्य के गाँव-गाँव में बग़ावत कर दी जाय, पुलिस-स्टेशनों में आग लगा दी जाय, मजिस्ट्रेटों और जजों के मकानात लूट लिए जायें और पुलिस और फ़ौज के लोग उनके इन कामों में मदाखलत करें, उन्हें लाठियों की मार से यमलोक का रास्ता दिखाया जाय !'

मैंने पूछा—"अब क्या होगा ?"

"मेरी खुद समझ में नहीं आता कि होगा। लेकिन सबसे ज्यादे अफ़सोस तो मुझे इस बात का है कि हमारे महाराज को इन सारी बातों की कोई ख़बर नहीं। आपको तो मालूम ही है कि आजकल बम्बई में उन्होंने क्या-क्या लीलाएँ रच रक्खी हैं !'

मैं चुप रही।

माणिक सरदार कहता रहा—

'मैंने सुना है कि वह मुसलमान फ़िल्म-एक्ट्रेस इस यात्रा में महाराज पर अपना पूरा जादू गाँठ चुकी है और या तो बम्बई में अथवा और कहीं जाकर महाराज इसी यात्रा में चुपचाप उसके साथ शादी कर लेंगे। इस वारदात की सम्भावना का तमाम समाचार प्रजा के कानों में तरह-तरह के रूप लेकर पहुँच चुका है और आप जान सकती हैं, माँ-महारानी, कि बदचलन स्वामी पर श्रद्धा करने की किसी भी मनुष्य की इच्छा नहीं होती।'

मेरी परेशानी का ठिकाना न था। मुझे अपनी चिन्ता न थी, इस

विशाल राज्य और उसकी मान-प्रतिष्ठा की चिन्ता थी, माणिक सरदार की बातों पर यद्यपि मन जमता न था, फिर भी रह-रहकर भय और आशंका हृदय को आलोड़ित किए देते थे। मैं चुप थी।

माणिक सरदार ने कहा—"क्या मेरी बातों से आप परेशान हो गईं?"

मैंने कह दिया—"हाँ!"

"लेकिन यह वक्त परेशानी का नहीं है। मैंने जो-कुछ सम्भावना प्रकट की है, उसके अमल में आने में ज़्यादे विलम्ब नहीं है। अगर आपकी आज्ञा हो तो जान पर खेलकर मैं इस राज्य की रक्षा करने का यत्न करूँ?'

मैंने हैरान होकर पूछा—"क्या करोगे?"

माणिक सरदार ने एक मिनट चुप रहकर इधर-उधर ताका और तब कुछ आगे सरककर उसने कहा—'इसके लिए मुझे माँ-महारानी का यह आश्वासन प्राप्त करना है कि प्रत्येक अवस्था में मेरा यह प्रस्ताव गुप्त रखा जायेगा।'

मैंने सिर हिलाकर उसकी बात स्वीकार कर ली।

माणिक सरदार ने अपने स्वर को अधिक धीमा करके कहा—"माँ-महारानी, हमें महाराजा को तुरन्त गद्दी से उतारना होगा।"

मैंने चौंककर पूछा—"यह कैसे करोगे?"

"इसकी ज़िम्मेदारी आप मुझ पर छोड़ दें। आपको केवल यह करना होगा कि उचित समय पर आप यह समाचार सुनने के लिए तैयार रहें और इस पावन अनुष्ठान में मुझे अपना आशीर्वाद देती रहें। मैं महारानी को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं अपने राज्य की प्रतिष्ठा और सत्ता को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने प्राणों तक की बाजी लगाने में पीछे न रहूँगा।"

उसकी लच्छेदार बातों से मुझे ढाढ़स तो बँधा, लेकिन मेरी समझ में न आया कि वह क्या करना चाहता है।

"अच्छा तो अब मैं जाता हूँ।" कहकर उसने एक क़ागज अपनी जेब से निकाला और मेरे सामने फैलाकर अपना फ़ाउण्टेनपेन मेरे हाथ में थमा दिया और कहा—'ज़रा इस पर दस्तख़त कर दीजिए।'

उस काग़ज़ पर हिन्दी में टाईप किया हुआ एक पत्र था, जिसका

मज़बून यह था—

'माणिक सरदार।'

'मेरे पुत्र की करतूतों तथा अन्य कारणों से राज्य में जो भयानक अव्यवस्था और अशान्ति फैल गई है, उसकी क़ानूनी जिम्मेदारी चाहे हमारे और आपके ऊपर न हो, लेकिन उसकी नैतिक ज़िम्मेदारी से हम नहीं बच सकते। इसके अतिरिक्त मेरे पुत्र ने बम्बई की जिस मुसलमान रण्डी से विवाह कर लिया है, उसके कारण उसने हमारे कुल को तो दाग़ लगाया ही है, राजसिंहासन की मर्यादा को भी कलंकित किया है। ऐसी दशा में मैं यह अनुरोध करती हूँ कि आप हमारी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में हमारी सहायता करें।'

इसके नीचे मेरे दस्तख़त थे और उस पर तारीख़ नहीं पड़ी हुई थी।

माणिक सरदार ने कहा—'मुझे पक्की ख़बर मिली हैं कि इसी सप्ताह के भीतर महाराज उस मुसलमान रण्डी का पाणिग्रहण कर लेंगे। ऐसी दशा में पत्र मुझे अपने प्रयत्नों में बड़ी सहायता देगा!'

मैं कह चुकी हूँ कि माणिक सरदार की आँखों में कुछ ऐसा जादू है, जो ऐसे तमाम मौक़ों पर मुझे वशीभूत कर लेता है। इस पत्र पर दस्तख़त करते समय मेरा हाथ क्षण-भर को काँपा, लेकिन फिर मैंने दस्तखत कर दिए।

मैंने पूछा—'सरदार, मुझे विश्वास है कि उसकी जान पर कोई आफ़त न आयेगी!'

माणिक सरदार ने झटपट कह दिया—'इसके लिए आप बेफ़िक्र रहें!'

और वह काग़ज़ जेब में रखकर वह उठ खड़ा हुआ।

रानी त्रिपुरी की आत्म-कहानी

एक दिन मुझे खबर मिली कि उस मुसलमान रण्डी को हिन्दू बनाकर मेरे स्वामी ने उससे शादी कर ली है। मेरे सर पर तो आकाश फट पड़ा। दुनिया मेरे लिए अन्धकारमय हो गई। मैंने अपनी अबोध बच्ची को गोद में चिपटाकर मन-ही-मन अपने और उसके भविष्य की कल्पना की। हाय मेरे स्वामी ने यह क्या किया!

पार्वती ने मुझे यह भी खबर दी थी कि राज्य में महाराज की हर्कतों के विरुद्ध धीरे-धीरे रोष बढ़ता ही जा रहा है। उसे यह भी पता लगा था कि माणिक सरदार ने अपने रुपये और रुआब के बल पर राज्य के कुछ जन-प्रतिनिधियों को अपने षड्यन्त्र में शामिल कर लिया है और वह किसी-न-किसी प्रकार विद्रोह कराकर मेरे स्वामी की या तो हत्या कर देना चाहता है, अथवा भारत-सरकार की सहायता के बल पर उन्हें सिंहासन-च्युत कर देना चाहता है। मेरे स्वामी के उक्त विवाह की जो-जो प्रतिक्रियायें राज्यों के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हुईं, उसका समाचार भी मेरे कान में पड़ा और ज्ञात हुआ कि उनके इस कुकृत्य पर राज्य निवासियों की असन्तोष की आग में आहुति पड़ गई है।

आखिर एक दिन हिम्मत करके मैंने अपने स्वामी को पत्र लिखा कि उनके सम्मान और जीवन पर खतरा है, इसलिये उन्हें तुरन्त आलमनगर लौट आना चाहिए। यह पत्र पार्वती के एक खास आदमी के हाथों बम्बई भिजवाया गया। लेकिन यह आदमी बिना कोई उत्तर लिये वापस लौट

आया और उससे ख़बर मिली कि बम्बई के महल में मेरे स्वामी अपनी नव-विवाहिता प्रेमिका के साथ गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और यह भी कि उस डाइन की फ़र्मायिशों पर रुपया पानी की तरह बर्बाद किया जा रहा है।

जब मैंने पूछा कि क्या महाराज ने उसे अपने पास बुलाया था तो मालूम हुआ कि उसे क़रीब-क़रीब अपमान कराकर महल से बाहर निकाल दिया गया और उसे हिदायत दे दी गयी कि भविष्य में वह कभी उधर आने का साहस न करे तथा अपनी इस यात्रा का हाल किसी भी अन्य आदमी से बयान न करे। उसने यह भी वताया कि आलमनगर से महाराज जिन सेवकों को अपने साथ ले गये थे, उनमें से एक उसका परिचित था और उसी से उसे महाराज वे तत्कालीन 'मूड' के हाल-चाल मालूम हुए।

मैंने पार्वती से कहा—'अब ?'

उस वेचारी को कुछ जवाब न सूझ पड़ा।

मैंने पूछा—तुम्हें मालूम हुआ कि माणिक सरदार के कुचक्रों की क्या प्रगति है ?'

पार्वती ने जवाब दिया—'जो कुछ समाचार मुझे अब तक मिले हैं, उनका अधिकांश भाग महारानी जी जानती हैं। सब मिलाकर मैं यही कह सकती हूँ कि अगर माणिक सरदार को अपने प्रयत्नों में सफलता मिल गई तो राज्य-परिवार का जीवन अत्यन्त संकट में पड़ जायगा। मुझे ज्ञात हुआ है कि माणिक सरदार महाराज और उनके अन्य निकट-सम्बन्धियों—यहाँ तक कि आपको भी—राज्य के क्रान्तिकारियों द्वारा बम से उड़वा देना चाहते हैं !'

मैंने चौंककर पूछा—'बम से ?'

'हाँ, उसने राज्य की तमाम विरोधी शक्तियों के साथ धीरे-धीरे सम्बन्ध स्थापित कर लिया है और भारत-सरकार के रुख को भी उत्तरोत्तर महाराज के प्रति सख़्त बना दिया है। उसकी कोशिश है कि एक ही रात में महाराज और उनके वारिसों को मौत के घाट उतारकर भारत-सरकार की मदद से अगले दिन ही अपने-आपको आलमनगर का राजा घोषित कर दे। और उसकी इन कोशिशों में हमारी राजमाता सहयोग दे रही हैं।'

मेरे कलेजे से वेदना की एक लम्बी साँस निकलकर रह गई।

'क्या इस दुर्घटना से उनकी रक्षा का कोई उपाय नहीं ?'

'मेरी शक्तियाँ अल्प हैं, आप कुछ कर सकने में असमर्थ हैं। ऐसी दशा में, क्या किया जाय—समझ में नहीं आता।'

मैंने हुँकारकर कहा—'मैं क्या कर सकती हूँ ? मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।'

पार्वती ने अपनी समझदार आँखें एक बार मेरे चेहरे पर डालीं और कहा—'महारानी जी, आप करना चाहकर भी कुछ नहीं कर सकेंगी।'

'आप बिना महाराज की इजाज़त के आलमनगर से बाहर कैसे जा सकेंगी ?'

मैंने चौंककर पूछा—'क्या मेरे बाहर जाने की ज़रूरत है ?'

'अवश्य, अगर आप तुरन्त बम्बई जा सकें, तो मुमकिन है, कुछ हो सके !'

'क्या हो सकता है ?'

'वहाँ जाकर आपको महाराज के कानों में यहाँ के षड्यन्त्रों का समाचार डालना पड़ेगा और उन्हें एक बार यहाँ चले आने पर मजबूर करना पड़ेगा। हमारे राज्य की प्रजा सदियों से राजा की भक्ति करने की अभ्यस्त रहती आई है और सम्भव है कि उनकी उपस्थिति इस जलती हुई आग में पानी के छींटें का काम करे। साथ ही मेरा यह भी ख़्याल है कि अभी महाराज नई महारानी को आलमनगर लाने का साहस न करेंगे और ऐसी दशा में कम-से-कम उस तरफ़ से उन्हें विरक्त करने का अवसर तो मिल ही सकता है। बाक़ी जो-कुछ होना था, वह तो हो ही चुका !'

पार्वती की बात मेरी समझ में तो आई, लेकिन महाराज की आज्ञा-बिना राजमहल से बाहर पैर धरना भी मेरे लिए अपराध था। भला बम्बई की यात्रा कर सकना कैसे सम्भव हो सकता था ?

मैं दिन-भर पार्वती के परामर्श पर विचार करती रही और शाम को मैंने उससे कहा कि मैं माँ-महारानी से मिलना चाहती हूँ।

पार्वती ने जीभ काटकर कहा—'माँ-महारानी से ?'

'हाँ !'

'क्या मैं पूछ सकती हूँ कि इससे महारानीजी का क्या अभिप्राय है ?'

'मैं उनसे अपने स्वामी के जीवन की भीख माँगना चाहती हूँ।'

पार्वती ने भरे-कण्ठ से जवाव दिया—'लेकिन उनके हाथ में है क्या ? वह तो केवल एक कठ-पुतली की तरह कार्य कर रही हैं। असली फ़साद की जड़ तो माणिक सरदार हैं और उन तक महारानीजी की पहुँच असम्भव है !···लेकिन हाँ···'

पार्वती ने रुककर कहा—'माँ-महारानी की मार्फ़त आप माणिक सरदार को प्रभावित करा सकें, तो स्थिति में कुछ अन्तर अवश्य आ सकता है।'

'क्या ऐसा करने की तुम्हारी सलाह है ?'

पार्वती ने ओंठ काटकर कहा—'मैं नाचीज़ कनीज़ भला सरदार को क्या सलाह दे सकती हूँ ? लेकिन मेरा ख़याल ऐसा है कि माणिक सरदार के इरादे हम औरतों की कोशिशों से बदल नहीं सकते !'

'तव कुछ करना-धरना वेकार है—क्यों ?'

'नहीं, मैं यह नहीं कहती ! हो सकता है, आपको कुछ सफलता मिल जाय। माणिक सरदार का कुछ परिचय मुझे भी है और मैंने उसकी प्रकृति का जो-कुछ अध्ययन किया है, उससे मैं इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि वह एक वज्र-हृदय का आदमी है और देशी रियासतों में इस तरह के आदमी आम तौर पर दिखाई दे जाते हैं, जो मतलब पड़ने पर तो पिघलकर पानी बन जाते हैं, लेकिन मतलब निकलते ही जिनका कलेजा फ़ौलाद की तरह कठोर हो जाता है। इस समय माणिक सरदार का कोई मतलब आप से या माँ-महारानी से नहीं है और इसलिए आपके परामर्शों का कोई असर उस पर पड़ सकेगा, इसकी मुझे आशा नहीं है !···कमीना···कुत्ता···!'

कहते-कहते पार्वती की आँखें और चेहरा लाल हो गया।

रानी त्रिपुरी ने पार्वती की यह दशा देखी तो उन्होंने हैरान होकर पूछा—'यह क्या ?'

पार्वती ने आँखों में आँसू भरकर कहा—'बस, महारानी, वह कहानी न पूछिये ! उस ज़ालिम के सताये हुए अनेकों नर-नारियों में से मैं वदनसीब भी एक हूँ···'

कहकर पार्वती ने आँचल से अपने नेत्र पोंछ लिये।

'लेकिन यह अवसर मेरी कहानी सुनने का नहीं है। हमें जो-कुछ करना हो, तुरन्त करना चाहिए। माँ-महारानी के पूरी शक्ति लगाने पर माणिक सरदार के कुचक्रों की मशीन में यदि हम लोग कुछ शिथिलता पैदा कर सकें, तो इसके वाद सोचेंगे कि आगे हमें क्या करना चाहिये !'

माणिक सरदार की आत्म-कहानी

बेवकूफ़ औरतें! आँखों के नीर बहाकर वे मेरी जीवन-भर की साधनाओं, तपस्याओं और अभिलाषाओं पर पानी फेर देना चाहती हैं। उन्हें मालूम ही नहीं, कि मैं किस कँडे का आदमी हूँ। उन्हें यह भी नहीं मालूम कि जिस आदमी की सिफ़ारिश वे मुझ से करना चाहती हैं, वह अपने खानदान के नाम को किस दिशा में बहाये लिए जा रहा है! आखिर औरतें ही ठहरी न!

बरसों की तैयारियाँ जब कामयावी की सूरत अख़्तियार करने पर आई हैं, मुट्ठी-मुट्ठी-भर खाक इकट्ठी करके जब मैंने शक्ति का पहाड़ तैयार कर लिया है, एक-एक करके अपने तमाम दुश्मनों को जब मैंने पछाड़ दिया है, यश और वैभव का मैदान जब मैंने क़रीब-क़रीब जीत लिया है, उस वक़्त महज़ दो पागल औरतों के नाचीज़ आँसू—जिनकी ज़िन्दगी और मौत का दारोमदार महज़ मेरी आँख के एक इशारे पर है—मुझे अपने संकल्प से हटा सकते हैं?

लेकिन मुझे उनके इस परिवर्तन पर चौंकना ज़रूर पड़ा। और उनके सामने तो अगर्चे मैं उनकी बात पर ग़ौर करने का वादा करके चला आया, लेकिन बाद में मुझे यह ज़रूर सोचना पड़ा कि इस पवित्र अनुष्ठान में यह वेवक़्त का अपशकुन क्यों? आखिर रानी त्रिपुरी ने माँ महारानी के पास इस तरह बिला-इजाज़त आने की हिम्मत कैसे की? कहीं इस चिनगारी के पीछे कोई ज़बर्दस्त विस्फोट तो छिपा हुआ नहीं है? कहीं ऐन मौक़े पर

इन दोनों वदनसीबों की घबराहट मेरे किए कराए पर पानी तो नहीं फेर देगी ?

मैंने दोनों की गति-विधियों पर अपनी अत्यन्त विश्वासपात्र जासूसिनें छोड़ दीं और अपने चक्र की गति अधिक तेज़ कर दी। भारत सरकार के राजनैतिक विभाग में मेरा एक ख़ास आदमी है और यों तो सभी पार्टियों के आदमियों से मेरी दोस्ती है, लेकिन सरकारी मामलात में चोटी के आदमियों के हाथ में कुछ नहीं रहता; जैसा उनके मातहत लोग उन्हें सुझा देते हैं, वैसे ही दस्तख़त हो जाते हैं। इसीलिये मेरी रिश्वतों और मेहरबानियों का अधिकांश भीतर के आदमियों के पेट में पहुँचता है और जिस व्यक्ति की मार्फ़त मैं यह सारी रचनायें रचता हूँ, उसे मैं राजगद्दी मिलते ही अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त करने का लालच दे चुका हूँ। न, न, न, आप मुझे ऐसा बेवकूफ न समझें ! यह तो महज़ झाँसा है। भला मैं उस नाबकार के हाथों अपनी गर्दन सौंपकर उसे प्रधान मन्त्री बनाना मञ्जूर कर सकता हूँ ? मैं तो उसे अपने राज्य में बुलाकर खत्म कर दूंगा—खत्म ! और फिर यह राज़ मेरे अलावा और कौन जान सकेगा ?

यह ज़हर एक नई अमेरिकन ईजाद है। शराब के साथ पाँच बूंद मिला देने पर मज़बूत-से-मज़बूत आदमी की जान लेने के लिए काफ़ी है। और सिर्फ़ दो-चार दस्त और दो-चार क़य के बाद आदमी हमेशा के लिए सो जाता है। अगर मौत के बाद 'पोस्टमार्टम' भी हो तो दुनिया कोई डॉक्टर यह तशख़ीस नहीं कर सकता कि मृत व्यक्ति की मौत ज़हर खिलाकर की गई है। और मौत के पहले भी डॉक्टर मरीज़ को देखे तो महज़ 'कॉलरा' का इलाज करेगा। लेकिन मजाल नहीं कि कोई इलाज इस ज़हर पर कारगर हो सके।

मैं मौक़े की इन्तजार कर रहा हूँ। आग भीतर-ही-भीतर सुलग रही है। अब फूटी कि अब फूटी ! मैं चाहता हूँ कि दो-चार जगह गहरी अशान्ति एक-साथ उत्पन्न हो और उसी दिन बम्बई में महाराज की हत्या कर दी जाय ! मुझे मालूम है कि अभी दो महीने तक हमारे महाराज आलमनगर नहीं लौटेंगे और यह समय मेरी तमाम 'स्कीमों' की कामयाबी के लिए काफ़ी है।

लेकिन, मैंने कल की घटना से यह महसूस किया कि माँ-महारानी को फ़ौरन खत्म करना होगा और एक निशाने दो शिकार मारने होंगे।

ज़ाहिर है कि अगर आलमनगर में उनकी हत्या कराई गई तो महाराज को शराफ़त के नाम पर तुरत यहाँ आना पड़ेगा चूँकि अपने साथ अपनी नई नवेली पत्नी इतने शीघ्र यहाँ लाने का साहस महाराज करेंगे नहीं, इसलिए मेरी 'स्कीम' में अंतर पड़ सकता है। इसलिए बेहतर होगा कि माँ-महारानी और महाराज की हत्या कुछ ऐसी स्थितियों में कराई जाये कि भारत सरकार की नज़रों में दुनिया में यह ज़ाहिर है कि अपने पाप से डरकर महाराज ने या तो आत्म-हत्या कर ली, या हैजे के हमले से उनका हार्ट फ़ेल हो गया।

इस समय राज्य के तमाम महकमों में मेरा ही दबदबा और बोलबाला है। मुझे हर तरफ़ की रत्ती-रत्ती-भर की खबरें मिलती रहती हैं। राज्य के तमाम सार्वजनिक नेता लुप-छिपकर मुझसे मिलने आते रहते हैं। जहाँ-जहाँ क्रान्तिकारी लोगों ने अपनी शाखा प्रशाखायें क़ायम की हैं, वहाँ सभी जगह मेरे चर लगे हुए हैं। इस काम में अगर्चे मेरा लाखों रुपया खर्च हो चुका है और हो रहा है मेरी जागीर के किसान लोग कुछ परेशान होने लगे हैं। मगर वेचारे मेरा इतना लिहाज़ करते हैं कि कोई शिकायत की आवाज़ कहीं से सुनाई नहीं पड़ी है। लेकिन मैं अपनी धुन में मस्त हूँ और जैसे ही मेरी उम्मीदें बर आईं, मैं सब लोगों की तकलीफ़ें रफ़ा कर दूंगा।

हिज़-हाइनेस की आत्म-कहानी

औरत और शराब के आगे जो आदमी नहीं झुकता, मेरी राय में वह सबसे ज्यादे बहादुर है। मैं झुका ही नहीं, गिर गया, ग़रक़ाब हो गया। मैंने उससे शादी कर ली।

जी हाँ, अब वह शमीम नहीं, कौशल्याबाई थी। मैंने उसका यह नाम ज़्यादे पसन्द नहीं किया, लेकिन जल्दी-जल्दी में पुरोहित साहब ने जो भी नाम तजवीज़ किया, मुझे वही रखना पड़ा। लेकिन नाम की ना पसन्दगी से उस परी-पैकर की पसन्दगी का कोई ताल्लुक़ न था। उसके लिए मेरा इश्क़ बदस्तूर क़ायम था और मैंने तय कर लिया था कि अपनी तमाम ज़िन्दगी उसी हूर के आग़ोश में बिता दूँगा।

बेशक, आप मेरी दास्तान में मेरे हृदय की कलाबाजियों पर परेशान होंगे। लेकिन आप यक़ीन कीजिये कि उसके हुस्नो जमाल ने मुझे दीवाना बना दिया था। उसकी आँखें न-जाने किस शराब से बुझी थीं कि उसके सामने पड़ते ही मैं दीन-दुनिया की तमाम दूसरी बातें भूल जाता था।

अब की बम्बई-यात्रा में मेरे साथ कुछ ही चुने हुए लोग थे। उनमें भास्करदेव भी था। बेचारे का बूढ़ा बाप! उस ग़रीब को अपना शोक भूला भी न था कि उसे मेरी शादी की तमाम तक़रीबात में शामिल होकर खुशियाँ मनानी पड़ीं। यह शादी बहुत ही मुख्तसिर ढंग पर हुई थी और मेरे बम्बई के दो-चार वैयक्तिक मित्रों के अतिरिक्त कोई मेहमान उसमें आमन्त्रित न किए गए थे। अलबत, अखबारों में इस शादी की खूब धूम

मची थी। कुछ नमकहरामों ने तो इस मामले पर मुझसे रुपया ऐंठने का कमीना प्रयत्न भी किया। लेकिन मैं कोई पागल न था! मैंने सबको साफ अँगूठा दिखा दिया। उन्होंने मुझे गालियाँ दीं, मुझे हिन्दू-धर्म-कलंक बताया, भारत-सरकार तक को उभाड़ने की कोशिश की, बहुतों ने मुझे गद्दी से उतारने तक का प्रस्ताव किया। लेकिन मैं इन तमाम मामलात का पहले ही इन्तज़ाम कर चुका था। यों अखबारों की इस तरह की बदनामी को तो हम लोग अपना विज्ञापन ही समझते हैं। आप भले ही इसे बेहयाई कहें, मैं इसे राजनीति का एक अंग-मात्र मानता हूँ।

हमने शादी की और नये सिरे से सोहागरात मनाई। सोहाग-रात को मेरी नई रानी ने बिल्कुल नये तरह की पोशाक पहनी, बिल्कुल नये तरह के आभूषण धारण किये और बिल्कुल नये तरह की खुशबू के फूलों से महकते हुए उसने मुझे जाम-पर जाम पिलाने शुरू किये। मैं तो यों ही नशे से मदहोश था, यह दोहरा वार हुआ तो बेहोश होने लगा। इस बेहोशी में मुझे उस परी के सिवा और कुछ नज़र न आता था। उस आनन्द का वर्णन मैं कहाँ तक करूँ? मैंने जी भरकर पी और जी भरकर उसे पिलाई। उसने हमेशा शराब पीने में आना-कानी की थी, लेकिन उस दिन वह भी खुल पड़ी और जब तक बेहोश न हो गया, वह बराबर मेरी आज्ञा पर पीती ही रही।

सुबह हुई। हम दोनों देर तक सोते रहे। महल में किसी की हिम्मत न थी कि पत्ता तक खटकने दे। करीब ग्यारह बजे मेरी नींद खुली। वह न— जाने कब की जगी पड़ी थी। उसने हाथ-मुंह धोकर बाल संवार लिये थे और वह छपरखट पर मेरी तरफ़ करवट लिए पड़ी थी। मैं उसकी चतुराई पर दंग रह गया! उसके चेहरे या नेत्रों पर रात की मस्ती की कोई घृणोत्पादक प्रतिक्रिया न थी। मेरी आँख खुलती देख वह शोख़ी और लाज से लाल-लाल होकर मुस्करा पड़ी। मेरा दिल बाग़-बाग़ हो गया। मैं ऐसी ही औरत चाहता हूँ!

वह अदब के साथ उठकर मेरे पैंताने आ-बैठी और मेरे टख़ने धीरे-धीरे दबाने लगी। मैंने अपने पैर खींच लिए और उसकी कलाई थामकर उसे अपने आग़ोश में ले लिया। उसने शर्माकर मेरी गोद में सर छुपा लिया

और मुस्कराकर एक वार अपने मोती से दाँत दिखा दिये। मैं कृतकृत्य हो गया।

दिन बीतने लगे। अब वह मेरी रानी थी और उसी अनुसार उसने अपनी संजीदगी और आचार-व्यवहार में अन्तर डाल लिया था। दिन और रात हम साथ-ही-साथ रहते। मैंने बम्बई की तमाम बड़ी-बड़ी दूकानों से उसके लिए मुँह-माँगा सामान ख़रीद दिया। महल में जेवरात और वस्त्रों के ढेर लग गए। मैं उसकी ख्वाहिश पर रुपया पानी की तरह बहा रहा था और खुश हो रहा था। मेरी दृष्टि में मेरा जन्म सार्थक हो गया था।

और वह थी कि दिन-पर-दिन निखरती चली जा रही थी। मैं उसकी एक-एक अदा कर हज़ार जान से फ़िदा था। उसके साहचर्य में ऐसा खुमार था, जो कभी उतरने का नाम ही न लेता था। हमेशा की तरह निहायत भोली-भाली और निहायत कम-गो वह मेरी रानी हर समय मुझे सुख और ऐश्वर्य के दरिया में डुबोये रहती थी।

उस दिन एक हल्का-सा विघ्न पड़ा, जबकि मेरी बदनसीब बड़ी रानी का आदमी उसका ख़त मेरे पास लेकर आया। उसने इल्तिजा की थी कि मैं आलमनगर लौट आऊँ। उसने यह भी लिखा था कि तुरन्त न लौटने से मुझ पर, मेरे परिवार पर और मेरे जीवन पर संकट आने की सम्भावना है। मैंने उसे पढ़ा और पैर से मसलकर फेंक दिया और उसके वाद उस आदमी को अपमान कराकर महल से बाहर निकलवा दिया। साथ ही उसे हिदायत दे दी गई कि बहाँ अपने आने का ज़िक्र वह किसी से न करे।

लेकिन उसके जाने के बाद ही मुझे फिक्र हुई कि उस चिट्ठी में लिखी हुई बातों की सचाई की जाँच की जाय। मैंने फौरन भास्करदेव को अपनी पेशी में तलब किया। वह बेचारा नंगे-पैरों दौड़ते हुए हाज़िर हुआ। मैंने उससे कहा कि उसे फौरन आलमनगर जाकर इस बात का पता लगाना पड़ेगा कि वहाँ के हाल-चाल क्या हैं और मेरे खिलाफ़ मेरे कमीने मन्त्रियों या सरदारों ने कोई नया प्रपंच तो खड़ा नहीं किया है। भास्करदेव से चूँकि मैं किसी मामले में भी पर्दा नहीं रखता हूँ, इसलिए मैंने अपनी रानी के भेजे हुए ख़त का तमाम मज़मून उसे बता दिया लेकिन हिदायत कर दी कि बड़ी रानी अगर उसे अपनी पेशी में तलब करे तो वह उसका हुक्म न

माने और मुझे इत्तला दे।

उसे भला क्या उज्र था ? उसने सर झुकाया और वह उसी दिन आलम-नगर के लिए रवाना हो गया।

राजे-महाराजों का यही क़ायदा होता है। अगर उनका कोई शुभ-चिन्तक, जिसकी हैसियत वे अपने बराबर न समझते हों, उनके हित की कोई बात उनसे कहता है तो वे इसमें अपना अपमान मानते हैं और यद्यपि उस सूचना का अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की कोशिश की जाती है, लेकिन उस व्यक्ति पर अन्त तक यह प्रकट नहीं किया जाता। मैंने अपनी राजकीय मर्यादा के अनुसार ही उस व्यक्ति को अपमानित कराकर निकलवा दिया, लेकिन राजनीति का तक़ाज़ा था कि उसकी दी हुई ख़बर की जाँच की जाय।

न-जाने-क्यों, जिस दिन भास्कर गया, उसी दिन से मेरी नई रानी कुछ परेशान-सी रहने लगीं। उसके विशेष आग्रह पर मैंने उसकी एक बच-पन की सहेली को उसकी दासी बनाकर रखना मंज़ूर कर लिया था। मैंने लक्ष्य दिया कि अब नई रानी इस दासी से एकान्त में कुछ बातें करने का मौक़ा ढूँढ़ती रहती है, बाज़ार में ज़्यादा घूमने-फिरने में भी उसे संकोच होने लगा और अब तक ख़रीदे हुए जेवरात की देख-भाल की चिन्ता भी उसकी बढ़ गई। ऐयाशी के दरिया में इस क़दर ग़रक़ाब होकर भी अभी मेरी बुद्धि इतनी नष्ट न हुई थी कि मैं ऐसी प्रत्यक्ष बातों पर लक्ष्य न देता, लेकिन मुझे स्वीकार करना चाहिए कि उसकी मोहब्बत मेरे दिल की आख़िरी तह तक पहुँच गई थी और इसीलिए मैंने उसके परिवर्तन पर किसी प्रकार का शक न किया।

× × ×

भास्करदेव की रिपोर्ट बराबर मिल रही थी। और उसकी चौथी चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते मेरे हाथ से छूट गई। क्या मुझे फ़ौरन आलमनगर वापस लौटना पड़ेगा ?

क्या यह सच हो सकता है ? मुझे भास्कर की स्वामिभक्ति पर अटल विश्वास था। अगर इस ख़बर में कुछ भी शक होता तो या तो वह लिखता नहीं, अथवा यह तहरीर कर देता कि उसे फ़लाँ शक है। उसने पुख़्ता तौर

पर ज़ोर देकर लिखा है कि मुझे फ़ौरन आलमनगर आकर स्थिति को क़ाबू में करना चाहिये।

माणिक सरदार ! उस नीच ने मेरे विरुद्ध इतनी गहरी साजिश तैयार की है ? आखिर मैंने उसका बिगाड़ा क्या है ? क्या वह अपनी कमीनी ख़्वाहिशात् पूरी करने के लिए मेरी और मेरे परिवार की जान तक लेने को उतारू हो गया है। और मेरे राज्य में ग़दर तक कराने की तैयारियाँ करा दी हैं ? क्या मेरे तमाम नौकर-चाकर और सरदार नमकहराम साबित होंगे ?

मैंने निश्चय कर लिया कि ऐसा हर्गिज़ न होने दूंगा और उस नालायक़ को उसकी करतूतों का मज़ा चखाकर छोड़ूंगा। मैंने कौशल्या को ख़बर दी कि शायद उसे कुछ दिन बम्बई के महल में अकेले रहना पड़ेगा। मैंने इस घटना की चर्चा कौशल्या से भी न की, लेकिन मेरी हड़बड़ाहट को वह ग़ौर से देख रही थी। उस वक्त तो घबड़ाहट में मैं न देख सका, लेकिन अब मुझे ख़याल आता है कि मेरी बात सुनकर उसका चहरा सफ़ेद हो गया था। उस वक्त मैंने समझा था कि जुदाई से सदमे का यह असर था, लेकिन अब··?'

मैंने अपने चार विश्वस्त आदमियों को ट्रेन-द्वारा आलमनगर भेज दिया और उन्हें भास्करदेव के नाम अपनी लिखित आज्ञायें भेजीं। इन आज्ञाओं में मैंने अपने दो उन मन्त्रियों को तुरन्त बम्बई बुलवाया, जिनकी स्वामि-भक्ति पर मुझे अत्यन्त विश्वास था। साथ ही मैंने अपनी फ़ौज के सिपहसलार के नाम भी एक आज्ञा भेजीं और इन्सपेक्टर जनरल पुलिस के बारे में पूरी ख़बरें भेजने का आदेश भास्कर के नाम भेजा। भास्कर को रुपये की तकलीफ़ न हो, इसलिए रियासत के ख़जांची के नाम मैंने यह हुक्म भी भेजा कि भास्करदेव जितना रुपया जब माँगे, दे दिया जाय।

मेरी मानसिक दशा विचित्र हो गई। शाम हुई और रात हुई। उस दिन मैं कौशल्या के प्रति बहुत ही उदासीन रहा। उसने बारहा कोशिश की कि मैं उससे कुछ बात करूँ और उसे बताऊँ कि आखिर आज इस वक्त अकस्मात् यह क़ैसी गड़बड़ी आ गई है। लेकिन भास्कर अपने ख़त में, अपनी गुस्ताखी की बार-बार माँफ़ी माँगते हुए यह लिख दिया था कि मुझे इस मामले की ज़रा भी भनक किसी के कानों तक—यह तक कि नई रानी के भी—नहीं पहुँचनी चाहिए। उसने हल्का-सा इशारा किया था कि नई

रानी के बारे में उसे कुछ विचित्र बातों का पता लगा है और मुक़म्मिल हालत मालूम होते ही वह तार, टेलीफ़ोन या पत्र-द्वारा सूचित करेगा।

शाम हुई और रात आई। रोज़ पीने और ऐयाशी करने वाले आदमियों को शाम होते ही इधर-उधर की सूझती है। कौशल्या मेरी आदत से वाक़िफ़ थी। उसने मेरी उदासी भंग करते हुए नौकरानी को हुक्म दिया कि मेरे लिए शराब लाई जाये।

मैं टहल रहा था। और मैंने अपने कमरे के बाहर दो सशस्त्र पहरेदार नियुक्त करा दिए थे। मुझे रह-रहकर माणिक सरदार की नीचता पर क्रोध आ रहा था। आख़िर मेरे पूज्य पिताश्री का आदेश सच हुआ। सांप को भर-कटोरे दूध पिलाया, मगर उसने अपना ज़हर न छोड़ा। मैंने उसे निबाहने में कौन-सी कसर छोड़ी? 'उसे क्या-कुछ सम्मान मेरे शासनकाल में नहीं मिला? उसके क्या-क्या अपराध मैंने क्षमा नहीं किये?'

दुःख और क्षोभ ने धीरे-धीरे गलना शुरू कर दिया।

"क्या धन, ऐश्वर्य और अधिकार की तृष्णा आदमी को इस क़दर नीच बना देती है? उस आदमी को भी, जो खुद निहायत मालदार है और जिसे किसी भी ऐश्वर्य का अभाव नहीं? अधिकार की ममता क्या आदमी को इस क़दर अविवेकी बना देती है? यह राजसिंहासन मेरा है और इस पर मेरा और मेरी सन्तानों का जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसी दशा में क्यों कोई इसे ज़बर्दस्ती छीनने की कोशिश करे और दुनिया के किसी भी सभ्य कानून के अनुसार उसका यह यत्न क्षम्य नहीं है। मैं उसे अवश्य दण्ड दूंगा।"

दासी ने मेरे आगे शराब का गिलास पेश किया। मैंने एक घूंट ली और रख दिया।

शराब की घूंट ने विचार-प्रवाह की गति में वृद्धि कर दी। 'आखिर यह जन्म-सिद्ध अधिकार क्या बला है? क्यों कोई किसी की सन्तान होने मात्र से अपने पूर्वजों का अर्जित यश प्राप्त करने का अधिकारी हो? और राज्य?—वह तो कभी किसी की सम्पत्ति हो ही नहीं सकता। क्यों मैं अपने आपको इस विशाल राज्य का एकमात्र स्वामी समझूं? मैंने अपने को इस पद का अधिकारी साबित करने के लिए क्या किया? भाग्य? छिः! भाग्य की बात कायरों का तर्क है!'

'भास्कर ने लिखा है कि मेरी प्रजा में भीतर-ही-भीतर मेरे लिए सख़्त नफ़रत के भाव उत्पन्न हो गए हैं। ज़रूर हो जाने चाहियें थे। मैंने अपनी प्रजा की श्रद्धा प्राप्त करने के लिए क्या किया है? और ऐसी अवस्था में मुझे उनका राजा बने रहने का क्या हक़ है?

लेकिन माणिक सरदार! मैं हर्गिज नहीं मानता कि वह नीच मेरी प्रजा का आदर्श राजा होगा? वह अपनी तृष्णा की पूर्ति के लिए ही मेरे अधिकार क़ब्ज़े में करना चाहता है और मैं ख़ुद पतित भले ही हुआ, अपनी प्रजा पर कोई ज़ुल्म मैंने नहीं किया। मुझे विश्वास नहीं कि वह नमकहराम प्रजा के साथ उचित व्यवहार कर सकेगा?

तब मुझे क्या करना चाहिये।

मेरे मन की अवस्था भयंकर रूप धारण करती जा रही थी। फिर मेरी आँखों के सामने संसार की असारता और ऐश्वर्य की व्यर्थता के चित्र घूम गये और क्षण-भर के लिये मेरा मन अपने प्रति, अपने कृत्रिम जीवन के प्रति और अपने झूठे ऐश्वर्यं के प्रति घृणा से भर उठा।

मैंने शराब का वह गिलास ख़ाली कर दिया सर घुमाकर देखा। दर्वाज़े से हटकर दोनों पहरेदार सतर्कतापूर्वक खड़े थे और सामने कोने में नौकरानी मेरी आज्ञा के इन्तज़ार में खड़ी थी। कौशल्या और उसकी दासी वहाँ न थी। मैंने सोचा, बग़ल के कमरे में होंगी, लेकिन बढ़कर देखा तो वहाँ भी न थीं।

न-जाने क्यों, कुछ उत्सुकता बढ़ी और मैं आगे बढ़ा। वह सामने वाला कमरा नई रानी का था। वहाँ की बत्ती जल रही थी और दर्वाज़ा बन्द था। बारामदे में अँधेरा था और कहीं कोई न था।

मैं नई रानी के साथ कुछ बात करना चाहता था और चाहता था कि मेरे दिल का बोझ हल्का हो। मुझे उम्मीद थी कि मेरी उदासी के 'मूड' में वह मुझे छोड़कर कहीं न जायेगी, लेकिन अगर वह चली गई तो मुझे शिकायत न करनी चाहिए। मैंने बराबर चार दिन से उसके प्रति बेरुख़ी दिखाई है और आख़िर वह भी इन्सान है, उसे बुरा लग सकता है।

दर्वाज़ा बन्द था और पर्दा हटा रहने की वजह से शीशे में से भीतर का दृश्य साफ़ दिखाई पड़ता था। मैं दर्वाज़ा खड़काना ही चाहता था कि चौंककर

एक क़दम पीछे हट गया ।

वह दोनों दर्वाज़े की तरफ़ पीठ किये खड़ी थीं । मैंने देखा—कौशल्या के हाथ में एक पतली शीशी में कोई लाल चीज़ है और उसकी दासी के हाथ में शराब का भरा हुआ एक पैक ! उसने शीशी की वह लाल चीज़ पैग में उँडेल दी और देखते-देखते वह चीज़ सुनहली शराब में बे-मालूम तौर पर घुल गई ।

यह माजरा देखकर मैं कुछ भौंचक्-सा रह गया और अभी कुछ सोच भी न पाया था कि कमरे का दर्वाज़ा खुला और आगे-आगे कौशल्या और पीछे-पीछे उसकी दासी निकली । मैं झटपट पीछे हटकर बाराम्दे के एक खम्भे के पीछे हो गया ।

वह दोनों चलते-चलते कुछ बातें कर रही थीं । दासी के हाथ में शराब का वही गिलास बदस्तूर मौजूद था । मौजूद था । कौशल्या ने चलते-चलते कहा—'तुम देखो तो, दो ही घूंट काफ़ी हैं···

इसके आगे कोई बात मेरे कान में न पड़ी और मेरे सर में चक्कर आने लगा ! !

उपसंहार

आज आलमनगर में महाराजा की आज्ञानुसार एक विचित्र आयोजन किया जा रहा है। तार-द्वारा राज्य-भर के पञ्चों, मुखियाओं, मुख्य राज कर्मचारियों, सेठ-साहूकारों और समस्त राजनैतिक नेताओं को निमन्त्रण भेजे गये हैं। राजधानी के भी समस्त गली-कूचों में दो दिन से डौंडी पिटवाई जा रही है कि अमुक दिन, अमुक स्थान पर सब लोग एकत्रित हों, वहाँ उनके महाराजा उन्हें एक विचित्र सूचना देंगे। एक बहुत बड़े मैदान में दो लाख आदमियों के बैठने का प्रबन्ध किया गया है और लाउड-स्पीकरों द्वारा इस बात का प्रबन्ध करा दिया गया है कि बीच के मन्च पर यदि एक सुई गिरे तो उसकी ध्वनि भी प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति के कानों में पहुँचे। प्रत्येक आमन्त्रित व्यक्ति को सूचना दे दी गई है कि प्रातःक़ाल उक्त स्थान पर पहुँचे। जिस-जिसने यह समाचार सुना है, तरह-तरह के भावों से प्रभावित होकर स्तब्ध रह गया है। अभी तीन दिन पहले अत्यन्त रहस्यमयी परिस्थितियों में माँ-महारानी की मृत्यु होकर चुकी है। अतएव, अधिकांश लोगों का यह ख़याल था कि महाराज इस अवसर पर सम्भवतः अपनी स्वर्गस्थ माता के प्रति कुछ उद्‌गार प्रकट करेंगे।

सुबह-गजरदम में ही मैदान में आगन्तुकों की भीड़ जमा होनी शुरू हो गई और दस बजते-वजते वह विशाल स्थान जनसमूह से भर गया। सभी आपस में तरह-तरह की बातें कर रहे थे और सभी की टकटकी मन्च की ओर लगी हुई थी।

सहसा मंच से नक्क़ारे और दुन्दुभि का स्वर सुनाई पड़ा। लोगों ने समझा, महाराज की सवारी आई। दो लाख गर्दनों ने उचककर मंच पर एक़ मनुष्य-मूर्ति को खड़े हुए देखा। उस मंच के चारों तरफ़ राज्य के बड़े-बड़े सरदार और मन्त्री जमा थे। उन्होंने उठकर महाराजा का अभिवादन किया और तब उनका संकेत पाकर सब लोग बैठ गये।

दो लाख के उस विशाल जन-समूह में सर्वत्र घोर निस्तब्धता छाई हुई थी। अगर पत्ता खड़कता तो आवाज़ होती। सब के कान अपने महाराजा के मुँह से कोई शब्द निकलने की बाट जोह रहे थे।

'भाइयो !'

हाँ, यह महाराजा की ही आवाज़ थी।

'सब से पहले तो मुझे आप लोगों से इस बात की क्षमा मांगनी है कि आपको मेरे लिए दूर-दूर से सहसा आने का कष्ट उठाना पड़ा और यही नहीं, यहाँ आकर भी इतनी देर तक मेरी प्रतीक्षा करनी पड़ी।

कण्ठ-स्वर बेशक महाराजा का था; लेकिन आज उसमें जिस प्रकार की मधुरता थी, वैसी कभी किसी ने न सुनी थी।

'मुझे इस अवसर पर आप लोगों के सम्मुख अपनी पूज्य माताश्री के प्रति अपनी श्रद्धान्जलि भी अर्पण करनी है। मैं आज यह स्वीकार करना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैंने उनके जीवन-काल में उनकी कोई सेवा नहीं की। ईश्वर मेरे इस अपराध को क्षमा करें !

लोगों ने साफ़ सुना कि महाराज का गला भर आया है।

'मुझे अभी दो और आत्माओं की सद्‌गति के लिए कामना करनी है और मेरी अभिलाषा है कि आप लोग भी मेरी अभिलाषा में शरीक हों। सम्भवतः आपको यह समाचार अभी तक न मिला होगा कि मेरे राज्य के अग्रगण्य सरदार माणिक-सरदार अब इस संसार में नहीं रहे…'

दो लाख की वह भीड़ इस समाचार को सुनकर कुछ इस क़दर उद्वेलित हुई कि चारों तरफ़ कुछ क्षण के लिए एक अजब हल-चल-सी मच गई। जब फिर पूर्ववत् स्तब्धता का वातावरण हुआ तो महाराज की आवाज़ फिर आनी शुरू हो गई :—

'अवश्य आपको इस समाचार से आश्चर्य हुआ होगा। मुझे यह कहते

हुए दुःख होता है कि मेरी महारानी की एक दासी ने माणिक-सरदार को आकस्मिक रूप से गोली मार दी और वह खुद भी उसी क्षण गोली मार कर मर गई। यह दोनों लाशें अभी तक राजमहल में रक्खी हुई हैं और मेरी बात समाप्त होने पर आप सब उनकी अन्येष्टि-क्रिया में शरीक होंगे, ऐसी मुझे आशा है।'

मञ्च के चारों तरफ़ बैठे हुए सरदारों के मुँह में 'पार्वती' का नाम धीरे से निकल गया !

'वास्तव में अब वह बात शुरू होती है, जिसे कहने के लिए मैंने आप सब लोगों को आमन्त्रित किया है। मुझे विश्वास है कि जिस दुःखद घटना का वृत्तान्त आप अभी-अभी मुझसे सुन चुके हैं, उसे कुछ देर के लिए विस्मृत करके आप मेरा कथन ध्यानपूर्वक सुनेंगे।'

आलमनगर के सरदारों और उसकी प्रजा ने अपने महाराज के बहुत-से भाषण सुने थे भाषण सुते थे। उन भाषणों में तेज, दर्प और ओजस्विता होती थी, भाषा भी उत्कृष्ट रहती थी, भाव भी बहुत मँजे हुए होते थे; लेकिन आज उनके भाषण में देव-सदृश महानता थी !

'मैंने लगभग पाँच वर्ष आप लोगों के एक-छत्र स्वामी की हैसियत से इस विशाल राज्य पर शासन किया। इन पाँच वर्षों में मैंने जो-जो कार्य किये, उनका परिचय सम्भवतः आप में से बहुत कम लोगों को हो, किन्तु मेरी आत्मा आज अपने उन कर्मों के स्मरण-मात्र से कुण्ठित है।'

'इन पाँच वर्षों में मैंने समय-समय पर यह अनुभव किया कि 'राजा' नाम के व्यक्ति को अनायास ही जो अतुल सम्मान और अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, उनका मन-चाहे ढँग पर उपयोग करने का अधिकार उसे क्या है ? मैंने यह भी सोचा कि मेरे देश के ही नहीं, संसार-भर के देशों के शासक वर्ग में शोषण और दम्भ की जो भावनाएँ उभर आती हैं, उनकी सार्थकता क्या है ? हमारे देश की बात निराली है। हम चाहे जितना छिपायें लेकिन इस सत्य क़ो सब जानते हैं कि राजनैतिक दृष्टि से हमारी अवस्था उस पक्षी की सी है, जिसे सोने के पिंजरे में रखा जाता है और मोती चुगने को दिए जाते हैं। लेकिन हममें से कौन ऐसा है, जिसने पिछले सौ बरस में इस पिंजरे से निकलने का उद्योग किया हो ! बेशक, हम इस बारे में उस सत्ता को

दोष दे सकते हैं, जो हमारे पिंजरे की मालिक है। लेकिन आप ग़ौर से देखें तो ज्ञात होगा कि वास्तव में हमारे आदर्श इतने गिर गए हैं और हमारी मनोवृत्ति पूँजीवाद और अधिकारबाद के रंग में रंगकर इस क़दर बिषैली हो गई है कि हम आज अपनी संस्कृति, अपने अपने धर्म और अपने आदर्शों को विस्मृत कर बैंठे हैं।'

मञ्च के चारों ओर बैठे हुए सरदार एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे और दो लाख प्रजा के इस समूह की करतल-ध्वनि से आकाश-भेदी शब्द हुआ।

'मैंने कहा कि इस प्रकार की भावनाएँ समय-समय पर मेरे मन में उठा करती थीं। लेकिन मेरे निकट का वातावरण हमेशा मेरी इन भावनाओं पर विजय प्राप्त कर लेता था। अकसर मैं यह सोचता था कि मेरे निकट रहने वाले व्यक्तियों की नीचता ही मेरे पतन का कारण है, लेकिन मुझे स्वीकार करना चाहिए कि वह स्वयं मेरी — एकछत्रता और प्रभुता के मद से उत्पन्न होने वाले दोष की—प्रतिक्रिया थी।'

'लगातार पाँच वर्ष तक यही सिल्सिला चलता रहा और एक दिन आया कि मुझे अपनी भूलों का प्रायश्चित करने की अन्तिम प्रेरणा मिली। मैं ईश्वर के उस अनुग्रह को लाख बार शुक्र देता हूँ, जिसने मुझे अपनी भूलें समझने और उन्हें खुले आम स्वीकार करने का वल दिया है। मैंने महसूस कर लिया कि 'धन' वास्तव में अनर्थों की जड़ है। आज संसार में पूँजी वाद का बोल-बाला है और इसी 'पूँजी' के लिए सर्वत्र ग़रीबों का शोषण किया जा रहा है। मैंने अनुभव किया कि संसार का कल्याण इस 'पूंजीवाद' के सर्वनाश से ही हो सकका है।

'संसार के जितने शासक, जितने डिक्टेटर और जितने सरदार-सामन्त "जन्म-सिद्ध अधिकारों" की बात कहकर अपने आश्रितों को पशुवत् जीवन बिताने पर मजबूर करते हैं, मेरी तुच्छ सम्मति में वे संसार को धोखा देते हैं। मुझे कहना चाहिए कि जिस प्रकार संसार में किसी समय ब्राह्मणों का आधिपत्य था और उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए तरह-तरह की मनगढ़न्त सामाजिक व्यवस्थायें रच ली थीं, उसी प्रकार आज संसार पर वैश्यों—पूँजीवादियों—का प्रभुत्व है, जिनमें संसार के सभी वर्गों के पूँजीवादी शामिल हैं—और उन्होंने अपनी गर्हित ज़रूरतों और सहूलियतों के मुताबिक व्यवस्थायें गढ़ ली हैं।

'मेरी शक्तियाँ अल्प हैं, अतएव मैं संसार की इस अन्यायकारी

व्यवस्था का मूलोच्छेदन नहीं कर सकता। आप लोग जानते हैं कि बम्बई में मैंने हाल ही में एक और विवाह किया था और मैंने अपनी बम्बई की तमाम निजी सम्पत्ति अपनी नई रानी को दे दी है और इसी विवाह ने मुझे संसार से इस क़दर विरक्त कर दिया है कि आज मैं सदा के लिए यह राज्य छोड़कर चला जा रहा हूँ।'

यह तो एक ऐसा समाचार था, जिसने उस दीर्घ-स्थान-व्यापी जनसमूह में कोलाहल पैदा कर दिया। लेकिन महाराज के एक शब्द पर फिर सब निस्तब्ध हो गये।

'न तो आप इस समाचार से दुखी हों और न-ही मेरे निश्चय को पागलपन समझें। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि मैंने अपने राज्य से पूँजीवाद और उससे होनेवाली समस्त समस्याओं का नाम मिटा देने वाली एक योजना पर दस्तख़त कर दिये हैं। समय आयेगा, जब दुनियाँ-भर में वह व्यवस्था जारी होगी और अपने इस तुच्छ जीवन में वह समय देख सकूँ या नहीं; मेरी आत्मा जहाँ भी होगी, उस घड़ी तृप्ति-लाभ करेगी। मेरी योजना के अनुसार राज्य का स्वामी या शासक न मैं रहूँगा, न मेरा कोई वंशज, न सम्बन्धी। मेरे राज्य की स्वामिनी आज से मेरे राज्य की प्रजा होगी और मेरी प्रजा का सबसे योग्य व्यक्ति—जो प्रजा के बहुमत द्वारा चुना जायेगा—इस राज्य का शासक होगा। वह व्यक्ति प्रत्येक गाँव के मुखियाओं के बहुमत से राज्य के लिए जो शासन-योजना तैयार करेगा, वही सबको मान्य होगी, और मेरे राज्य में प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार बराबर समझे जायेंगे और प्रत्येक के दो वक्त के भोजन की व्यवस्था का उत्तरदायित्व राज्य पर रहेगा।

"मैं अब सदा के लिए आप लोगों से विदा हो रहा हूँ। जीवन के शेष भाग में मैं अपने गत पापों का प्रायश्चित तो करूँगा ही, अपने धर्म-शास्त्रों द्वारा बताए हुए मार्ग द्वारा—जिस पर मेरा कठोर श्रद्धान है—अपना जीवन सफल करने की चेष्टा भी करूँगा। मैं चाहता था कि इस दुरूह मार्ग पर जाने का कष्ट केवल मैं ही उठाऊँ, लेकिन मेरी पतिव्रता महारानी और मेरे अतिप्रिय भास्करदेव ने मेरी यह प्रार्थना स्वीकार न की और वे भी मेरे साथ जा रहे हैं। मेरी अबोध कन्या का पालन-पोषण मैंने अपने परम शुभचिन्तक दीवान बहादुर अमरदास—को जिन्हें मेरी भूल से अपार कष्ट पहुँचा था—सौंप दिया है। भगवान आपका कल्याण करें!"

□

डा. दिलरमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
८१५५

[illegible]